नयी कवीता का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन

NEW HINDI POETRY
AN AESTHETIC STUDY

THESIS SUBMITTED TO THE
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
FOR THE DEGREE OF
DOCTOR OF PHILOSOPHY

BY
P. V. KRISHNAN NAIR

SUPERVISING TEACHER
Dr. P. V. VIJAYAN
PROFESSOR

PROFESSOR & HEAD OF THE DEPARTMENT
Dr. N. RAMAN NAIR
(DEAN, FACULTY OF HUMANITIES)

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE & TECHNOLOGY
COCHIN-682 022
1987

CERTIFICATE

*This is to certify that this THESIS is a bonafide record of work carried out by **P. V. KRISHNAN NAIR**, under my supervision for Ph.D. degree and no part of this thesis has hitherto been submitted for a degree in any University.*

Department of Hindi,
Cochin University of
Science & Technology,
Cochin PIN 682 022.

15-09-1987

Dr. P. V. VIJAYAN,
Professor,
(Supervising Teacher)

पुरोवाक्

सौन्दर्यशास्त्र कला तत्व सिद्धान्त है। उसकी अपनी दार्शनिक भूमिका है। कालान्तर में सौन्दर्यशास्त्र के उपयोग का उपक्रम साहित्य के अध्ययन और मूल्यांकन में भी शुरू हुआ। "सौन्दर्य क्या है?" यह प्रश्न जिस प्रकार दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं से जुड़ा हुआ है उसी प्रकार साहित्य के बुनियादी तत्वों से भी संबन्धित है। साहित्य एवं कला के अध्ययन एवं आस्वादन तथा मूल्यांकन की विभिन्न पद्धतियाँ प्राचीन काल से प्रचलित हैं। कला मीमांसा में सौन्दर्य संबन्धी प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण है। भारतीय काव्य शास्त्र में सौन्दर्य की प्रौढ़ विवेचना विस्तार से हुई है। पाश्चात्य काव्य शास्त्र में भी सौंदर्य की गंभीर मीमांसा की गयी है।

सौन्दर्यशास्त्र गहन अध्ययनका विषय है। सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टि से आधुनिक साहित्य को देखने परखने का प्रयत्न हुआ तो साहित्य के अध्ययन और मूल्यांकन में अन्यान्य कला तत्वों और जीवन की विस्तृत ज्ञानराशियों के समावेश से विकसित स्वस्थ दृष्टि अधिक उपादेय मालूम पड़ी

इस प्रकार सौन्दर्यशास्त्र का क्षेत्र-विस्तार भी हो गया और साहित्य, विशेषकर कविता की सौन्दर्यशास्त्रीय भूमि को पहचानने की प्रणाली भी बनी। जिसे हम नयी कविता की समग्र संवेदना कहते हैं वह इस विकसित सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टि में अधिक ग्राह्य हो जाती है। इस सौन्दर्यशास्त्र की कसौटी पर आधुनिक कविता की पूरी जटिलता, पूरी गहराई, गरिमा और स्फूर्ति आसानी से विवेचित हो सकती हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध हिन्दी की नई कविता के सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन का विनम्र प्रयास है। नई कविता हिन्दी की वह युगान्तरबोधक कविता है जो हमेंसमझाती है कि हमारी कविता विश्व कविता के निकट है इलियट या स्पेंडर की कविता के साथ अज्ञेय या शमशेर की कविता का अध्ययन करते समय हमें यह निकटता मालूम होती है। नई कविता के युग में हमें बेहतरीन रचनायें मिलीं। साथ ही कविता के नये प्रतिमानों की तलाश की प्रेरणा भी प्राप्त हुई। इस युग में रचित शीर्षस्थ कवियों की रचनाओं का सौन्दर्यशास्त्र क्या है, उनकी मूल संवेदना क्या है, दिशा और दृष्टि क्या है - यही इस शोध प्रबन्ध का विवेच्य विषय है।

वर्षों पहले हिन्दी एम॰ए॰ के छात्र के रूप में "हिन्दी और मलयालम की नई कविता के बुद्धि तत्व" शीर्षक से एक लघु शोध प्रबन्ध लिखने का अवसर मुझे मिला था। उसी समय से लेकर विश्व साहित्य तथा भारतीय साहित्य के परिप्रेक्ष्य में नयी कविता को यथासंभव समझने का प्रयत्न करता रहा। तभी यह सवाल भी मन में उठा कि कविता का सौन्दर्यशास्त्र क्या है ? बुद्धि तत्व {इन्टेलक्चुअल ऐलेमेंट} को भी मैं ने उसी सन्दर्भ में देखा था। इसी दौरान डा॰ कुमार विमल का शोध ग्रन्थ "सौन्दर्यशास्त्र के तत्व" व "छायावाद का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन" का

मनोयोग से मैं ने अध्ययन किया । इस ग्रन्थ ने मुझे एक दिशा दी थी । नई कविता को सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टि से समझने और उसका शोधपरक अध्ययन करने का यही स्त्रोत है ।

यह शोध ग्रन्थ सात अध्यायों में विभक्त है । पहला अध्याय सौन्दर्यशास्त्र का सैद्धान्तिक अध्ययन है । इसमें दर्शन के क्षेत्र में अंकुरित कला के सिद्धान्त के रूप में पल्लवित और बाद में काव्य मीमांसा का मूल आधार बनकर विकसित सौन्दर्यशास्त्र के सैद्धान्तिक एवं ऐतिहासिक विकास का अध्ययन किया गया है । विभिन्न पाश्चात्य विचारकों की मान्यताओं के आधार पर यहाँ विवेचन प्रस्तुत हुआ है । पाश्चात्य दृष्टि के साथ-साथ भारतीय सौन्दर्य दृष्टि पर भी प्रकाश डाला गया है सौन्दर्यशास्त्र के बारे में जितने मूल ग्रंथ अंग्रेज़ी में उपलब्ध हैं, उन मूल ग्रंथों के आधार पर ही यह विवेचन प्रस्तुत किया गया है ।

दूसरा अध्याय नई कविता का ऐतिहासिक विश्लेषण है । इसमें मुख्यत: तीन खण्ड हैं । विश्व कविता, भारतीय कविता और हिन्दी कविता । आधुनिकता की चर्चा के साथ प्रस्तुत अध्याय शुरू होता क्योंकि हर भाषा में नई कविता से जुड़ी हुई विचारधारा है आधुनिकता नई कविता का नयापन आधुनिकता से अलग नहीं है । इस प्रसंग में पश्चिमी कविता के सर्वेक्षण के बाद प्रमुख भारतीय भाषाओं की कविताओं की आधुनिक काव्य प्रवृत्ति की ओर भी दृष्टिपात किया गया है । विविधता में एकता का सवाल भी इसी सन्दर्भ में उठता है । इस अध्याय में प्रमुख भाषाओं के अखिल भारतीय स्तर पर विख्यात कवियों एवं उनकी काव्य प्रवृत्तियों पर ही प्रकाश डाला गया है । इसके बाद हिन्दी की नयी कविता के विकास को रेखांकित किया गया है ।

तीसरा अध्याय "आधुनिक कविता में अन्तर्मन की विवृतियाँ" शीर्षक से है । नयी कविता की समग्र संवेदना को समझने के लिए "आधुनिक मन" की समस्त जटिलताओं को समझ लेना आवश्यक है । नयी कविता का आन्तरिक रूप विधान उस प्रकार मर्यादित या सुव्यवस्थित नहीं है जिस प्रकार प्राचीन कविता का है । अतः इस अध्याय में नयी कविता के संवेदना पक्षीय सौन्दर्य विधान को विश्लेषित किया गया है । इसके अंतरगत नयी कविता में परिलक्षित तनाव ग्रस्त मनस्थितियों और भयावह स्थितियों पर, विभिन्न कवियों की रचनाओं के आधार पर विचार प्रस्तुत है । जहाँ तक संभव है, श्रेष्ठ कविताओं को इसके तहत विश्लेषण के लिए चुना गया है ।

चौथा अध्ययन नई कविता के बिम्ब विधान संबन्धी है । बिम्ब की भूमिका, बिम्ब के प्रकार, बिम्बवादी आन्दोलन आदि पर प्रथमतः विचार प्रस्तुत किया गया है । तत्पश्चात् नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षरों की कविताओं में उपलब्ध विभिन्न प्रकार के बिम्बों पर विचार किया गया है । यहाँ प्रमुख बिम्बात्मक रचनाओं का ही अध्ययन किया गया है । बिम्बवादी दृष्टि की सीमाओं से अवगत होने के कारण बिम्बात्मक रचनाओं के सौन्दर्य पक्ष पर अर्थात् बिम्बों के सौन्दर्यशास्त्रीय धरातल पर ही अधिक ज़ोर दिया गया है ।

पाँचवाँ अध्याय "नयी कविता में प्रतीक विधान" शीर्षक से है । प्रतीक संबन्धी सैद्धान्तिक विवेचन के उपरान्त प्रतीकवादी आन्दोलन की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की गई है । तदुपरान्त प्रतीकपरक कविताओं का विश्लेषण उपस्थित है । प्रतीकों के विश्लेषण ने किस प्रकार कविता के सौन्दर्य पक्ष को गुणात्मक ढंग से विकसित किया है, इस पर इस अध्याय में विचार किया गया है । प्रमुख कवियों की रचनाओं में उपलब्ध विभिन्न

प्रकार के प्रतीकों का विश्लेषण और काव्य प्रतीकों की आधुनिक दृष्टि का अध्ययन इस अध्याय की विशेषता है ।

छठे अध्याय का शीर्षक है "नयी कविता में मिथक" । मिथकीय आलोचना आधुनिक आलोचना पद्धति की एक नूतन रीति है । इस पद्धति के विकास के कारण आधुनिक कविता में मिथकों की खोज तथा काव्य सत्ता के साथ उनके संबन्ध को पुनर्स्थापित करने का उपक्रम हुआ है । इस रीति का यह भी उपयोग हुआ कि कविता का अन्य ज्ञानराशियों से भी संबन्ध बढ़ने लगा । प्रस्तुत अध्याय में मिथकीय पक्ष के सामान्य विवेचन के पश्चात् नयी कविता के प्रमुख मिथकों पर विचार किया गया है । हिन्दी की नयी कविता का मिथकीय आयाम विस्तृत तथा समृद्ध है । मिथकों के माध्यम से आधुनिक संवेदना की भीतरी तहों तक पहुँचने का प्रयास किया गया है ।

उपरोक्त तीनों अध्यायों के अध्ययन में निम्नलिखित बातें विशेष ध्यातव्य है, जो इस प्रकार है - सैद्धान्तिक भूमिका के होते हुए विश्लेषण पक्ष में सिद्धान्तों और प्रकारों को आधारभूत प्रतिमान मान लिया नहीं गया है ।

बिम्ब, प्रतीक और मिथक एक दूसरे में विलयित होते रहते हैं । आधुनिक मीमांसकों ने इस पर प्रकाश डाला है । बिम्बीय स्थिति में प्रतीकवत या मिथकीय आयाम प्राप्त होने के कारण-इसके विपरीत भी हो सकते हैं - कहीं कहीं एकाध उदाहरण दुहराये गये हैं ।

सातवाँ अध्याय उपसंहार है । इसमें भाषिक संवेदना और वस्तु-रूप की अन्विति के सौन्दर्य पक्ष की भी आनुषंगिक सूचना है । वस्तुत: प्रस्तुत उपसंहार का प्रकरण सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन की प्रासंगिकता की ओर संकेत करते हैं । नई कविता की उपलब्धि पुन: एक नये कोण से उपस्थित करने की सुविधा भी यहाँ प्राप्त हो जाती है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध कोचिन विज्ञान व प्राद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रोफसर डॉ॰ विजयनजी के सारस्वत निर्देशन में संपन्न हुआ है । विजयनजी जैसे प्रगम्य आचार्यवर की छत्रछाया में काम करने का अवसर जो मिला उसे मैं अपने जीवन का परम सौभाग्य समझता हूं । मेरे चिन्तन को उन्होंने समय-समय पर संवारा है । उनकी व्यापक संवेदना का मुझ पर गहरा असर भी रहा है । विजयनजी के प्रति मैं आदर कृतज्ञता अर्पित करता हूं ।

विभागीय अध्यक्ष डॉ॰ एन॰ रामन नायर जी के प्रति भी मैं आभार प्रकट करना चाहता हूं । इस शोध कार्य के दौरान कई प्रकार की अनिश्चित एवं अनचाही बाधायें उपस्थित हुईं । रामन नायरजी ने बडी सहानुभूति और गहरी सूझ-बूझ से उन समस्याओं को सुलझाने में मेरी सहायता की है । अन्यथा मेरा यह शोध कार्य इस समय पर सफल नहीं होता । रामन नायरजी का स्नेह और वात्सल्य मुझपर हमेशा रहा है । वे समय-समय पर शोधकार्य की पूर्ति की प्रेरणा देते रहे हैं । उनके प्रति मैं अपनी सादर कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं ।

विभाग के अन्य गुरुजनों की प्रीति भी मुझे मिलती रही है; स्नेहाशीष भी । डॉ॰ रामचन्द्र देव जी तथा डॉ॰ विश्वनाथ अय्यर जी के प्रति मैं विशेष कृतज्ञ हूं ।

ॠ

सौन्दर्यशास्त्र अपने में एक गंभीर विषय है। नयी कविता भी सरल विषय नहीं है। "नई कविता का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन" पर शोध कार्य करने का विचार करते समय ही मैं अपनी सीमाओं को जानता था। गुरुजनों के उदारता-पूर्ण आशीर्ष और सौजन्य और मार्गदर्शन से इस शोध कार्य को इस रूप में प्रस्तुत करने में मैं समर्थ हो सका हूं।

पी. वी. कृष्णन नायर

हिन्दी विभाग,
कोचिन विज्ञान व प्राद्योगिकी विश्वविद्यालय,
कोचिन, पिन 682022,
तारीख 15.9.1987

विषय सूची

पृष्ठ संख्या

अध्याय - एक 1 - 35

सौन्दर्यशास्त्र और आधुनिक कविता

सौन्दर्य - सौन्दर्य विषयक विभिन्न मान्यताएँ - पश्चिम के सौन्दर्यशास्त्र का सर्वेक्षण - भारतीय सौन्दर्यशास्त्र का विकास - तुलनात्मक सौन्दर्य शास्त्र के हस्ताक्षर - सौन्दर्यशास्त्र की रूपरेखायें- सौन्दर्यशास्त्र और समालोचना शास्त्र - सौन्दर्य बोध का आधुनिक सन्दर्भ ।

अध्याय - दो 36 - 77

नयी कविता एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण

आधुनिकता साहित्यिक सन्दर्भ - आधुनिकता के प्रेरक तत्व - नयी कविता: विश्व परिदृश्य - युद्धोत्तर स्थिति - नए हस्ताक्षर - अन्य पश्चिमी भाषाओं में नयी कविता - समीक्षा का योगदान पत्रिकाओं की भूमिका - भारतीय नयी कविता हिन्दी की नई कविता - आधुनिक हिन्दी कविता का प्रारंभ - तारसप्तक - नई कविता युग की प्रतिनिधि कविता - नई कविता के विशिष्ट हस्ताक्षर ।

पृष्ठ संख्या

अध्याय - तीन — 78 - 128

नयी कविता में आधुनिक मन की अन्तर्वृत्तियाँ

नयी कविता में तनाव ग्रस्तता - अस्तित्ववाद और असंगत दर्शन - मृत्युबोध - जिजीविषा का नया स्वरूप - व्यंग्य की नई दिशा - नई कविता में "अयरनी" - व्यंग्य का बौद्धिक स्तर - समय की भयावहता के विभिन्न रूप ।

अध्याय - चार — 129 - 186

नयी कविता की बिम्ब परिकल्पना

बिम्बवाद - बिम्ब की परिभाषायें - बिम्बों का वर्गीकरण - बिम्ब और मनोविज्ञान - बिम्ब और सौन्दर्य - नई कविता और बिम्ब धर्मिता - बिम्ब की व्यापक स्थिति ।

अध्याय - पाँच — 187 - 247

नई कविता में प्रतीक

प्रतीक परिभाषा - प्रतीक वर्गीकरण - प्रतीकवाद नयी कविता और प्रतीक विधान ।

पृष्ठ संख्या

अध्याय - छह 248 - 296

नयी कविता का मिथकीय आयाम

परंपरा का स्वरूप - मिथक - स्वरूप और महत्व आधुनिक कविता का मिथकीय पक्ष - भारतीय कविता - हिन्दी कविता का मिथकीय आयाम ।

उपसंहार 297 - 308

प्रमुख सहायक ग्रन्थ एवं पत्रिकाएँ 309 -

अध्याय - एक

सौन्दर्यशास्त्र और आधुनिक कविता

अध्याय - एक

सौन्दर्यशास्त्र और आधुनिक कविता

सौन्दर्य

सौन्दर्य क्या है ? सौंदर्य शब्द के भिन्नार्थ हैं[1] । भिन्न भाषाओं में इसके लिए भिन्नार्थ शब्द प्रयुक्त हैं । संस्कृत में "सुंदर", "ललित", "चारु", "दिव्य", "भव्य", "रमणीय", "मुग्धकर", "उदात्त", "उत्कृष्ट", "चमत्कार", "शोभामय", "गरिमामय" इन सभी विशेषणों को हम प्राय: सुन्दर शब्द से अभिहित करते हैं । ग्रीक में "कालोस"

---

1. For the term 'beauty' itself has atleast five different meanings in aesthetics that are quite clearly distinguishable from one another and these different meanings are tied to the context of different particular problems. In the context of a metaphysical consideration of the world's order, beauty is equated with its orderliness. In the epistemological context derived from Baumgarten, beauty is thought of as adequacy to the mind in perception. From the anthropoligical point of view, it may seem tobe nothing more than sensual attractiveness. To the ligislators of taste it tends to become one aesthetic quality variously differentiated among a number. Those reflecting upon criticism may use it to mean Aesthetic excellence".

   E.F. Sparshott - The Structure of Aesthetics, p.59.

लतीन में पुलक्कर (Pulcher) चीनी भाषा में "मेय", जर्मन भाषा में षोण (Schon) आदि ध्वन्यात्मक शब्द सौन्दर्य केलिए प्रयुक्त है । वस्तुत: ये इतने सारे विशेषण सुन्दरता के विविध पक्षों को अभिव्यंजन प्रदान करते हैं । सौंदर्य एक अनुभूति है और वह अनुभूति व्याख्यातीत है । इस जगत में जो भी दृश्यमान है, उसमें सभी कुछ ऐसा नहीं है जो उक्त विशेषणों की पात्रता रखता हो । फिर भी सौन्दर्य की ऐसी असंख्य झलकों का हम अपने पार्थिव चक्षुओं से आभास पाते है जिनमें इस भांति की विशेषताओं की आभा है । मानस चक्षुओं से हम उसकी रहस्यमयी अलौकिकता की थाह लेना चाहते हैं और जब भी कभी वह संयोगवश मिल जाती है तो एक ऐसी आनन्द-मग्नता का हम अनुभव करते हैं जो हमारे पार्थिव अस्तित्व को कृतार्थ करती जान पड़ती है और तब वाणी मूक हो जाती है और "शब्द" अर्थ की अभिव्यंजना में हार स्वीकारती है । सौन्दर्य एक अनुभूति है और वह अनुभूति व्याख्यातीत है[1] ।

डॉ॰ सुरेन्द्र बारलिंग सौन्दर्यवाचक का विश्लेषण कर इस निष्कर्ष पर निकलता है[2] ।

§1§ सौन्दर्यवाचक विधान का स्वरूप देखते हुए हमें प्रथम इस विधान के विधेयपद में स्थित "सुन्दर" इस विश्लेषण का स्वरूप देखना आवश्यक हो जाता है ।

§2§ इस विशेषण को एक विशिष्ट अर्थ से पृथक् किया जाय तो उसे निरवयव (Simple) मानना पड़ता है ।

1· इन्दिरा जोशी - सौन्दर्यशास्त्र और साहित्य विवेचन के व्यावहारिक पक्ष नया आलोचक अप्रैल/जून, 1983, पृ·30

2· डॉ॰ सुरेन्द्र बारलिंगे - सौन्दर्य-तत्व और काव्य-सिद्धान्त, पृ·9

§3§ जब हम "सुन्दर" इस विशेषण का विश्लेषण करने लगते है तो यह विश्लेषण उद्‌देश्यपदीय वस्तु का होता है नकि सुन्दर का ।

सौन्दर्य विषयक विभिन्न मान्यताएँ

सुकरात सौन्दर्य को उपयोगी सिद्ध करते हैं । उनके अनुसार सुंदर और शिव एक है, अत: सुन्दर जीवन-सापेक्ष है[1] ।

प्लेटो के लिए सुन्दर, शिव और सत्य एक है । सुन्दर "परम है और पूर्ण हैं तथा सुन्दर केलिए नैतिक होना आवश्यक है[2] ।

अरस्तू के अनुसार सौन्दर्य, आकांक्षा वासना और उपयोगिता से ऊपर की वस्तु है, तथा सुंदर वस्तु में "आर्डर", "सिमेट्री" और "डेफिनिटनेस" की विद्यमानता रहती है[3] ।

बाउमगार्तेन को प्रकृति का अनुकरण ही सौन्दर्य-सृजन है[4] ।

काण्ड के अनुसार सौन्दर्य चिन्तनशील धारणा का आनन्द है[5] । हेगल का सौंदर्य-दर्शन प्रत्यय जगत् पर निर्भर है[6] । हेगल का सौंदर्य-दर्शन

---

1. Will Durant - The pleasures of philosophy(1953),p.190
2. The Works of Plato - Ed. Jowett, p.390
3. Santayana - The Sense of Beauty, p.50
4. Bernard Bosanquet - A History of Aesthetic, p.178
5. Immanuel Kant - The critique of Judgement reprinted in the philosophies of Beauty - Ed. E.F. Carritt (Oxford) 1952, p.112
6. J.N. Findly - Hegel A re-examination (1958) p.341

बेरडस्ले सौन्दर्य का विवेचन विस्तार से करते हैं[1]। आनन्दकुमार स्वामी इस आशय के समर्थक है कि एक कलासृष्टि का सौंदर्य उसके विषय मे परिनिष्ट है[2]। रमेश कुंतल मेघ, मेल्विन राडर द्वारा कला-सिद्धान्तों के निम्नलिखित वर्गीकृत मूल्यों की तालिका देते हैं

"खेल §लेंज, ग्रूस§, इच्छापूर्ति की शक्ति की कामना §नीत्शे, फ्रायड, पार्कर§, संवेग की अभिव्यंजना तथा प्रेषणीयता §वेरोन, तोल्सतोय, हर्न§, स्वयंप्रकाश्यज्ञान, तकनीक §क्रोचे, बर्गसां, बोसांके§, बुद्धि §मारीश्यें,

---

1. The Beauty Theory, then may be summed up in three sentences.

   (a) Beauty is a regional quality of perceptual objects.
   (b) Beauty is intronsically valuable.
   (c) 'Aesthetic value' means value that an object has on account of its beauty.

   Mouroe C. Beardsley - Aesthetics Problems in the Philosophy of criticism (1958) p.507

2. "Many have rightly insisted that the beauty of a work of art is independent of its subject, and truly, the humility of art, which finds its inspiration everywhere, is identical with the humility of love, which regards alike a dog and a Brahman - and of science, to which the lowest form is as significant as the highest".

   Ananda Coomaraswamy - The Dance of Shiva (1974), p.69

फर्नान्देज़ (रूप (बेल, फ्राइ, कारपेन्टर, पार्कर), अंतरानुभूति (लिप्स, ग्रूस, ली), मनोवैज्ञानिक असंपृक्तता (बुलो, गेसेट), एकान्तिकता और समतोलन (आग्डेन, रिचर्ड्स और वुड), सांस्कृतिक प्रभाव (स्पेंगलर, ममफोर्ड) साधनमूलकता (मारिस, डेवी, ह्वाइटहेड) सभी इस सिद्धांत की पूर्ति के निमित्त एक हो जाते हैं कलाकृति केवल तथ्यों का अनुकरण या पुनर्प्रस्तुतीकरण नहीं है । यह पदार्थ का केवल संयोजन भी नहीं है । यह कलाकार की प्रेरणा, उसके संवेगों, प्राथमिक चुनावों या मूल्य के बोधों का प्रक्षेपण है[1] । मेघ के अनुसार "सौन्दर्य से पूर्ण तो वस्तु (=कलाकृति) है किन्तु उसको सौन्दर्य प्रदान करनेवाले तथा उसकी रचना करनेवाले हम मानव है - कलाकार तथा निरीक्षक या आशंक के रूप में । इसलिए सौंदर्यात्मक मूल्य प्रेषणीय तथा साझेयोग्य है[2] ।

इन मान्यताओं से स्पष्ट है कि सौंदर्य काव्य एवं अन्य कलाओं का अपरिहार्य तत्व है । कुछ विचारक सौन्दर्य को वस्तुनिष्ठ और कुछ आत्मनिष्ठ कहते हैं । सौन्दर्यानुभूति जब सृजन की ओर सक्रिय होतीहै तब वह कलानुभूति बन जाती है । वास्तव में एक कवि सौन्दर्य सृजन आसपास के जीवन से कर सकते हैं[3] । आनन्द कुमारस्वामी इस

---

1. टामस मुनरोकृत "आर्टस एंड देअर इंटर रिलेशन्स से मेघ द्वारा उद्धृत- सौन्दर्य मूल्य और मूल्यांकन, पृ.87
2. रमेश कुंतल मेघ सौंदर्य मूल्य और मूल्यांकन (1975), पृ.63
3. "A Poet need not go beyond the commonality of life to create Beauty. There is Beauty before him if he can but look at it with the right eyes; and a bare, unadorned representation of it can become true poetry."
   Prof. V. Raghavan & Prof. Nagendra (Ed) An Introduction to Indian Poetics, p.66

सौन्दर्य पर उचित प्रकाश देते हैं[1]।

कविता की सौन्दर्यशास्त्रीय भूमिका पर विचार करने के पहले स्वतंत्र रूप से सौन्दर्य शास्त्र (Aesthetics) पर विचार करना संगत मालूम होता है। क्योंकि सौन्दर्यशास्त्र के विकास में पाश्चात्य विचारकों का योगदान सराहनीय है। इसलिए सबसे पहले पश्चिम के सौन्दर्यशास्त्र का सर्वेक्षण समीचीन प्रतीत होता है।

सौन्दर्यशास्त्र के लिए अंग्रेज़ी में प्रयुक्त 'इस्तेटिक' शब्द का संबन्ध 'ईस्तसिस' (Aesthesis) ग्रीक शब्द से है। सौन्दर्यशास्त्र का विकास दर्शन की एक शाखा के स्वतंत्र शाखा के रूप में 18 वीं शती के उत्तरार्द्ध में ही हुआ है[2]। इसके पहले भी प्लेटो, अरस्तू, लाजिनस,

---

1. "This creative activity is comparable with aesthetic expression in its non-volitional character; no element of choice enters into that world of imagination and eternity, but there is always perfect identity of intution expression, soul and body. The human artist who discovers beauty here or there is the ideal guru of Kabir, who 'reveals the Supreme Spirit wherever the mind attaches itself".
Ananda Coomaraswamy - The Dance of Siva (Fourteen Indian Essays), 1974, Munshiram Manoharlal Publishers Pvt.Ltd. p.70

2. "It was not before the latter half of the eighteenth century that the term 'Aesthetic' was adopted with the meaning now recognised, in order to designate the philosophy of the beautiful as a distinct province of the theoriticaly inquiry".
Bernard Bosanquet - A History of Aesthetic (1956)p.1

अविवनास जैसे दार्शनिकों ने कला और सौन्दर्य के बारे में विचार कि
लेकिन एलेक्ज़ेण्डर बाउमगार्टेन (1714-1762) ही वह प्रथम लेखक है, [1] ि
आधुनिक अर्थ में "एस्थेटिक" शब्द का प्रयोग किया है। उसकी अव
को स्पष्ट करने में जनसिस (Genesis) दस्कार्ते (Descartes)
स्पीनोसा (Spinoza) लेबनिस (Lebnitz) व वूल्फ (Wolff)
विद्वानों का विशेष महत्त्व है। बाद में जर्मन दार्शनिकों पर बाउमगार्टे
का प्रभाव था [2]। बाउमगार्डेन के बाद आनेवाले दूसरे जर्मन विचारक
लेसिंग (1729-1781) हैं, जिन्होंने अपने विख्यात ग्रंथ "लाओकून" के
ललित कलाओं के दर्शन को सुदृढ सैद्धान्तिक आधार प्रदान किया [3]।
बाउमगार्टेन के 'एस्थेटिक' (1750) के कुछ भाग के प्रसाधन के साथ ही स
चार कृतिकारों के ग्रंथ का उदय हुआ [4]।

---

1. "And the extension thus initiated by Baumgarten un the name "Aesthetica" was so far characteristicall concerned about the theory of beauty as to hand do the term Aesthetic was accepted title for the philosophy of the beautiful."
Bernard Bosanquet - A History of Aesthetic (1956),

2. "In many respects the attitude of later German philosophy towards aesthetic was anticipated perha influenced by Baumgarten".

   Ibid, p.185

3. "Lessing holds an intermediate position between the practical and the philosophical critic between the legislator for art and the investigation of beauty".

   Ibid, p.217

4. "The works of four writers fall almost within the following Baumgarten's first publication of part o Aesthetic. Hogarth's 'Analysis of Beauty' was pub in England, Bruke's 'Essay on the Sublime and Beau in 1756, Beynold's papers in the Idler appeared in Lord Kaime's Elements of Criticism appeared in 176

   Ibid, p.202

लेकिन सौन्दर्यशास्त्र को दर्शन के गंभीर क्षेत्र में सम्मानित दिलानेवाले प्रसिद्ध दार्शनिक कैंट है (1728-1804)।

कैंट के सौंदर्य विषयक प्रमुख ग्रंथ है -

1. ओबसरवेशन्स् ऑन दि फीलिंग ऑफ दि सब्लैम एण्ड ब्युटिफुल
(Observationas on the feeling of the suolime and Bea

2. दि क्रिटिक् ऑफ दि पवर ऑफ जड्जमेंट
(The Critique of the Power of Judgement)

3. क्रिटिक ऑफ प्यूर रीसन (Critique of Pure Reason)

4. क्रिटिक ऑफ प्रैक्टिकल रीसन (Critique of Practical Reas

इन ग्रन्थों में कला, सौंदर्य, अभिरुचि आदि विषयों पर गहराई से विचार किया गया है। संक्षेप में, सौंदर्य के संबंध में कैंट ने पांच तत्वों पर विचार किया हैं -

1. वह शुद्ध आनंद प्रदान करता है।
2. वह धारणाश्रित न होकर, सार्वजनिक रूप से आनंद प्रदान करता है।
3. विशेष लक्ष्यों के बिना एक खास प्रकार की सोद्देश से युक्त होता है।
4. व्यक्तिनिष्ट ढंग से सौन्दर्य आनंद प्रदायक है।
5. एक सरल प्रस्ताव के माध्यम से वह अभिव्यक्त होत

---

1. The philosophy of Kant, Selected and translated b John Watson (1901), p.16

सौन्दर्यशास्त्र के इतिहास में कैंट की सबसे बड़ी देन यह कि उन्होंने अनुभववादी और बुद्धिवादी दो विरोधी धाराओं के बीच सन्तुलन स्थापित करने का गंभीर प्रयास किया । उनके सौन्दर्यशास्त्र को अतीन्द्रिय कहा जाता है[1] ।

कैंट के कला-संबन्धी विचारों को किंचित संशोधन के साथ शिलर और गेटे जैसे महानों ने विकसित किया[2] ।"

लेकिन कैंट के बाद सबसे सुदृढ सैद्धान्तिक आधार और सार्व परिप्रेक्ष्य प्रदान करने का कार्य हेगल (1770-1831) ने किया[3] । उनका सौन्दर्यशास्त्र संबन्धी भाषण अंग्रेज़ी में, ललित कला दर्शन (Philosophy of Fine Art) नाम से विख्यात है ।

---

1. "So much for the range of beauty, which if we follow for the moment our general sense of the term as equivalent to 'aestetic quality". Kant has immensely amplified in accordance with modern feeling, by his theory of sublime".

   A History of Aesthetic. Chapter x - Kant : The Problem brought to a focus, p.279

2. "Schiller was on one side of his mind a Kantian, while on the other he was both a classicist by study and sympathy and a romanticist by his period and his genius. Thus he formed a linkbbetween Kant and Goethe. For Goethe Shared these factors of shiller's mind in inverse proportion".
   A History of Aesthetic - Chapter xi - The first steps of a Concrete synthesis, p.286

3. J.N. Findlay - Hegel A re-examination (1958), p.336

4. "This work on Aethetic was published in 1835 having been put into shape after Hegel's death out of material consisting of Hegel's MSS of the lecturers'.

   History of Aesthetic chapter xii
   Objective Idealism : Schelling and Hegel, p.335

ऐतिहासिक दृष्टि से कला के युगो का विभाजन करते हुए हेगल ने पहली अवस्था प्रतीकात्मक कला की मानी तो दूसरी क्लासिक कला की और तीसरी अवस्था रोमांटिक कला की । सौंदर्यशास्त्र के इतिहास में हेगल विशेष महत्व है । उन्होंने समस्त ललित कलाओं के सामान्य तत्वों के पर एक व्यवस्थित कला सिद्धांत का निर्माण किया । इसमें उन्होंने प्र ललित-कला की व्यावर्तक विशेषताओं का निरूपण करते हुए उनके बीच अन्तरावलम्ब एवं तारतम्य की स्थापना की । हेगल ने मूर्तता और अमूर्तता का विवेचन किया[1] ।

सौन्दर्यशास्त्र के इतिहास में शोपनहॉवर (Schopenhaver (1788-1860) का स्थान कैंट के अनुचर के रूप में है[2] ।

उनके बाद बीसवीं शताब्दी में क्रोचे के अभिव्यंजनावाद के द्वारा एक नयी धारा का जन्म हुआ । इसे कलावादी धारा कह सकते क्रोचे पर इटालियन दार्शनिक टसानक्रिस का प्रभाव था[3] ।

---

1. George Lukacs - The ideology of Modernism.
   Quoted from 20th Century Literary Criticism, p.475

2. "Schopen haver is a true post Kantian both in his da and in his theory. In addition to the Greek and Eng culture of the time, he was profoundly influenced by ancient Indian philosophy"
   A History of Aesthetic - Chapter xiii
   Exact Aesthetic in Germany - Schopen haver to stumpf

3. Elliot Coleman (Ed.) A History of Modern Criticism, p.138

टसानविटस के अनुसार कविता ; दर्शन इतिहास व आत्मकथा नहीं है, सौन्दर्यात्मक जीवन की सृष्टि है[1] ।

क्रोचे ने कलानुभूति में कल्पना-तत्व को सर्वोपरि प्रतिष्ठित किया । क्रोचे अनुकर्ता नहीं हैं, दार्शनिक है, इतिहासकार या साहित्यालोचक नहीं है, कला दार्शनिक है[2] । क्रोचे काव्यानुभूति को ज्ञान रूप मानकर चले, परन्तु उनके अनुसार यह ज्ञान बौद्धिक (Intell न होकर प्रातिभ(Intuitive) होता है । वह अनाकार को साकार बनाता है[3] । क्रोचे के मत में सौन्दर्य अभिव्यंजना का सौंदर्य है, वस्तु या विषय का नहीं । उनके अनुसार भाषा व कलारूप को नित्य नूतन बनना चाहिए । अपूर्व भाव अपूर्व भाषा में ही रूपायित है[4] । क्रोचे कला में वस्तु या भाव के अन्तर्गत भेदों की स्वीकृति नहीं की ।

---

1. "De-Sanctis maintained that poetry is neither Philosophy nor history let alone biographical chroni it is the creation of aesthetic life". Elliot Coleman (Ed.) - A History of Modern Criticis

2. Scott James - The Making of Literature, p.316-335

3. "Intuition is an expressive activity of the spirit wh gives it form. This activity croce conceives as a s of liberator, which subjugates and dominates the tum of the feelings and of the passion". Ibid, p.322

4. "Language is not an arzenal of arms already made and it is not a vocabulary, a collection of abstractions or a cometery of corpse or less embalmed". Benedetto Croce - Aesthetic Chapter 18. Aesthetic Psychologism and other recent Tendencies,p

कला और दर्शन को साम्य-वैषम्य के बारे में क्रोचे ने चिन्तन किया है। उनके अनुसार कविता भाव की भाषा है, लेकिन गद्य बुद्धि का।[1]

क्रोचे मानते हैं, सौन्दर्य उद्बोधित आविष्कार का संपूर्ण रूप है।[2] आंशिक रूप से ही सही कला आत्मा की सृष्टि है।[3] क्रोचे लिखते हैं - सिद्धान्तत: इन कथनों और आलोचनात्मक विश्लेषणों को सारांश में यों कहा जा सकता है कि सहजानुभूति को सामंजस और एकता प्रदान करनेवाली

---

1. "Poetry is the language of feeling prose of the intellect. The relation between intutive knowledge or expression and intellectual knowledge or concept, poet and prose, is one of the double degree".
Benedetto Croce - 'Aesthetic' chapter 18
'Aesthetic psychologism and other recent Tendencies', p.2

2. "Beauty is thus absolute, formal, unified, perfect. And it follows that anti aesthetic fact is simply lack of intuitional form. Ugliness is embarrassment of intut activity, it is multiplicity, failure of knowledge anc reality".
Wimsatt Brooks - Literary Criticism - A Short Histor
p.505

3. "It is the spirit which gives to the work of art its value, not this or that method of arrangement, this o that tint or cadence which canalwayes be copied by skilful plagiarists, not so the spirit of the creator
Benedetto Croce - 'Aesthetic', Extract from introductic to the first Edition.

क्रोचे लिखते हैं - "कला क्या है ? इस प्रश्न से सम्बद्ध करते हुए मैं तुरन्त सीधी-सादी भाषा में यह कहूँगा कि कला सम्प्रतीति (Vision) अथवा सहजानुभूति है । कलाकार एक बिंब {Image} अथवा छायाभास {Phantasm} का सृजन करता है । जो कोई कला का रसास्वादन करता है वह कलाकार की ही व्यञ्जना पर अपना ध्यान केंद्रित करता है और कलाकार द्वारा खोले हुए वातायन से झाँकता है तथा अपने अन्तर में उस बिं की प्रतिसृष्टि करता है । सहजानुभूति {Intution} सम्प्रतीति {Vision} भावन {Contemplation} कल्पना {Imagination} कृत्रिम कल्पना {fancy} मूर्तिविधान {Figurations} प्रतिरूपण {Representation} आदि शब्दों का प्रयोग बारम्बार कला के विवेचन में पर्यायों के रूप में होता है और सभी अन्तःकरण को उस धारणा की ओर ले जाते हैं जो सामान्य सहमति का द्योतक है ।[1]" क्रोचे के अनुसार "कला सहजानुभूति है । इसकी विशद व्याख्या क्रोचे करते हैं । उसके बाद अन्तर्वस्तु व रूप के संबन्धों के सूक्ष्म विवेचन वे करते हैं । दो प्रश्न सौन्दर्यशास्त्रियों के सामने है वे है - {1} क्या कला केवल अन्तर्वस्तु है य अन्तर्वस्तु और रूप दोनों है ? {2} सौंदर्यशास्त्र में "अन्तर्वस्तु और "रूप का क्या स्वरूप है ? कुछ ने इसका उत्तर यह दिया कि सारी कला, क का सारा मूलतत्व "अतर्वस्तु" में निहित है । अन्तर्वस्तु (Content) की कई तरह से परिभाषा की गयी है । कुछ विचारकों के अनुसार "अंतर्वस्तु तटस्थ होती है, वह उन्हीं सुन्दर "रूपों" को स्थिर रखने की कील या हुक है जो सौन्दर्य चेतना को तृप्ति प्रदान करते हैं - एकता, सामंजस्य, सौष्ठव आदि । रूपवादियों ने बदले में यह स्वीकार कि कि अगर कला को अपनी "अतर्वस्तु" की महत्ता से कोई लाभ नहीं पर प्रभावोत्पादकता को अवश्य लाभ होता है । क्रोचे कलाकार की सहज

---

1. क्रोचे - सौन्दर्यशास्त्र के मूल तत्व - पृ.8

बल देते हैं[1]। नवीन समालोचक भी रूप और भाव का विवेचन करते हैं[2]। बीसवीं शती के समीक्षक रूप व भाव के अभेदता पर प्रायः विश्वास रखते थे[3]। ए.सी. ब्राटली इसी पर विश्वास रखते थे[4]। अबर क्रोम्बी भी कविता की एकात्मक भाव पर बल देते हैं[5]। सौन्दर्य समीक्षक जान दूयि कविता की सौन्दर्यात्मक भाव से पढने की आवश्यकता के बारे में कहते हैं[6]। क्ल्यथ ब्रूक्स इसका समर्थन करते है[7]।

---

1. क्रोचे - सौन्दर्यशास्त्र के मूल तत्व, पृ.46

2. "The New Critic's concept of form, can be examined in terms of a two-fold quality Firestly, they consider form as inseparable from meaning or 'content' and secondly they maintain form to be in itself valuable and requiring no external references for its realisation.
J.N. Patnaik - The Aesthetics of New Criticism (1982)p.5

3. "The notion of the inseparability of form and content seems to have existed in the very critical climate of the twentieth century beginning with the symbolists, Impressionists, Imagists and coming down to the critics of consciousness of the New Geneva School".
Ibid, p.6

4. "..... in a poem the trucontent and true form neither exist nor can be imagined apart".
A.C. Bradley - Oxford Lectures on poetry (1909),p.12

5. Lacelles Abercrombie - The Idea of Great Poetry (1925), p.70

6. John Dewey - Art as Experience (1934), p.137

7. Cleanth Brooks - 'Implications of an organic Theory of Poetry".
M.H. Abrams (Ed) - Literature and Belief (1958), p.75

इस प्रकार हम देखते हैं कि क्रोचे ने ही काव्यानुभूति को अखण्ड स्वीकार किया है । उनकी मान्यताओं से पश्चिम में सौंदर्यशास्त्र में कलावाद का जन्म हुआ । बीसवीं शती के मध्य तक पहुँचकर सौंदर्य तत्व के विश्लेषण पर पर्याप्त प्रौढ़ एवं सांगोपांग ग्रंथ रचे जाने लगे ।

क्रोचे का अनुसरण वाल्टर पेटर में हम देखते हैं । कला का स्वरूप, कलाकार का लक्ष्य, शैली क्या है आदि सौंदर्यात्मक तत्वों का विवेचन वे करते हैं[1] । उनका 'शैली' शीर्षक निबंध गहन है[2] । उनके अनुसार शैली ही कला है[3] । कला के समान कला समीक्षा के बारे में भी पेटर लिखते हैं[4] ।

हर आलोचक का अपना स्थान है । सौन्दर्यशास्त्र के समीक्षक एक दूसरे से प्रभावित भी हुए है और उन्होंने एक-दूसरे को प्रभावित भी किया है । टी.एस. एलियट ने "द यूस आफ पोएट्री एंड द यूस आॅफ क्रिटिसिज़्म" की भूमिका में कहा है - "मुझे इस बात का खेद है कि जब में अमेरिका में इन भाषणों को तैयार कर रहा था तब रिचर्डस इंगलैंड के थे, और जब में उन्हें छपवाने केलिए इंगलैंड में तैयार कर रहा था तब वे अमेरिका में थे । मैं ने आशा की थी कि उनकी आलोचना का लाभ इन भाषणों को मिलता[5] ।" पेटर का विश्वास है कि समालोचक का प्रथम गुण

---

1. Watter Pater - Marius the Epionsean
   Saints Bury - A History ofEnglish Criticism,pp.497-503
2. Pater - The Essay on 'Style' - p.48
   Scott James - The Making of Literature, pp.301-311
3. Rene Wellek - A History of Modern Criticism, p.394
4. "The essence of all good style expressiveness".
   Scott James - The Making of Literature, p.310
5. T.S. Eliot - The use of poetry and the use of
   Critism (1951), p.11

सौन्दर्य से प्रभावित होना है[1]। उसके अनुसार सभी कलाएँ संगीत के समान बनना चाहती है[2]।

कलावादी चिन्तकों ने जीवन और कला के माध्यम इतनी बडी खाई उत्पन्न कर दी थी कि बीसवीं शताब्दी के प्रकृतिवादी विचारकों - आइ॰ए॰ रिचड्स और जान ड्यूई को साग्रह कलागत सन्दर्भों को जीवनगत सन्दर्भों में जोडने की आवश्यकता प्रतीत हुई। रिचर्ड्स ने अपनी "प्रिंसिपल्स आफ लिट्रेरी क्रिटिसिज़्म" में कलानुभूति की किसी वायवी, छाया-स्थिति का कठोर विरोध करते हुए कलानुभूति को किसी भी सामान्य जीवनानुभव के सदृश माना। उन्होंने "संवेग-सन्तुलन सिद्धांत का प्रतिपादन करके सौन्दर्यानुभूति के एक विशेष परिमण्डल को मानवीय अनुभव के व्यापक परिवेश के अन्तर्गत सीमांकित करने का प्रयास किया। सौन्दर्यानुभूति उनके अनुसार जीवनानुभव की अपेक्षा अधिक जटिल और संश्लिष्ट अनुभूति होती है।

रिचर्डस के समान ही शब्द-भेद से जॉन ड्यूई ने भी कलानुभूति को जीवनानुभूतियों का एक प्रकार से बढाव ही माना। अपनी कृति "आर्ट एज़ एक्सपीरिएन्स" में उन्होंने सौंदर्यानुभूति की प्रक्रिया की व्याख्या सविस्तार की है। अमेरिका के काव्य-चिन्तन के इतिहास में ड्यूई का विशेष स्थान है।

---

1. "....... a certain kind of temperament, the power of being deeply moved by the presence of beautiful object".
Walter Paper - 'Preface' Rennaissance studies, p.xi

2. "All art constantly aspires towards the condition of music. The form, this mode of handling, should become an end in itself should penetrate every part of the matter that is what all art constantly strives after and achieves in different degrees".
Quoted from the Structure of Aesthetics - F.E.Sparshott, p.349

3. I.A. Richards - The Principles of Literary criticism (1924) p.54

पाश्चात्य सौन्दर्य शास्त्र के इतिहास में बीसवीं शताब्दी के मध्य तक आते-आते प्रकृतवादी प्रवृत्ति इतनी प्रभावशाली हो गई कि प्राचीन प्रत्ययवादी तथा कलावादी सिद्धान्त एक प्रकार से हमेशा केलिए समाप्त-से जान पड़े । प्रसिद्ध विचारक अर्न्स्ट कैसिरर की शिष्या प्रोफेसर सूज़न लैंगर का ग्रंथ "फिलासफी इन ए न्यू की (Philosophy in a new Key 1942) युगान्तकारी रचना है । फिर उन्होंने क्रमशः फीलिंग एण्ड फर्म (Feeling and Form) और 'प्राबल्मस आफ आर्ट' (Problems of Art) शीर्षक ग्रन्थों की रचना की । लांगर के अनुसार कला सिम्बोलिक फार्म की सृष्टि करती है[1] ।

रोजर फ्रे भी इसी मत को व्यक्त किया है[2] । एक प्रसिद्ध सौन्दर्यशास्त्री समीक्षक कोलिंग वुड सौन्दर्य की सूक्ष्मता के बारे में परिचर्चा करते हैं[3] । उन्होंने अपने ग्रंथ "प्रिंसिपल आफ आर्ट" में क्रोचे के अभिव्यंजनावाद की संशोधित रूप में प्रतिष्ठा की । क्रोचे से उनका मतान्तर दो दृष्टियों से परिलक्षित होता है । एक ओर तो उन्होंने क्रोचे से अभिव्यंजनावाद ग्रहण किया परन्तु उनका प्रातिभ ज्ञान का सिद्धान्त नहीं, दूसरी ओर इस अभिव्यंजना की चरम सार्थकता या परिणति उन्होंने सम्प्रेषण (कम्युनिकेशन) में मा

---

1. Langer S.K. An Introduction to symbolic Logic (1937)p.84
2. "Roger Fry wrote in a letter to G. Lowers Dickinson about poetry. I want to find out what the function of content is, and am developing a theory that it is merely directive of form and that all the essential aesthetic quality has to do with pure form. It is horribly difficul to analyse out of all the complex feelings just this one peculiar feeling, but I think that in proportion as poetry becomes more intense the content is entirely remade by the form and has no separate value at all". F.E. Sparshott - The Structure of Aesthetics, pp.348-349
3. Ibid, pp.60-61

इस प्रकार क्रोचे का अभिव्यंजनावाद सिद्धान्त कालिंगवुड के सम्प्रेषण सिद्धांत में पूर्णता को प्राप्त हुआ[1]। संतायना, (Santayana) ड्यूई (John Dewey) आदि विद्वानों ने भी सौन्दर्यशास्त्र के सूक्ष्म तत्वों को व्यक्त किये हैं।[2] लेकिन एकीकृत व क्रमीकृत सौन्दर्यात्मक तत्व सूसन लागर (Susanne Langer) लूयिस आरनड रीड (Louis Arnand Reid)[3] और लुजि पारिसन (Luigi Pareyson)[4] के ग्रंथों में प्राप्त है। इसके अलावा आजकल अनेक नये नये ग्रंथ उपलब्ध है।

J.N. Findlay - Values and Intentions 1961
Wittgenstein - Lecturers and conversations 1966
W. Elton (Ed.) - Aesthetics and Language
W. Charlton - Aesthetics 1970
Lord Kames - Elements of Criticism, 1969
Nelson Goodman - Languages of Art 1969
Harold Osborne - The Art of appreciation 1970

उनमें कुछ प्रसिद्ध ग्रंथ है।

उपर्युक्त अध्ययन से यह विदित होता है कि पश्चिम में सौन्दर्यशास्त्र पर पर्याप्त मनन चिन्तन हुआ है। बिम्ब, प्रतीक, मिथक इत्यादि आधुनिक कविता की परख और पहचान में प्रतिमान के रूप में स्वीकृत सौन्दर्यशास्त्र के तत्वों का पश्चिम में सौन्दर्यशास्त्रियों ने विस्तार से विवेचन किया है।

---

1. निर्मला जैन - रस सिद्धांत और सौन्दर्यशास्त्र (1977), पृ.57
2. "Susanne Langer - Mind an Essay on Human Feeling Vol.1 (1967)
3. Louis Arnand Reid - Meaning in the Arts, 1969
4. Hugh Bredin - 'The Aesthetics of Luigi Pareyson, The British Journal of Aesthetics Vol.6 (1966), p.193

भारतीय सौन्दर्यशास्त्र का विकास

भारत में सौन्दर्यशास्त्र केवल काव्यशास्त्र का पर्याय है । पाश्चात्य जगत में शास्त्र के रूप में प्रतिष्ठित होने के बावजूद, पाश्चात्य विचारक भी शास्त्र के रूप में सौन्दर्य को अभिनन्दित करते हुए झिझकते हैं । जिन आधारों पर उन्होंने सौन्दर्य की पृथक सत्ता को शास्त्रीय रूप दिया है, वे हमारे यहाँ भी उपेक्षित नहीं रहे, बल्कि काव्य शास्त्र में विवेचित हुए हैं । अतः यदि भारतीय परम्परा का अवलोकन दिया जाय तो सौन्दर्य काव्य शास्त्र के परिप्रेक्ष्य में ही देखा जा सकता है[1] ।

के॰एस॰ रामस्वामी शास्त्री ने भारतीय सौन्दर्यशास्त्र में आनंद और रस की धारणा अथवा अभिनवगुप्त द्वारा निरूपित काव्य तत्वों के बीच चारु तत्वप्रतीति की धारणा को द्रष्टव्य माना है । इस प्रकार सौन्दर्यशास्त्र की भारतीय परम्परा की ओर संकेत किया है[2] ।

---

1. "The contribution of classical India to the philosophy of art may be summed up in three concepts : bhava, rasa, and dhvani. Since rasa presupposes bhava, we may even reduce the concepts to two, namely rasa and dhvani. This deals with these special concepts, discussing their aesthetics and their meta-aesthetics, their character and their significance".

   T.P. Ramachandran - The Indian Philosophy of Beauty, Part two - Special concepts Preface.

2. ";;;;;;;;; not only in outer India, a home of beauty and romance but inner India is even more truly rich at home . Indian art and Aesthetic have a history of extending over thousands of years".

   K.S.R. Sastri - Indian Aesthetics, p.1

संस्कृत विद्वान टी. पी. रामचन्द्रन ने भी भारतीय सौन्दर्यशास्त्र इतिहास को तीन कालों में विभाजित किया है[1]।

<u>तुलनात्मक सौन्दर्यशास्त्र के हस्ताक्षर</u>

"ओरिएण्टल ट्रेडीशन्स इन एस्थेटिक्स" के सम्पादक, टॉमस मनरो ने सौन्दर्यशास्त्र में और अधिक "अन्तर्राष्ट्रीयता" केलिए अपील करते हुए कहा है कि "मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अब से संसार के पूर्व या पश्चिम, किसी भी भाग में सौन्दर्य शास्त्र का सामान्य इतिहास केवल अपने भूखंड में उत्पन्न होनेवाले विचारों तक स्वयं को सीमित नहीं रख सकता कला के इतिहास को विश्वव्यापी सांस्कृतिक विकास के अंग-रूप में

---

1. "Thus we may speak of three broad periods in the history of the Indian philosophy of art. The period from the first century B.C. to the middle of the ninth century A.D. may be described as the period of formulation during which the concepts of bhava and rasa were enunciated by Bharata and the concept of dhvani was formulated by Anandavardhana. Then from the middle of the ninth century A.D. to the middle of the eleventh century we have a period of consolidation, when the concept of dhvani had to be defended against opponents. The third and final one extending from the middle of the eleventh century to as far asthe seventeenth century, is the period of the exposition of the relationship between bhava, dhvani and rasa".

T.P. Ramachandran - The Indian Philosophy of Beauty,p.30

समझने की प्रवृत्ति पूर्व और पश्चिम दोनों में सौन्दर्यशास्त्र जैसे पिछड़े विषय में भी प्रवेश करने लगी है।[1]" बीसवीं शताब्दी में पूर्वीय देशों में प्रचलित कला-विषयक चिन्तन की समृद्ध परंपराओं का परिचय प्राप्तकर पश्चिम ने समझ लिया कि इन प्राच्य परंपराओं की उपेक्षा करके सौन्दर्यशास्त्र का समुचित विकास अपूर्ण रहेगा। भारतीय कलाशास्त्रीय ग्रंथों के अनुवाद भी बड़ी तेज़ी से हुए हैं। आर॰नीली से रचित "एस्थेटिक एक्सपीरियन्स एकार्डिंग टू अभिनव गुप्त" इस का प्रमुख उदाहरण है। इसमें अभिनवगुप्त की रस-विषयक मान्यताओं का सटिप्पणी प्रामाणिक अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया गया है।

तुलनात्मक सौन्दर्यशास्त्र की दृष्टि से आनन्दकुमार स्वामी की अनेक कृतियों में संभवत: सबसे महत्वपूर्ण "द ट्रान्सफार्मेशन आफ नेचर इन आर्टस्" (1934) है। इसमें उन्होंने पाश्चात्य कला-सिद्धान्तों के साथ भारतीय, चीनी और जापानी कला-सिद्धान्तों की समानताओं और असमानताओं का निर्देश करते हुए कला-विषयक सार्वभौम चिन्तन-पद्धति की रूपरेखा प्रस्तुत की है। पुस्तक के आरंभ में ही उन्होंने लिखा - "पूर्वी और पश्चिमी दृष्टिकोणों को परस्पर संबद्ध करते हुए कला-विषयक एक सामान्य सिद्धांत केलिए आधार प्रस्तुत किया जा रहा है[2]"। ऐशियाई कला संबन्धी अपने अन्तरंग परिचय के आधार पर आनन्द कुमार स्वामी ने पाश्चात्य अध्येताओं के सम्मुख यह भली भांति प्रमाणित कर दिया कि पूर्वी देशों में भी चीन, जापान की अपेक्षा भारत में सौन्दर्यशास्त्रीय समस्याओं पर व्यवस्थित चिंतन अत्यधिक विकसित था[3]। रस और ध्वनि के मूल आधार को

---

1. श्रीमती निर्मला जैन से रचित "रस सिद्धान्त और सौन्दर्यशास्त्र से उद्धृत, पृ॰3
2. Ananda Kumaraswami - Transformation of nature in Art, p.3
3. Ibid, p.5

स्पष्ट करते हुए आनन्दकुमार स्वामी ने यह मान्यता व्यक्त की कि ये दोनों सिद्धांत मूलत: आध्यात्मिक है और अपनी पद्धति एवं निष्कर्ष में वेदान्ती है[1]।

भारतीय दार्शनिकों एवं साहित्य-मर्मज्ञों के सौन्दर्यशास्त्र पर रचे गये ग्रन्थों में महत्वपूर्ण है डा॰ सुरेन्द्रनाथ दास गुप्त का "सौन्दर्य तत्व" जो बंगला भाषा में सन् 1940 ई॰ में प्रकाशित हुआ, जिसमें पण्डितराज जगन्नाथ के "रस गंगाधर" के संदर्भ में रमणीयता का विशिष्ट गुण बताया है। पण्डितराज जगन्नाथ का यह वाक्य बॉमगार्टेन की धारणा के पर्याप्त निकट आ जाता है। उन्होंने रमणीयता को "भावभरा रोमांच {इमोशनल थ्रिल} भी बताया है जिसे पं॰ जगन्नाथ ने "चमत्कार" कहा है। सौन्दर्यानुभूति लोकोत्तर आह्लाद है और वह केवल अनुभवगम्य है। उन्हीं के शब्दों में सौन्दर्यानुभूति की प्रक्रिया इस प्रकार होती है -

"यह भाव भरा रोमांच, हमारे हृदय में, सुन्दर वस्तु के सौन्दर्य के अवलोकन से उत्पन्न होता है। और इस भाँति हमारे मन पर किसी समय, बहुत पहले देखी हुई, किसी सुन्दर वस्तु का प्रभाव, या संस्कार, अवशिष्ट रह जाता है। इन्हीं संस्कारों के सहारे हमें सौन्दर्य बोध होता है। सारत: प्राचीन प्रभावों या संस्कारों का, वर्तमान ज्ञान के साथ भावात्मक संयोग घटित करा देना ही, सौन्दर्य का मूल तत्व है[2]।"

1· Ananda Kumarswami - Transformation of nature in Art". p.46

2· इन्दिरा जोशी - सौन्दर्यशास्त्र और साहित्य-विवेचन के व्यापारिक पक्ष शीर्षक निबंध से उद्धृत नया आलोचक {साहित्यिक त्रैमासिक} अंक-2, अप्रैल-जून 1983, पृ॰29-30

कलाविवेचन में योगी श्री अरविंद का ग्रंथ "दि सिग्निफिकेन्स ऑफ इण्डियन आर्ट" का महत्वपूर्ण स्थान है । उन्होंने कलाविवेचन में सौन्दर्यशास्त्रीय सरणि अपनायी हैं ।

तुलनात्मक सौन्दर्यशास्त्र के क्षेत्र में डॉ॰ प्रवास जीवन चौधरी का नाम लिया जा सकता है । उनके चुने हुए निबन्धों के संग्रह को "जर्नल ऑफ एस्थेटिक्स एण्ड आर्ट क्रिटिसिज़्म" में अपने प्राच्य सौन्दर्यशास्त्र विशेषांक में प्रकाशित किया है । डॉ॰ चौधरी मूलत: दर्शनशास्त्र के अध्येता होने के साथ ही प्राचीन प्राच्य काव्यशास्त्र एवं आधुनिकतम पाश्चात्य सौंदर्यशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान है । उनकी सौन्दर्यशास्त्रीय व्याख्याओं की प्रकृति मनोवैज्ञानिक है । इसके अतिरिक्त सौन्दर्यशास्त्रीय विचार भी अपेक्षाकृत अधिक आधुनिक है । रस की तुलना करते समय उन्होंने "प्लेटो-अरस्तू तक ही अपने आपको सीमित न रखकर कोलरिज, कीट्स आदि रोमाण्टिक कवियों एवं टी॰एस॰ एलियट, आइ॰ए॰ रिचर्ड्स आदि आधुनिक विचारकों के काव्य-चिन्तन का भी उपयोग किया है । कहना न होगा कि तुलना केलिए गृहीत इन आधुनिक सिद्धान्तों के कारण प्राचीन रस सिद्धांत के कुछ नये पक्षों को उद्घाटित करने में उन्हें सफलता मिली है[2] ।

भारतीय दार्शनिकों के द्वारा सौन्दर्य तत्व के सम्बन्ध में परम्परागत भारतीय धारणाओं के सम्बन्ध में सर्वप्रथम प्रामाणिक एवं अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना त्रावणकोर विश्वविद्यालय में दर्शन-शास्त्र के प्रख्यात

---

1. Dr. P.G. Choudhari - The aesthetic attitude in Indian Aesthetics, Published in the journal ofAesthetics and Art Criticism.

2. निर्मला जैन - रस सिद्धान्त और सौन्दर्यशास्त्र, पृ॰7

आचार्य के॰एस॰ रामस्वामी शास्त्री ने की है । उनका ग्रंथ "दि इण्डियन कान्सेप्ट आफ द ब्यूटीफुल 1947 में प्रकाशित हुआ था ।

तुलनात्मक सौन्दर्यशास्त्र को व्यवस्थित अध्ययन का प्रयत्न डा॰ कान्तिचन्द्र पाण्डे ने किया । उनके महाकाय ग्रन्थद्वय "इण्डियन एस्थेटिक्स" तथा "वेस्टर्न एस्थेटिक्स" इसका साक्षी है । इसके अतिरिक्त उनके तीन प्रसिद्ध निबंधों में भी तुलनापरक अनेक संकेत सुलभ है[1] ।

भारत की विभिन्न भाषाओं में सौंदर्यशास्त्र संबंधी निरूपण अधिक मात्रा में न सही हुए है । भारतीय भाषाओं में रचित ग्रंथों की विशेषता यही है कि वे तुलनात्मक सौंदर्यशास्त्र संबन्धी है । यह स्वाभाविक भी है । भारतीय काव्य परंपरा में सौन्दर्यमीमांसा का व्यापक उल्लेख मिलता है । पश्चिमी सौन्दर्यमीमांसा का बृहत् इतिहास है । भारतीय सौन्दर्यशास्त्र के अध्येताओं ने दोनों पद्धतियों में तालमेल बिठाने का कार्य किया है । मराठी के स्व॰ बा॰सी॰ मरढेकर की पुस्तक "सौन्दर्य आणि साहित्य" का विशेष उल्लेख होना चाहिए । मराठी में उक्त ग्रंथ को मराठी साहित्य शास्त्र की गंगोत्री के रूप में देखा गया है । सौन्दर्यशास्त्र कला और साहित्य इनका संबंध और उससे उत्पन्न प्रश्नों को समझाने का प्रश्न यदि किसी ने किया है, तो वे श्री॰ मरढेकर ही है[2] । आधुनिक युग में डा॰ सुरेन्द्र बारलिंगे का नाम उल्लेखनीय होना चाहिए ।

---

1. (a) Indian Aesthetics History of Philosophy, Eastern and Western (Ed) S. Radhakrishnan.

   (b) A bird's eye view of Indian Aesthetics, Journal of Aesthetics and Art criticism.

   (c) Abhinava Gupth - An Historical and philosophical Study.

इन्होंने "सौन्दर्याचें व्याकरण" नामक ग्रंथ की रचना की है । उस ग्रंथ का एक सामान्य अनूदित रूप है "सौन्दर्य तत्व और काव्य सिद्धान्त" । कन्नड के कृष्णमूर्ति[1] मलयालम के प्रो. ए. पी. पोल[2] आदि ऐसे कुछ आलोचक है जिन्होंने सौन्दर्यशास्त्र का विवेचन किया है, उनके साथ साथ कृष्णचैतन्य का भी उल्लेख होना चाहिए[3] ।

हिन्दी में भी तुलनात्मक सौन्दर्यशास्त्र की दिशा में काफी महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे गये हैं । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल[4] और हजारी प्रसाद द्विवेदी[5] हिन्दी के दो विभूति है जिन्होंने आलोचना शास्त्र के विवेचन के दौरान सौन्दर्य मीमांसा संबंधी अपने वक्तव्य भी प्रस्तुत किया है । आधुनिक युग में तुलनात्मक सौन्दर्यशास्त्र का व्यवस्थित अध्ययन रमेश कुंतल मेघ ने किया है । उनके पहले ही शोध ग्रंथ के रूप में समर्पित डॉ. कुमार विमल के ग्रंथ का विशिष्ट स्थान रहेगा । डॉ. नरसिंहाचार्य के शोध प्रबंध का भी महत्वपूर्ण स्थान है । जैसे कि सूचित किया गया है, डॉ. मेघ ने सौंदर्य शास्त्र का समुचित अध्ययन किया है[6] । इस दिशा में उनके चार ग्रंथ प्रकाशित है । उनके अध्ययन की विशेषता यह है कि उन्होंने विविधोन्मुखी ज्ञानराशियों का समन्वय करके सौन्दर्यशास्त्र की मूल सत्ता को परिभाषित

---

1. Krishna murthi - Adhunika Bharatiya Sahitya
2. ए.पी. पोल - सौन्दर्यनिरीक्षण
3. Krishna Chythannia - Sanskrit poetics
4. आचार्य रामचंद्र शुक्ल - रस मीमांसा
5. हजारी प्रसाद द्विवेदी - ग्रन्थावली
6. अ. अथातो सौंदर्य जिज्ञासा
   आ. सौंदर्य मूल्य और मूल्यांकन
   इ. मध्ययुगीन रसदर्शन और समकालीन सौंदर्यबोध
   ई. साक्षी है सौंदर्य प्राश्निक ।

करने का कार्य किया है । पश्चिमी एवं भारतीय सौन्दर्यशास्त्र के बीच समन्वय के सूत्र स्थापित करते हुए डॉ॰ मेघ ने उन दोनों के सार सत्य को अपने "अथा तो सौंदर्य जिज्ञासा" नामक ग्रंथ में यों निष्कर्ष किया है -

सौंदर्य की रूपरेखायें
----

§क§ कलाकृति के आधार पर :-

1· जिस किसी वस्तु में सौंदर्य का गुण हो वह सुंदर है §प्लेटो, आगस्टाइन जगन्नाथ§

2· जिस किसी वस्तु में अलंकार हो वह सुंदर हैं §दंडी, भामह, लांजाइनस§

3· जिस किसी वस्तु में "विशिष्ट रूप" हो वह सुंदर है §वामन, कांट, क्लाइवबेल§

4· जिस किसी वस्तु में प्रकृति का अनुकरण हो वह सुंदर है §प्लेटो, श्री शंकुक§

5· जिस किसी वस्तु में संभ्रांति हो वह सुंदर है §अरस्तू, आनंदवर्धन§ तथा

6· जो वस्तु अभिव्यंजना हो वह सुंदर है §कुंतक, क्रोचे§

§ख§ कलाकार के आधार पर:-

7· जो वस्तु प्रतिभा की उपज हो वह सुंदर है §कुंतक, रोमांटिक कलामनीषी तथा

8· जिस वस्तु में माध्यम की सफल खोज हो वह सुंदर है §क्षेमेंद्र, हेगल§

§ग§ सौंदर्य प्रभाव के आधार पर :-

9· जिस वस्तु के वांछनीय सामाजिक प्रभाव हो वह सुंदर है §भरत, मम्मट, तोलस्ताय§

10· जिस वस्तु से रस या आनंद प्राप्त हो वह सुंदर है (अभिनवगुप्त, संतायन)

11· जिस वस्तु से विशिष्ट संवेग उत्पन्न हो वह सुंदर है (अभिनवगुप्त, पार्कर, तोलस्तोय, ड्यूकाशे)

12· जिस वस्तु में तदानुभूति या अंतरानुभूति (इंपैथी) हो वह सुंदर है (लिप्स, ली) तथा

13· जो वस्तु सत्य का, शिव का, आदर्श का, सार्वभौमिकता का, वर्णीयता का उद्घाटन करे वह सुंदर है (सभी प्रयोजनवादी)[1] ।

सौंदर्यशास्त्र और समालोचना शास्त्र

साहित्य-समीक्षा में सौंदर्यशास्त्रीय सिद्धांत, व्यवस्थाओं के विनियोग की, समझ का विकास बहुत आवश्यक है । सौंदर्यशास्त्र की समस्याओं का समाधान भी समीक्षा देते हैं[2] । अंग्रेजी साहित्य के भारतीय अध्यापक आर·बी· पटणाकर ने अपने निबंध सौंदर्यशास्त्र और साहित्य

1· रमेश कुंतर मेघ - अथातो सौंदर्य जिज्ञासा (1977), पृ·50-51

2· "Aesthetics has four main problems - the meaning and viability of the concept of art, the function of art, the existence and nature of aesthetic judgements, and the meaning of the terms characteristic of them, and the proper mode of analysis of works of art. The first two of these are characteristic of a philosophy of art, the third of a philosophy of beauty, the fourth of a philosophy of criticism.
F.K. Sparshott - The structure of Aesthetics, p.134

समीक्षा" में साहित्यकार के क्षेत्र में सौंदर्यशास्त्रीय सिद्धांतों के विनियोग की समस्या का समाधान समीक्षा की कसौटी के संबंध में खोजा है। उनका कहना है कि यदि समीक्षात्मक प्रयोगों में सुव्यक्त या गर्भित मूल्यांकन का प्रश्न उठता है, तो मूल्यांकन की कसौटी की खोज साहित्य-समीक्षा की चिन्ता का मुख्य विषय बन जाता है। साहित्य समीक्षा में यह महसूस किया जाता है कि अच्छा समीक्षक होने के लिए यह आवश्यक है कि वह समझे, सामान्यत: कला क्या है[1]। लीविस के अनुसार समीक्षात्मक बुद्धि का यही दायित्व है[2]। प्रसिद्ध विद्वान लुई अनीड रीड का कथन ध्यान देने योग्य है "यद्यपि कला के कुछ नियम और मानदण्ड होती है, फिर भी कलात्मक दृष्टि से ये आदेशात्मक नहीं होते और कोई भी वस्तु केवल इसलिए कला नहीं कहला सकती कि उसमें उन नियमों का पालन किया गया है[3]।

कला के सम्बन्ध में सामान्यीकरण की प्रवृत्ति गलत है, ऐसी धारणा विलियम एलटन द्वारा संकलित एवं प्रकाशित एक लेख संग्रह में भी व्यक्त की गयी थी[4]। मारिस वाइन्स द्वारा सम्पादित "प्राब्लमस इन एस्तटिक्स" (Problems in Aesthetics) शीर्षक ग्रंथ में, समकालीन लेखों में भी अनेक कलाओं की तात्त्विक एकता या कलाओं के तात्त्विक अन्तर्संबंध की धारणा को चुनौती दी गई है। स्वयं वाइन्स ने अपने लिखे "रोल आफ थियरी इन एस्तटिक्स" (Role of theory in Aesthetics) में विट्गेन्सटाइन के कलाओं की परिवारमूलक समानता से सम्बद्ध सिद्धांत के प्रकाश में इस अंतर्संबंध को अस्वीकार किया है। इसी

---

1. R.B. Patnakar - Aesthetics and Literary Criticism, p.12
2. "The business of critical intelligence is to determine what is actually there in the work of art.
   F.R. Levis - The Common pursuit (1952) p.224
3. Louis Arnand Reid - Meaning in the Arts, p.236
4. William Elton - Aesthetic and language, p.95

संग्रह के एक और लेख "आधुनिक कला निकाय" में पाॅल ऑस्कर क्रिस्टलर ने ऐतिहासिक आधार पर कला संज्ञा की अस्थिरता पर प्रकाश डालते हुए यह प्रतिपादित किया है कि कला के नाम पर पश्चिम के भी सदा एक उन वस्तुओं की गणना नहीं की जाती रही है, जिन्हें आज पाँच प्रमुख कलायें समझा जाता है । इसलिए उनके विचार से कलाओं के संबन्ध में किसी भी सामान्य आधार की खोज अर्थहीन है । विटगेन्स्टाइन ने विभिन्न कलाओं में उस प्रकार के परिवार मूलक संबंध की कल्पना की है[1] जिस प्रकार का सम्बन्ध विभिन्न कलाओं में पाया जाता है ।

कला-समीक्षक की दृष्टि सदैव कलाकृति के अपने गुण-धर्म की प्रासंगिकता पर रहती है । हेगल और शापेनहोवर के समय से शायद ही कोई इस प्रकार की सिद्धान्त - व्यवस्था प्रकाश में आई हो जिसमें कला की प्रकृति का विचार करते हुए कला रूपों के वैविध्य और उनके वर्गीकरण को केंद्रीय स्थान दिया गया हो । संतायन, क्रोचे, ड्यूई, या कलिंगवुट किसी की भी सौंदर्य शास्त्रीय सिद्धांत व्यवस्था कलाओं के योजनाबद्ध वर्गीकरण पर आश्रित नहीं है । सौंदर्यशास्त्र कला-वस्तु की आवयविक समग्रता को मान देता है, उपादानों के समायेपन को नहीं । यह बात प्लाटिनस से लेकर आज तक कही जाती रही है । नयी समीक्षा के कर्णधारों ने भी इस दृष्टिकोण का समर्थन किया है । क्रयंत ब्रूक्स ने कवि का कार्य अनुभव संश्लेषण बताया है[2] ।

---

1. Wittgenstein - Lectures and conversations (1966), p.32
2. Cleanth Brooks - Implications of an Organic Theory of Poetry. Literature and Belief (Ed.) M.H. Abrams, p.80

सामान्य कला धर्म के भीतर कला विशेष की निजता को ग्रहण करना सौंदर्यशास्त्रीय समीक्षा की आवश्यक शर्त है। साहित्यशास्त्रीय समीक्षा की आवश्यक शर्त है । साहित्य शास्त्रीय शब्दावली के स्थान पर कला संबंधी शब्दावली के प्रयोग मात्र से कोई भी अध्ययन "सौंदर्य शास्त्रीय" नहीं हो जाता । सौंदर्य शास्त्रीय समीक्षा की आधारभूत विशेषता उसकी कला धर्मिता है । इस प्रकार की समीक्षा का एक मात्र प्रयोजन कृति के कलात्मक उत्कर्ष को प्रकाश में लाना होता है । इस दृष्टि से शुद्धता का आग्रह उसमें अब सभी प्रकार के समीक्षाओं से अधिक रहता है । नयी समीक्षा, जो मूलत: सौंदर्यशास्त्रीय समीक्षा ही है, इस प्रवृत्ति की साक्षी है[1] ।

सौंदर्यशास्त्रीय समीक्षा में एकाकिकता इस सीमा तक होती है कि उसमें न केवल कला बाह्य विषयों से बची जाती है, बल्कि अवधान पूरी तरह कृति-विशेष पर केन्द्रित रहती है और कृति की स्वायत्तता को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है, क्योंकि किसी भी कला की आंतरिक एकता स्वायत्त कृति-विशेष की आंतरिक एकता होती है । शायद इसलिए "नयी समीक्षा" में भी कृति विशेष के संरचनात्मक और पाठगत गुणधर्मों की एकान्विति के विशेषण को महत्व दिया जाता है । नयी समीक्षा में एकान्विति के महत्व को इतनी दूर तक खींचा गया है कि कविता की समग्रता खंडित होने के भय से उसके अर्थ का निषेध किया गया है आर्किबाल्ड मैक्लिश ने काव्य कला (Arts poetica) शीर्षक कविता की अंतिम दो पंक्तियों में लिखा है - "कविता का अर्थ नहीं, उसका अस्तित्व अपेक्षित है । इस दृष्टि से सबसे अधिक महत्व का विषय उस सर्जनात्मक कल्पना का विश्लेषण है, जो प्रकृति के अंग प्रत्यंग में समाकर उसमें प्राणों का संचार करती है ।

---

1. John Crowe Ransom - The New Criticism, p.115

सौन्दर्यशास्त्रीय समीक्षा में कृति की स्वायत्तता और मूल्यांकन की आंतरिकता पर जो बल दिया जाता है, उसमें यह गर्भित है कि कृति की कलात्मक समग्रता ही सौंदर्यशास्त्रीय अध्ययन का विषय हो सकती है। कविता की स्वायत्तता और आलंकारिकता के बावजूद सौंदर्यशास्त्रीय अध्ययन में सामान्य की कुछ भूमिका अवश्य रहती है।

कृति केंद्रित अध्ययन में आस्वाद और रचना पक्षों को लेकर विचारकों में मतभेद रहा है। विचारकों का एक वर्ग, जो "सौंदर्यशास्त्र" में आस्वाद को प्रधानता देता है, कृति के आस्वाद से प्राप्त सौंदर्यानुभूति को मान देने के पक्ष में हैं, जब कि दूसरा वर्ग रचना की स्वायत्तता को इस सीमा तक सुरक्षित रखना चाहता है कि आस्वाद से निरपेक्ष रहकर कृति के रचनागत चमत्कार के उद्घाटन में ही समीक्षा की सार्थकता खोजता है। दोनों पक्षों के अपने-अपने तर्क हैं और अपनी-अपनी समीक्षा पद्धति भी।

सौंदर्य बोध का आधुनिक संदर्भ

कलाकृति या रचना के भीतर निहित सृजनात्मक अवस्थाओं को प्राप्त करती तथा उसे व्यापक संदर्भ के साथ परिनिष्ठित करने का उपक्रम सौंदर्य तत्वों के अन्वेषण से जुड़ा हुआ कार्य ही है और अन्ततोगत्वा नये सौंदर्य प्रतिमानों की स्थापना भी। आधुनिक कविता की आधुनिकता को

रेखांकित करते समय या आधुनिक कविता की भावभूमि को संस्थापित करते समय यह समस्या अवश्य उत्पन्न होती है कि आधुनिक रचना का सौंदर्यशास्त्र माने क्या है ? सौंदर्यबोध के प्राचीनतम तत्वों के आधार पर यहां विश्लेषण संभव नहीं है, ऐसे तत्व हमें उद्वेलित करते हैं । नये क्षितिजों की ओर बढने की प्रेरणा देते हैं । नयी परिस्थितियों के साथ सौंदर्यात्मक रुझान में अंतर आना स्वाभाविक परिणति मात्र है ।

आज हमारे सौंदर्य चिंतन में विवेक का महत्वपूर्ण स्थान है । यदि यह कहना उचित है कि मूल्यों का स्त्रोत मानव का विवेक है तो यह कहना भी ठीक है कि सौन्दर्य बोध मूलत: बुद्धि का व्यापार है । किन्तु सौंदर्य क्या है, यह न बता पाकर भी सुन्दर क्या है यह हम जानते हैं, पहचानते हैं, बता सकते हैं कि क्या सुन्दर होता है । और सुन्दर क्या है, यह बता सकने का अर्थ यह है कि हम कुछ ऐसे गुणों को पृथक कर सकते हैं जिनके कारण सुन्दर सुन्दर होता है - जिनकी उपस्थिति की पडताल करके हम कहते हैं कि सुन्दर सुन्दर है । ये तत्व क्या है ? उनकी तालिका प्रस्तुत करना अनावश्यक है । यहां आग्रह पूर्वक यही दुहराना यथेष्ट है कि सौन्दर्य-बोध बुद्धि का व्यापार है, बुद्धि के द्वारा ही हम उन तत्वों को पहचानते हैं, मानव का अनुभव ही उन तत्वों की कसौटी है[1] ।"

सच्चिदानन्द वात्स्यायन ने बुद्धि को अनुभव से जोडा है । अनुभव कोई जडपिंड नहीं है, अत: बुद्धि विकासशील है, उन्होंने आगे लिखा है, "बुद्धि का नये अनुभवों के आधार पर क्रमश: नया स्फुरण और प्रस्फुटन होता है और नया अनुभव पुराने अनुभव को मिटा नहीं देता, उस में जुडकर उसे नयी

1· सच्चिदानन्द वात्स्यायन - हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य (1967), पृ·10

परिपक्वता देता है । अनुभव के गणित में जोड ही जोड है, बाकी नहीं हैं । साहित्य के क्षेत्र में हम परम्परा की चर्चा इसी अर्थ में करते हैं - तरतमता उसमें अनिवार्य है । तो मूल्य या प्रतिमान, शब्दार्थ की दृष्टि से शाश्वत भले ही न हों, स्थायी अवश्य होते हैं, और उनमें जो परिष्कार या नया संस्कार ‹परिवर्तन उसे न कहना ही समीचीन होगा› होता है, उसमें शतियाँ लग जा सकती है । निस्सन्देह दूसरे भी मूल्य है - सामाजिक मूल्य- जो सामाजिक परिवर्तनों के साथ अपेक्षया अधिक तेज़ी के साथ बदलते हैं, किंतु हम यहाँ उनकी चर्चा नहीं कर रहे हैं, उनसे अधिक गहरे मूल्यों की बात कर रहे हैं । इन अधिक गहरे मूल्यों में भी यदि हम देखते हे कि कभी अपेक्षया अधिक द्रुत गति से संस्कार होता है, तो उसका कारण यही है कि जहाँ हमारी तर्कना या बुद्धि निरन्तर हमारे अनुभव को माँजतीऔर सायास विश्लिष्ठ संश्लिष्ठ करती चलती है, वहाँ कभी संचित अनुभव का दबाव सहसा हमें नयी दृष्टि भी दे देता है - अर्थात् बुद्धि का यह व्यापार एक प्रखरतर आलोक से दीप्त हो उठता है । यद्यपि ऐसा भी जब होता है तो अकारण नहीं होता, तो बुद्धि उस आलोक से लाभ उठाकर नयी प्रतिपत्ति करती है, वह फिर उसके आविर्भाव का कारण भी खोजती और खोज लेती है[1]।

अनुभव जगत के भीतरी मूल्यों के बदलने के साथ साथ हमारे नैतिक चिंतन की अंतर धारा भी बदलती है । इसका संबंध हमारे मानसिक एवं सास्कारिक जगत से हैं । अत: सौंदर्य बोध इसी संस्कार का परिष्कृत अवबोध है । आस्वादन को सौंदर्यबोध परिचालित करता है । आधुनिक कविता के निकट तक पहुँचने के लिए हमें नये सौंदर्यपरक प्रतिमानों की

---

1. सच्चिदानन्द वात्स्यायन - हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य, पृ.11-12

आवश्यकता है, क्योंकि "वास्तव में कृति और आलोचना दोनों के संसारों की पहचान तथा समझ के लिए जादू, धर्म, नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, राजनीतिशास्त्र, इतिहास और अर्थशास्त्र आदि का ज्ञान-विवेक लाजिमी है, क्योंकि ये मानवीय अनुभवों तथा संस्कृति के बहुविध स्रोत हैं। इनसे न तो सर्जना (सौंदर्य) और न ही आलोचना (निर्णय) को पृथक किया जा सकता है। इसलिए सौंदर्यबोधशास्त्र की भाषा में एक ध्रुवांत स्वयं प्रकाश्य ज्ञान का है तो दूसरा दर्शन का। बीच में अन्य छाया-उपछायाओं के अनुकूल अर्थछवियाँ तथा विच्छित्तियाँ मौजूद रहती हैं।[1]

व्याख्या और विश्लेषण के आधार पर कविता के काव्यगत संकेतों को पहचानने के साथ साथ उन संकेतों के अपने विशिष्ट संसार को भी परिभाषित करना है। उदाहरणार्थ एक सार्थक बिंब या अर्थवान प्रतीक को लें। ऐसे बिंब या प्रतीक मात्र कविता के बाहरी सौंदर्य विधान के प्रेरक तत्व नहीं, बल्कि आंतरिक सौंदर्य विधान को रूपायित करनेवाली बहिरंग अन्विति है। उन सबका एक सृजनात्मक वृत्त बना हुआ होता है। सौंदर्य इसी बाह्य एवं आन्तरिक संकेतों के समन्वय से उद्बोधित होनेवाला सृजनात्मक अनुभव है।

----

1. रमेश कुंतल मेघ - अथातो सौंदर्य जिज्ञासा (1977)
प्रस्तावना, 11

अध्याय - दो

नयी कविता : एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण

अध्याय - दो

नई कविता एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण

आधुनिकता : साहित्यिक सन्दर्भ

प्रत्येक मौलिक रचना तद्युगीन होने के साथ-साथ युग का अतिक्रमण भी करती है । इसकी आवश्यकता का बोध हर मौलिक रचनाकार के भीतर बना रहता है । आधुनिक कविता की पृष्ठ भूमि में इस प्रकार की अनिवार्यता का एहसास प्राप्त होता है । लेकिन उसकी विशेषता यह है कि अनिवार्यता का बोध सामूहिक रहा है; कई रचनाकार परिवर्तन की माँग से सचेत हुए, और प्रतिकृत भी होने लगे । समस्त भाषाओं की नई कविता की पृष्ठभूमि का ऐसा ही एक परिच्छेद है । आधुनिकता की चर्चा भी इसी से जुड़ी हुई है[1] । अत: नई कविता की प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में आधुनिकता को रेखांकित करते समय भी आधुनिकता की सुनिश्चित परिभाषा तैयार करने की समस्या उठती है । इरविंग हॉव ने ठीक ही लिखा है कि आधुनिकता एक व्यापक और भिन्नार्थद्योतक शब्द है, और उसकी परिभाषायें भी बेहद उलझी हुई हैं ।

---

1. "The term modernism is elusive and protean and its definition hoplessly complicated.

   Iriving Howe - The Idea of Modern-Literary Modernism, p.12

आधुनिक कविता की सौंदर्यशास्त्रीय भूमिका की स्पष्ट अवधारणा तक पहुँच पाने केलिए आधुनिकता की उलझी हुई अवस्था को एक सीमा तक सुलझाना पड़ता है । मोटे तौर पर विश्व साहित्य के मंच में तीसरे दशक[1] से लेकर और भारतीय साहित्य में छठे दशक[2] से लेकर आधुनिकता की समग्र चर्चा शुरू होती है ।

---

1. Modernism is a term now frequently used in discussions of twentieth century literature indeed, of all forms of twentieth century art. It was in 1920 s that the term Modernism began to move from a general sense of sympathy with the modern to a more specific association with experimentation in the arts. A survey of Modernist poetry was first published by Laura Riding and Robert Graves in 1927. And it is noticeable that neither I.A. Richards in The Principles of Literary criticism (1924) nor Dr. F.R. Leavis in New Bearings in English poetry (1932) employed the term Modernism, although both were concerned with modern qualities in poetry, especially that of T.S. Eliot - a modern sensibility as Leavis called him. Graham Hough in "Image and Experience" in 1960, found the same difficulty of terminology.

   Peter Faulkner - Modernism:Introduction:viii

2. Srinivasa Iyengar - Indian Literature Since Independence, p.12

सामान्यतः आधुनिकता को निषेधात्मक प्रवृत्ति के रूप में आँका जाता है । निषेधात्मकता उसकी एक प्रमुख अंतरंग पहचान होते हुए भी आधुनिकता परम्परा का परिपूर्ण तिरस्कार नहीं है । आधुनिकता परम्परा की सुदृढ़ नींव पर स्थित एक मौलिक एवं गत्यात्मक दृष्टि है[1] वह स्थिरता को तोड़ती रहती है । इस अर्थ में वह निषेधार्थी है । लेकिन परम्परा के गतिशील तत्वों के साथ जुड़कर समस्त गतिरोधों से आगे बढ़कर

---

1. "No poet, no artist of any art, has his complete meaning alone. His significance, his appreciation is the appreciation of his relation to the dead poets and artists. You cannot value him alone, you must set him, for contrast and comparison, among the dead. I mean this as a principle of aesthetic, not merely historical, criticism. The necessity that he shall conform, that he shall where, is not one-sided; what happens when a new work of art is created is something that happens simultaneously to all the works of art which preceded it. The existing monuments form an ideal order among themselves which is modified by the introduction of the new (the really new) work of art among them. The existing order is complete before the new work arrives; for order to persist after the supervention of novelty, the whole existing order must be, if ever so slightly, altered; and so the relation, proportions, values of each work of art towards the whole are readjusted and this is conformity between the old and the new".

   James Scully (Ed.) Modern Poets on Modern poetry (1973) pp.61-62

आधुनिकता जीवन मूल्यों की पहचान का दर्शन बन जाती है । स्टीफन स्पेंडर ने भी इस ओर संकेत किया है[1] ।

आधुनिकता के प्रेरक तत्व

आधुनिकता से युक्त जीवन दृष्टि को स्थापित करने में विश्व के विभिन्न लोगों में विकसित अनेकानेक ज्ञानराशियों का योगदान है । आधुनिकता के प्रारंभ के संबंध में वरजीनिया वुल्फ ने एक दिलचस्पी बात कही है, उन्होंने कहा, 1910 में आधुनिकता का प्रादुर्भाव हुआ;[2] यह कथन बाह्यतः असंगत या अटपटा सा लग सकता है । लेकिन उसी तिथि के आसपास इंग्लैंड में सरलियलिस्ट चित्रों की प्रदर्शिनी हुई थी । उसमें प्रदर्शित चित्रों ने आस्वादकों को आतंकित किया; प्रचलित एवं प्रचारित तथा अनुमोदित चित्रसंकेतों के स्थान पर उन्हें जब असंगत चित्रों की एक परंपरा मिली तो वे आतंकित हुए । संभवतः वरजीनिया वुल्फ का संकेत इस ओर रहा हो ।

---

1. "The contemporary belongs to the modern world represents in his work and accepts the historic forces moving through it, its values of science and progress. The modern is actually conscious of the contemporary scene, but he doesnot accept its values.

   Stephen Spender - Literary Modernism, p.48

2. "What Modernism does is to raise in ferment the notion not only of form but also of significant time, and this is one reason why andacious attempts discern a moment of transition, Henry Adams's 1900, Virginia Woolf's 1910, D.H. Lawrende's 1915, are themselves a Feature of Modern Sensibility.

   Malcolm Bradbury - James Mefarlane-Modernism, p.51

यहाँ एक प्रश्न उठ सकता है, चित्रकला की उस नूतन प्रवृत्ति का साहित्य पर क्या असर हो सकता है ? वस्तुत: यही आधुनिकता की प्रमुख विशेषता है । उसमें चित्रकला, वास्तुकला, एवं संगीत कला जैसी ललित कलाओं की नयी प्रवृत्तियों का सामंजस्य ही नहीं बल्कि कलेतर ज्ञानक्षेत्र की प्रवृत्तियों का प्रभाव[1] भी देखा जा सकता है ।

फ्रायड से शुरू होनेवाली मनोविश्लेषणात्मक पद्धति आगे चलकर कई नई दिशाओं की ओर अग्रसर होने लगी । मन का एक नया स्वरूप, मानसिक संसार का एक नूतन संसार इससे हमें प्राप्त हुआ है[2] ।

---

1. Boris Ford (Ed.) - The Modern Age (1964), p.35

2. Freud's book "The Interpretation of Dreams" was published in 1900, and has been ever since the cornerstone of the science known as psycho-analysis. In it he advanced a theory which was entirely new to science, as well as to the history of ideas. Dreams, he asserted, were a kind of language in which, under various poetical disguises, the secrets of the unconscious could be discovered at work. They were not just collections of non-sensical images, but might be regarded as a kind of language .... The department of psycho-analysis has provided us with some of the richest and most poetical thinking of the twentieth century.

   Lawrence Durrell - Key to Modern Poetry, p. 46

आधुनिकता को स्थापित करने में भौतिकी विज्ञान का प्रमुख अनुदान रहा है । काल का नया प्रतिमान भौतिकी विज्ञान ने स्थापित किया । काल, स्पेस का एक नया संतुलन स्थापित हुआ[1] । आइन्स्टैन के सिद्धांत के साथ हैसनबर्ग के सिद्धान्तों की महत्ता बढ़ी । उनकी "अनिश्चित सिद्धांत" का आधुनिक चिन्तन में प्रमुख स्थान है । सर्जनात्मक चिन्तन में इन साहित्येतर सिद्धान्तों का गहरा प्रभाव रहा है[2] ।

---

1. "The modern poetry unconsciously reproduces. Something like space-time continum in the way that it uses wors and phrases".

   Lawrence Durrell - Key to Modern Poetry
   Chapter Space time and poetry, p.32

2. "The decades of the present century have been chiefly remarkable for the breaches made in the usually accepted frontiers between the physical and metaphysical realms. Philosophers now explain psychological phenomena in physical terms; psysicists give metaphysical interpretations of natural phenomena. The future historian of modern literature will find it difficult to separate science and philosophy into distinct chapters. The century began with planck's quantum theory The first promulgation of Einstein's theory of relativity followed and the physical concepts that had seemed as firm as the earth itself began to grow unsubstantial'.

   Lawrence Durrell - Key to Modern Poetry Chapter III
   The World within, p.63
   (Quoted from Cambridge English Literature)

आधुनिकता के मूल्य चिंतन को अवधारणात्मक स्तर तक पहुँचाने में नृतत्वशास्त्र तथा अन्य सामाजिक दर्शनों का भी योग रहा है। विशेष रूप से फ्रेसर के "गोल्टन बो" का संकेत अवश्य किया जाना चाहिए। आधुनिकता का संकल्पनात्मक परिदृश्य जो फ्रेसर ने स्वरूपित किया था, टी·एस· एलियट जैसे कवियों और आधुनिक आलोचकों के लिए भी सहायक सिद्ध हुआ है[1] इस प्रकार दर्शन की आधुनिक चिंता-सरणियों ने भी आधुनिकता की आन्तरिक व्याप्ति को और बढा दिया है - विशेष रूप से अस्तित्ववाद ने। लेकिन इसको लेकर मतभेद हो सकते हैं, क्योंकि सामाजिक दृष्टि के अभाव के कारण प्रगतिगामी चिंतकों ने इसका विरोध भी किया है। परंतु अस्तित्ववादी प्रभाव को एकदम नकारा नहीं जा सकता। "अस्तित्ववादी धारणाओं की अनुगूंजों से आधुनिक साहित्य भरा पड़ा है, और विलक्षण यह चाहे कितना हो, लेकिन सच है कि आधुनिकता का एक लक्षण ही अस्तित्ववाद मान लिया गया[2]।"

आधुनिक कविता की ऐतिहासिक पीठिका पर विचार करते समय उपरोक्त सूचित आधुनिकता के अवधारणात्मक संकल्पों पर ध्यान देना पड़ता ही है। नयी कविता मानवीय अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर बल देनेवाली कविता यात्रा है। इसके अलग-अलग भौगोलिक इतिहास और भाषिक संदर्भ परिनिष्ठित कर सकते हैं। लेकिन नयी कविता का इतिहास हमें यह भी बता रहा है कि भौगोलिक भिन्नताओं के बावजूद आधुनिक मानवीय अस्मिता से जुडा हुआ एक अभिन्न स्रोत भी है। यही स्रोत भिन्न भिन्न भाषाओं की कविताओं को श्रृंखलाबद्ध कर देता है।

---

1. Lionel Trilling - Beyond culture essays in Literature and Learning.
   (Quoted from the Chapter on the modern element in modern literature, p.69

2. धनंजय वर्मा - आधुनिकता के बारे में तीन अध्याय (1984)

नयी कविता : विश्व परिदृश्य

विश्व कविता का परिदृश्य विस्तृत है। उसके अन्तर्गत आधुनिक युग की कई विकसित भाषाओं की कविताओं की गणना होती है। आधुनिक विश्व-कविता युद्धोत्तर युग की उपज है। यूरोप में "न्यू पोयट्री" के नाम से यह प्रसिद्ध है। औद्योगीकरण की प्रवृत्ति और महायुद्ध ने यूरोपीय जीवन को झकझोर दिया था। उसकी विभीषिका का वातावरण सब कहीं छाया हुआ था। यूरोपीय साहित्य-संदर्भ में इस वातावरण का गहरा अर्थ-द्योतन है। पश्चिमी साहित्यकारों के लिए यह सीधे साक्षात्कार का प्रश्न था। जीवन और जगत को लेकर एक नयी धारणा इसी दौर में विकसित हुई थी। यह तो अवश्य है कि इस वैश्विक मानसिकता का प्रसार अन्यान्य देशों के साहित्यों तक भी पहुँच गया है। पश्चिमी साहित्य ने इसका पहला अनुभव किया। मानवीय जीवन में व्याप्त अमानवीयता के स्वर ने आधुनिक पश्चिमी साहित्य के रूप और आकार को एकदम बदल दिया है।

अंग्रेज़ी तथा यूरोपीय साहित्य में इस नयी चेतना का पूर्वाभास बीसवी शती के आरंभ से ही प्रकट होने लगा था। बीसवीं शती सामाजिक जीवन में असन्तोष और बुभुक्षा का युग मानी जाती रही है। इस असन्तोष और बुभुक्षा के पीछे पाश्चात्य काव्य सिद्धांतों की एक बृहद सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि रही है। प्रथम तथा द्वितीय विश्व युद्धों के कारण मानव-मूल्यों में विघटन तीव्रता से हुआ था, जिसके कारण सभ्यता और संस्कृति का विघटन प्रारंभ हो गया था। मानव-मूल्यों के तीव्र विघटन से अनास्था, कुण्ठा, असन्तोष तथा एक व्यापक मोहभंग के स्वर काव्य में उभरने लगे। प्रथम विश्व युद्ध की विभीषिका ने इन स्वरों में आवृत्ति

परिणाम यह हुआ कि कवियों की जीवननिष्ठा, सौंदर्यबोध और अनुभूति पर कुठाराघात हुआ और उसका स्थान निराशा, वेदना, अवसाद, कुण्ठा, अनास्था, अनिश्चितता, आकुलता जैसी मनोवृत्तियों ने ले लिया । इस समय का यूरोपीय काव्य इन्हीं कुंठाओं, विकृतियों और विघटनशील तत्वों का प्रस्फुटन करता रहा। इलियट, येट्स, एज़रापाउण्ड, आँटन, आदि के काव्य इसी व्याकुलता के युग की देन है ।

युद्धोत्तर स्थिति

वैसे तो प्रथम विश्व-युद्ध के कुछ समय के पूर्व से ही खण्डित मानवमूल्यों का प्रभाव यूरोपीय साहित्य में स्पष्ट परिलक्षित होने लगा था । पश्चिम के देशों के नव लेखन का विश्व-युद्धों से घनिष्ठ संबंध रहा है । युद्ध जनित भौतिक क्षतियाँ तो कुछ समय में पूर्ण हो जाती हैं, परन्तु संवेदनात्मक घाव बहुत गहरे होते हैं और वे जनमानस को, खासकर संवेदनशील कलाकारों की चेतना को, बहुत दिनों तक आन्दोलित करते रहते हैं । इस दृष्टि से यूरोप के नये साहित्य का प्रारंभ लगभग 1930 से माना जा सकता है । महायुद्ध जन्य सबसे बड़ा खतरा संस्कारहीनता का रहा जो यूरोपीयय

---

1. .... the suddently morbid awareness of an individual life out of tune with the proclaimed ideal of its age, and paradoxically, the sense of being but one of the doomed many interned in megalopolis. The law of life becomes that of a living mass death; understandably, one of the crucial symbols of modern poetry, in English at least, becomes Dante's pictured prisoners in the antechamber ot Hell, ' Wretches never born and never dead' worthy of neither blame nor praise. These are the citizens of T.S. Eliot's Waste Lan, who lacking, all moral perspective, mechanical in their motions, are trapped by their bodily selves and are incapable of meaning.
M.L. Rosenthal - The Modern Poets (1975) pp.4-5

मस्तिष्क को जकड़ने लगा था । यूरोपीय नवलेखन के पीछे इस बौद्धिक संघर्ष का भी बहुत बड़ा हाथ विद्यमान है[1] ।

यूरोपीय सभ्यता और संस्कृति जिस संक्रान्तिकाल से होकर गुज़र रही थी और जिस तीव्रता के साथ उसका विघटन हो रहा था, उसी के अनुरूप वहाँ के काव्य-सर्जन में भी परिवर्तन होता रहा । अपनी विशिष्ट संवेदनीयता के कारण इस संक्रान्तिकालीन विघटन को वहाँ के कवियों ने अधिक गहराई के साथ महसूस किया था । उन्होंने यह अनुभव किया था कि आत्मा का विघटन हो गया है । टी॰ एस॰ इलियट के दि वेस्ट लैंड" में जहाँ आत्मा के विघटन की काली छाया विद्यमान है, वहाँ गिन्सबर्ग और उनके अनुयायियों की कविताओं में इसकी पराकाष्ठा का अंकन मिलता है । यूरोपीय संस्कृति के विघटनशील तत्वों का बीभत्स, कुत्सित, भयावह वर्णन जैसा "वेस्टलैंट" में मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है[2] । इसके व्यापक प्रभावों ने

---

1. Thomas B. Flanagan - An outline of British Literature Since 1900, p.9

2. "What is the significance of the modern Waste Land ? The answer may be read in what appears as the rich disorganization of the poem. The seeming disjointedness is intimately related to the erudition that has annoyed so many readers and to the wealth of literary borrowing and allusious. These characteristics reflect the present state of civilization. No one tradition can digest so great a variety of materials, and the result is a break-down of forms and the irrevocable less of that sense of absoluteness which seems necessary to a robust culture.'

F.R. Leavis - New Bearings in English poetry, p.71

परवर्ती यूरोपीय कवियों को ही नहीं, वरन् अन्य भाषा के कवियों को भी अप्रतिम रूप से प्रभावित किया । "वेस्टलैंड" के समान ही इलियट की "खोखला इनसान" {द हॉलो मेन} जैसी रचनायें भी विश्व भर की एक संपूर्ण पीढ़ी को आक्रान्त करने में समर्थ निकली हैं । इलियट के समान ही येटस, पाउण्ड, ओवन, ओडन, कमिंग्स आदि की रचनायें भी यूरोप की उसी विघटनवाली मानसिकता की धरोहर हैं ।

यान्त्रिक युग की कर्कशता ने यूरोपीय काव्य में संवेदनाओं को बहरा बना दिया था । बाह्य शान्ति के भीतर जो विस्फोटक ज्वालामुखी धधकती रही, नई पीढ़ी उनसे आक्रान्त हुई । अमेरिका की पराजित पीढ़ी" और इंग्लैंड के "क्रुद्ध युवक" इसी आक्रान्त मानसिकता के प्रतिनिधि हैं । पाश्चात्य जगत की अनास्था, कुण्ठा, निराशा और मोहभंग में फ्रायड, एडलर, युंग के मनोविश्लेषणकारी तत्वों तथा सार्त्र, कामू, काफ्का आदि के अस्तित्ववादी-एबसार्डवादी विचारधाराओं ने पूर्ण योग दिया । वैज्ञानिक आविष्कारों से जीवन इतना गतिमय हो गया कि नया कवि पुरानी कविता की भाव-संवलित शैली तथा भाव प्रवणता को छोड़कर बौद्धिकता की ओर उन्मुख होने केलिए बाध्य हुआ । बौद्धिकता से तार्किक शक्ति का अभ्युदय हुआ जिसने धर्म और ईश्वर के प्रति अनास्था पैदा की और नैतिक बन्धनों को शिथिल कर दिया । व्यक्ति का "स्व" प्रबल हुआ । मानव मूल्यों के विघटन के साथ मिलकर इस "स्व" ने अनेक कलेवर धारण किये । धीरे-धीरे संपूर्ण यूरोपीय तथा अमेरिकी काव्य इन ह्रासोन्मुखी प्रवृत्तियों से आक्रान्त-सा हो गया ।

"नए हस्ताक्षर"

यूरोपीय नवलेखन का जन्मकाल 1932 के आसपास माना जा सकता है जबकि नये कवियों का एक संकलन "नये हस्ताक्षर"(New Signature) के नाम से प्रकाशित हुआ है। इस संकलन का प्रकाशन यूरोपीय नवलेखन, खासकर नयी कविता के इतिहास में एक ऐतिहासिक महत्व की घटना सिद्ध हुआ। माइकल राबर्टस ने इस संकलन की भूमिका प्रस्तुत की थी। इस ऐतिहासिक संकलन में युवा पीढ़ी के नौ कवि सम्मिलित थे - डब्लू.एच. आडेन, जूलियन बेल, सेसिल डे लूइस, रिचर्ड एबरहर्ट, विलियम एम्बसन, जॉन लेमन, विलियम प्लोमर, स्टीफन स्पेंडर तथा ए.एल.जे. टेसमोन्ड। ये सभी युवा थे जो युद्धोत्तर परिवेश में परम्परागत पद्धतियाँ - अवधारणाओं को अधूरा समझ कर एक नयी दिशा की खोज में चल रहे थे। पुराने से असन्तोष तथा एक सर्वथा

---

1. "The great landmark that sticks out is the year 1930 when the poems of W.H. Auden were published. Here was a new voice of considerable power, a new technique, a new way of handling images, and in the wake ofAuden came a group of fine poets which issued its first anthology New Signatures in 1932. The subjecg-matter for this early poetry was very largely social criticism. At the most we can say that their solutions were perhaps over optimistic. Yet these poets, each in different ways, gave us something new to work on."

   Lawrence Durrell - Key to Modern poetry.
   Chapter 9, New Signatures, New Voices, p.166

नये की आकांक्षा सब में प्रबल थी । नये के अन्वेषण की प्रवृत्ति भी सब में थी, किंतु इस नये का स्वरूप क्या हो, इस विषय में कोई पूर्वनिश्चित धारणा इन में नहीं थी । "न्यू सिग्नचर्स" के प्रकाशन के एक वर्ष बाद प्रकाशित "न्यू कण्ट्री" नामक संकलन भी अंग्रेज़ी नवलेखन के क्षेत्र में विविध प्रकार की प्रतिक्रियायें उत्पन्न करने में सक्षम निकला ।

यूरोपीय "नयी कविता" आन्दोलन को आगे (के) जाने में इन संकलनों की अपनी ऐतिहासिक भूमिका निश्चय ही रही। किंतु इसके साथ ही साथ इन संकलनों के प्रकाशित होने के पूर्व तथा अनन्तर अंग्रेज़ी नयी कविता आन्दोलन को परिचालित करनेवाले चार प्रमुख कवि रहे है- डे लीविस, आडन, स्पेंडर तथा डे लुइस[1] । अंग्रेज़ी नयी कविता आन्दोलन को एक क्रमबद्ध भूमिका तथा रूपाकार प्रदान करने में इन तीनों ही कवियों का अपना ऐतिहासिक योगदान रहा है । अपनी "न्यू राइटिंग", "न्यू राइटिंग एण्ड डेलाइट" तथा "पेंग्विन न्यू राइटिंग" द्वारा और बाद में चलकर "द लंदन मेगज़ीन" के माध्यम से इन्होंने जहां एक ओर अंग्रेज़ी नयी कविता को एक व्यवस्थित दिशा और स्वरूप प्रदान किया वही दूसरी ओर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नयी कविता के आन्दोलन को प्रतिष्ठित करने में भी ये समर्थ रहे ।

---

1. The most celebrated poets of this period, Auden, spender, Mac Neice and Day Lewis, were all very young men in their twenties, and their work has a youthful freshness and vigour".

   C.B. Cox and A.E. Dyson - Modern Poetry Studies in practical criticism, p.28

नयी कविता आन्दोलन धीरे-धीरे इग्लैंड के अतिरिक्त अन्य देशों में भी फैलता रहा ।

अन्य पश्चिमी भाषाओं में नई कविता

आधुनिक कविता का क्षेत्र पश्चिमी देशों में विकसित होता गया । अंग्रेज़ी के अलावा फ्रेंच, जर्मन, रूसी, स्पानिश जैसी भाषाओं में नई कविता के विविध स्वर गुंजायमान होने लगे । विश्व के विभिन्न कोणों में कविता से संबन्धित कई प्रकार के मतवादों का भी विकास हुआ है जिसने भाषाओं के पारस्परिक प्रभाव को बढ़ावा दिया है । इस प्रकार अलग-अलग भाषाओं में रचित कविताओं के माध्यम से विश्व कविता का स्वरूप भी बना हुआ है । ऐसे कुछ कवियों के नाम है मयकोविस्कि, ब्रेस्ट, पॉल एलवारद, बोरहस, नेरूदा, ओक्टोवियोपास, वास्कोपोपा, यहूदा अमीचैन, जोसफ ब्रोटस्कि, आदि । इसी प्रकरण में एसगपोउड और विटमान ने अमेरिकी नयी कविता का जो सूत्रधारकिया था जिसका विश्व कविता पर अपना अलग स्थान है । यह परंपरा रोबिनसन, फ्रोस्ट, विल्यमस स्टीवनस, मूर, कमिंगस जैसे कवियों से होकर आगे बढ़ी है ।

समीक्षा का योगदान

विश्व कविता के अध्ययन में लगते समय यह अवश्य प्रतीत होगा कि कविता के आस्वादनपरक रूपायन की गतिशील बनाने में तथा उसके सौंदर्यात्मक पक्षों के अन्वेषण को तीव्रतर बनाने में सृजनात्मक समीक्षा का

महत्वपूर्ण योगदान है । जिन ग्रन्थों का संकेत जो दिया जा रहा है उनका संदर्भ पश्चिमी कविता के होते हुए भी एक अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ भी है । ऐसे कुछ समीक्षात्मक ग्रंथों के नाम इस प्रकार है :-

टी॰एस॰ एलियट	सेक्रट वुड §1920§
गिलबरड मुरे	प्रोब्लंस आफ स्टैल §1922§
टी॰ ई॰ ह्यूम	स्पेकुलेशन, हेरबरड रीड द्वारा संपादित §1924§
ऐ॰ए॰ रिच्चार्डस	प्रिनसिपलस आफ लिटररि क्रिटिसिसम§19
लोरा रैडिंग व रोबरड ग्रेवस	सरवे आफ मोडेनिस्ट पोयट्रि §1927§
ऐ॰ए॰ रिच्चार्डस	प्राक्टिकल क्रिटिसस §1927§
विल्लियम एमसन	सेवन टैप्स आफ अंबिग्युट्ट §1930§
विलसन नैटस	दि इंपीरियल तीम §1931§
एडमंड विलसन	एक्सिलस कासिल §1931§
एफ॰आर॰ लीविस	न्यू बियरिंगस इन इंग्लिस पोयट्रि §193
विमसाटट	दि वेरबल इकोण §1954§
ए॰एच॰ अब्रामस	लिटरेच्चर आनट बिलीफ §1958§
अल्लन टेबट §सं॰§	द लांगाज आफ पोयट्री §1960§
टोनालट स्टाफर	द इनटनट आफ द क्रिटिक §1966§

पत्रिकाओं की भूमिका

जब कभी कोई रचनात्मक आंदोलन शुरू होता है, उसका व्यापक समर्थन होता नहीं है । हर भाषा में सीमित आस्वादकों के दल की तरफ से नयी सृजनशीलता को परिभाषित एवं परिनिष्ठित करने का रचनात्मक कार्य शुरू होता है । अपनी लघुपत्रिकाओं के माध्यम से वे इस कार्य में लगते हैं ।

सभी भाषाओं का इतिहास इसका साक्षी है । ऐसी लघु पत्रिकायें ही नये सौंदर्य बोध को गति देती है । विश्व कविता को प्रोत्साहित करने में ऐसी पत्रिकाओं ने महत्वपूर्ण कार्य किया है । ऐसी पत्रिकाओं में प्रमुख हैं - ए.आर. ओरगे की "न्यू एज", फोरड मटोक्स फोरड की "इंग्लीस रव्यू", रिच्चारड अलर्टिगटन की "ईगोयिस्ट", एज्रा पोउड व विनड्हाम लीविस की "ब्लास्ट", लीविस की एनमी, एटगेल रिकवाट की "कलडर आफ मोडेन लेट्टेरस," मिड्डिलटन मुरे की 'अटलफी,' एलियट की क्रेटीरियन" और लीविस की "स्क्रूटिनी" आदि । इन पत्रिकाओं में समय समय पर निकले हुए लेख बाद में नयी कविता के प्रतिमान के आधार बन गये । इनमें समय समय पर प्रकाशित कवितायें ही बाद की वास्तविक नयी कविता सिद्ध हुईं ।

भारतीय नयी कविता

नयी कविता के उपयुक्त अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में भारतीय साहित्य पर यदि विचार किया जाय तो हम देख सकते हैं कि भारत के अन्यान्य भाषा-साहित्यों की भी वर्तमान काव्य-चेतना जो नवयुग परिवेश से अनुप्रेरित ही नहीं, अनुप्राणित भी है, नयी कहलाने की सर्वथा योग्य है[1] । निश्चय ही पश्चिमी देशों के कवियों ने यह काम अपेक्षाकृत पहले से प्रारंभ कर दिया था, जब कि भारत जैसे "दूसरी दुनिया" के अविकसित देशों के साहित्यों में, संभवत: कुछ अपनी निजी परिस्थितियों की वजह से, इस प्रवृत्ति का सूत्रपात किंचित विलंब से भी संभव हो सका है । पश्चिमी जगत में जब अस्तित्ववाद, एब्सर्डवाद, अतियथार्थवाद, क्यूबवाद,

---

1. Chief Editor - K.M. George - Comparative Indian Literature (Vol.I) Quoted from the introduction to Modern poetry section 4 by V.K. Gokak, p.322

दादावाद, अन्तश्चेतनावाद जैसे नये नये दार्शनिक व कलागत मतवाद प्रचलित हो रहे थे और इन्हीं के अनुकूल काव्य क्षेत्र में भी नये नये प्रयोग हो रहे थे, तब हमारे देश में भी राष्ट्रीय व सांस्कृतिक नवजागरण की आँधी, बस शुरू होने लगी थी जिसका प्रभाव देशीय साहित्यों में स्वच्छन्दतावादी भावना के रूप में मात्र प्रकट होने लगा था । अंग्रेज़ी साहित्य में जब एलियट जैसे कवि और "वेस्टलैंड" जैसे कवितायें निकल रही थी तब भारतीय भाषाओं में काल्पनिक स्वच्छन्दतावादी भावनाओं में डूबी आदर्शात्मक कविताओं का ही बोलबाला था । धीरे-धीरे पश्चिमी कविता जब अपनी प्रयोगकालीन अतियों और संक्रान्तिकालीन अनिश्चितताओं को पार करती हुई एक विशद रूपाकार में उभर रही थी तभी हमारे देश के युवा-बुद्धिजीवियों का ध्यान पश्चिम की इस नूतन काव्य धारा की ओर आकृष्ट होने लगा था । तत्कालीन भारतीय युवा मध्यवर्ग जिस संक्रांतकालीन मानसिकता से गुज़र रहा था, वही स्थिति यूरोप में कवियों-साहित्यकारों को काफी पहले ही अनुभूत हो चुकी थी । विशृंखलित जीवन के प्रति अपनी प्रतिक्रिया को वाणी देने के प्रयास में एक नूतन भावबोध और अभिव्यंजना पद्धति का सन्धान करने केलिए हमारे देश के युवा बुद्धिजीवी भी मज़बूर हो गये । परंपराओं और रूढ़ियों से सबके सब ऊब चुके थे । तत्कालीन प्रचलित आदर्शों विश्वासों से इनकी आस्था उड़ चुकी थी । किंतु इनके स्थान पर अपनाने केलिए इनके सामने न तो कोई खास वाद विशेष था, न ही कोई ठोस आदर्श । ऐसी हालत में पश्चिम के देखा देखी थे कवि भी भाव और शिल्पगत प्रयोगों की पद्धति को अपनाने लगे । यह स्वीकार करने में हमें किंचित भी संकोच नहीं होना चाहिए कि देश की नयी कविता के पीछे यूरोपीय नवलेखन का तथा ज्ञान विज्ञान के नये क्षितिजों और उनसे अनुप्राणित नये आदर्श-विश्वासों का बहुत बडा हाथ विद्यमान रहा है । वर्तमान युग-संदर्भ में ऐसा होना बिलकुल स्वाभाविक ही मानना पडेगा क्योंकि फिलहाल साहित्य भी विज्ञान की भाँति अन्तर्राष्ट्रीय हो गया है । ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक है कि

एक देश में जन्मे काव्यान्दोलन से दूसरे देश प्रभावित हो । किंतु इसका यह मतलब कदापि नहीं कि भारतीय भाषाओं की "नयी कविता" पश्चिमी नयी कविता का अन्धानुकरण है । केवल अन्धानुकरण के बल पर किसी उत्तम साहित्य की सृष्टि कदापि संभव नहीं है । प्राणवन्त कवि के लिए प्रेरणा स्रोत का कोई बंधन नहीं है किन्तु वह अपने युग और परिवेश से कटकर कुछ भी महत्वपूर्ण या सार्थक नहीं दे सकेगा । भारतीय नयी कविता के संदर्भ में भी यही बात चरितार्थ होती है । भारतीय नये कवियों केलिए पश्चिमी साहित्य और विचारधारायें प्रेरणा की एक महास्रोत रही हैं यह सही है । किंतु इस पश्चिमी विरासत को समकालीन भारतीय संदर्भों के साथ समन्वित करके ही भारतीय भाषाओं की नयी कविता आगे बढती रही है । सही मानों में भारतीय नयी कविता नवोदित भारतीय परिवेश की सार्थक वाहिका है, हालांकि वह एक विश्वव्यापी काव्य प्रवृत्ति का भारतीय छोर भी है ।

अब हम उपरोक्त संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में भारतीय नयी कविता के ऐतिहासिक परिवृत्त पर भी एक विहंगम दृष्टि डालेंगे, जिसे हम भारतीय साहित्य की संज्ञा ही देते हैं । यह मात्र एक अवितर्कित तथ्य है कि वह एक "बहु-भाषाई इंद्रधनुष है[1] । जिसमें हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक के भूविभाग में बोलीजानेवाली अनेक भाषायें भी सम्मिलित हैं । इन सबकी मिली-जुली चेतना ही भारतीय सृजनात्मकता की प्रतिनिधि कही जा सकती है । इसमें कोई मतभेद नहीं हो सकता कि हर आधुनिक भारतीय भाषा का अपना अलग साहित्य है जो अपने प्रांतीय रूप-रंगों में

---

1. It is a truism to say that the literary scene in India is a multilingual spectrum facinating and exasperating at once".
   K.R. Sreenivasa Iyengar - Indian Literature since Independence (Sahitya Academy 75) Introduction, p.vii

सजदजकर प्रकट होता है किंतु इसके साथ इनमें इनकी दृष्टि-संवेदनाओं में कुछ मूलभूत समानताएं भी विद्यमान हैं । स्थूल दृष्टि से देखने पर प्रत्येक भारतीय भाषा साहित्य की अपनी अलग समस्यायें सीमायें अवश्य देखी जा सकती हैं, फिर भी सूक्ष्म दृष्टि से विचार कर लेने पर पता चल सकता है कि इन सबकी मूलचेतना एक ही रही है । भारतीय भाषा साहित्यों की इत:पर्यन्त के इतिहास पर दृष्टिपात करने मात्र से यह सिद्ध हो सकता है कि चूंकि भारत के विभिन्न प्रान्तों की तत्कालीन परिस्थितियां मूलत: समान रही, अत: हमारे यहां के विविध भाषा साहित्यों में भी प्राय:समान स्तर के परिवर्तन प्रकट होते रहे हैं । हां, यह ज़रूर है कि परिमाणात्मक दृष्टि से यदि देखा जाय तो प्रत्येक भारतीय भाषा साहित्य की स्थिति कुछ भिन्न प्रतीत भी हो सकती है।किन्तु गुणात्मक दृष्टि से तो निश्चय ही इनमें प्रत्येक की स्थिति प्राय: एक-सी रही है । दूसरे शब्दों में प्रत्येक भारतीय भाषा साहित्य तत्कालीन भारतीय सृजनात्मक प्रक्रिया एवं उसकी सीमाओं और संभावनाओं का सही प्र तिफलन रहा है । आज की नयी कविता के संदर्भ में भी यही बात चरितार्थ होती है । प्रत्येक भारतीय भाषा का नया साहित्य या नयी कविता समसामयिक युगीन संदर्भों में समकालीन भारत के संक्रमणशील सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, नैतिक और राजनैतिक परिवेश से संपूर्ण वैविध्यों को नये भाव और नये शिल्प में अभिव्यक्ति देनेवाली, सही मानों में हमारे समसामयिक युग जीवन की सार्थक प्रतिनिधियां है । अपने अतीत की परंपराओं से रस ग्रहण करते हुए भी जीवन्त वर्तमान के प्रति अधिक जागरूक होने तथा पूरी ईमानदारी के साथ उन्हें आत्मसात् करती हुई आगे बढ़ने की प्रवृत्ति ही उसके पीछे काम करती रही है । उसकी मूलसंवेदना या अवबोध, जिसे हम "आधुनिकता" के नाम से पुकारते आ रहे हैं, एक ही है, एक ही युग और परिवेश की देन है, जिसको स्थापित करने में पश्चिमी साहित्य एवं विचार-दर्शनों का बहुत बडा हाथ विद्यमान रहा है । स्थूल दृष्टि से, प्रत्येक भारतीय भाषा साहित्य को अलग-अलग करके देखने पर

एक दूसरे के बीच कितने ही वैषम्य क्यों न दिखाई पडे, सूक्ष्मत: तो इन सबों की भूमिकाओं को समान पा सकते हैं । यही वास्तव में समकालीन भारतीय साहित्य की वह मूल अन्तर्धारा है जो इस वैज्ञानिक युग में भी भारतीय सृजनात्मक चेतना का सही प्रतिनिधित्व करती है ।

बंगला में नई कविता

उपरोक्त बहु-भाषायी स्तर पर यदि भारतीय नयी कविता पर विचार करें तो हम देख सकते हैंकि भारतीय भाषाओं में इस नयी चेतना का आद्याभास बंगला कविता में प्रकट हुआ था । अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में बंगला कविता पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि बंगला में इस नयी प्रवृत्ति का सूत्रपात अपेक्षाकृत पहले ही हुआ था जब कि "कल्लोल निकाय" की अभिधा से युवा पीढ़ी के गोकुलनाथ, प्रेमेंद्र मित्र, जीवनानन्द दास, बुद्धदेव बसु प्रभृति कवियों ने टागोर की आदर्शात्मक स्वच्छन्दतावादी परम्परा की प्रतिक्रिया में, उनसे विद्रोह करते हुए और पश्चिमी प्रभावों को आत्मसात् करते हुए अत्यन्त जीवन्त और बिलकुल नये ढंग की कवितायें लिखना शुरू की । इन कवियों के संबन्ध में कहा गया है कि ये लेखक मोटे तौर पर अति आधुनिकतावादी थे और टी·एस· एलियट, एज़रा पाउंड प्रभृति विदेशी कवियों के प्रभाव से मनोविश्लेषण और प्रयोग भी अपनाते थे । प्रारंभ में इनकी रचनाओं में चौंकानेवाले तत्वों की भी प्रधानता रहती थी । यह वास्तव में उस संक्रान्तिकालीन स्थिति का द्योतक है, जब कि परंपरागत अवधारणाओं से कवि लोग ऊब चुके थे और नये युग व परिवेश को नवीन ढंग से वाणी देने केलिए वे छटपटा रहे थे ।

कन्नड़ में नई कविता

कन्नड में नयी कविता के समान "नव्यकाव्य" शब्द प्रचलित है सन् 1950 में वी.के. गोकक ने इस नव्यकाव्य की जागृति की ओर संकेत किया था । उन्होंने कविता के समस्त संकेतों के परिवर्तनों पर बल दिया था[1] कन्नड़ के नव्यकाव्य का प्रारंभिक प्रस्फुटन गोपालकृष्ण अडिगा की कविताओं में मिलती है यद्यपि उनकी प्रारंभिक कविताएं परंपरागत ढंग से रचित हैं । अपने काव्य संग्रह की भूमिका में नयी संवेदन क्षमता पर बल दिया है[2]। अडिगा के बाद नव्य काव्य की परंपरा आगे शिवरुद्रप्पा, चंद्रशेखर कंबार, चंद्रशेखर पटेल, चेन्नय्या, सिद्धलिंगय्या, पी. लंकेश आदि के द्वारा विकसित हुई है ।

मराठी में नई कविता

मराठी की नयी कविता "नवकाव्य" के नाम से अभिहित हैं । नवकाव्य को विकसित कराने में मरढेकर का योगदान रहा है । उनका साहित्यिक आयाम व्यापक रहा है, इसलिए मराठी में नयी संवेदना के वे प्रवर्तक माने जाते हैं । उन्होंने बोलचाल की भाषा को रचनात्मक स्तर पर

---

1. K.M. George - Comparative Indian Literature Volume I - p.376
   Quoted from the Chapter on Modern Poetry - Kannada by Shantinath K. Desai

2. "Twentieth - Century Kannada poetry has now entered a new phase. The time has already come for a change in the nature and form of poetry .... The new sensibility that is growing up must find a new tongue, a new idiom to express itself".
   Ibid, p.376

विन्यसित करके नवकाव्य के सौंदर्य को बढाया है[1] । मर्ढेकर के बाद मराठी नव काव्य में दिलीप चित्रे, अरुण कोलहटकर, अरविंद एन·टी· महनोर आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है । चित्रे ने मराठी काव्य संवेदना को बहुत ही सूक्ष्म बनाया है और नयी सौंदर्य प्रतिती भी प्रदान की है । मराठी की आधुनिक कविता में प्रतिबद्ध कविता का स्वर भी मुखरित है जो शरतचंद्र मुक्तिबोध, वसंत बापट जैसे कवियों से संभव हुआहै । इनके आगे दलित कविता की परंपरा भी विकसित हुई जिसका प्रभाव अखिल भारतीय स्तर पर हुआ है । दलित कवियों में नामदेव ढसाल, नारायण सुर्वे, दया पवार, केशवमेश्राम, यशवंत मनोहर आदि नाम प्रमुख है ।

तेलुगु में नई कविता

परंपरिक कविता के बाद तेलुगु काव्य क्षेत्र में प्रगतिशील काव्य की अवधारणा हुई । रोमांटिक कविता के बदले तरुण लेखकों ने प्रगतिशील कविता का स्वागत सहर्ष किया । इनमें श्री श्री, (श्रीरंगम श्रीनिवास राव) पट्टाभि, टी· बालगंगाधर तिलक आदि प्र मुख हैं । इन कवियों ने मुक्त छंद में प्रगतिशील चिंतन को प्रश्रय दिया है ।

---

1. "Mardhekar developed these aspects of 'modernity' He was truly universal by education, temperament and aesthetic sensibility. He was firmly linked up as much with Marathi literary tradition as with European literary movements. More over, he was vitally interested in European painting, and this interest has influenced his work, both as an artist and as a critic.
   Modernity and contemporary Indian Literature Proceedings of a seminar published by Indian Institute of Advanced Study, p.238

इस दिशा में श्री श्री का योगदान विशेष उल्लेखनीय है । आधुनिक तेलुगु कविता को स्थापित करने में भी उनका योगदान है[1] । प्रगतिशील कवियों ने श्रीरंगम नारायणबाबू और पुरिपण्डा अप्पालस्वामी का भी परामर्श होना चाहिए । नारायण बाबू का "रुधिरज्योति" नामक काव्य का उल्लेख भी आवश्यक है । इन कवियों की परंपरा में आरुद्रा का स्थान भी महत्वपूर्ण है जिन्होंने आधुनिक तेलुगु कविता के क्षेत्र में काफी प्रयोग भी किये हैं ।

मुक्त छंद कविता का भी एक आंदोलन इस बीच शुरू हुआ था । आधुनिक तेलुग कविता पर विचार करते समय दिगंबर कविता का भी उल्लेख होना चाहिए जो छः कवियों द्वारा प्रवर्तित काव्य आंदोलन है, जिन्होंने अतीत की सारी बातों के प्रति अपना विद्रोह प्रकट किया हैं ।

मलयालम में नई कविता

मलयालम में रोमान्टिक कविता अपनी भावुक संगीतात्मकता की समग्रता के साथ अभिव्यक्ति पा रही थी और साथ ही साथ भावहीनता एवं घोर अहंवादिता के कारण कुपथ से संचरण भी कर रही थी । चंङ्गंपुषा की कविता की जनवादी प्रीति अविदग्ध है । लेकिन मलयालम की आधुनिक

---

1. To Sri Sri, everything under the sun - a pup, a match stick, a cake of soapet - are all fit subjects of poetry. This is a note worthy feanture of the modern poetry enunciated by him, since the shetoricians of the past had recognised only a few subjects as fit for poetry. What is there to feel proud of in the history of any country , he asks. The history of man is nothing but his desire to make others suffer, Sri Sri Contends and vehemently declares .... "Agitation is our breath Revolution our philosophy" Sri Sri once declared.
K.M. George Comparative Indian Literature Vol.I, p.457
Chapter on Modern poetry - Telugu by C.R. Sarma

कविता रोमांटिकता के तरल सौंदर्य का निषेध कर आगे बढ़ती है । वैलोप्पिल्ली श्रीधर मेनन और इडश्शेरी गोविन्दन नायर इस युग के सुमेरु पुरुष हैं । इन दोनों कवियों ने यह साबित किया कि रोमान्टिक कविता की अपनी प्रासंगिकता है और भाव तरलता से परे होकर कविता कवि की आत्मवत्ता के दर्शन का माध्यम भी बन सकती है । "सह्यन्टे मकन", "उज्ज्वल मुहूर्तम" §वैलोप्पिल्ली§ "काविले पाट्ट" "करुत्त चेट्टिच्चिकल" §इडश्शेरी§ आदि इसके श्रेष्ठ उदाहरण है ।

साठ के पहले ही आधुनिक कविता की शुरुआत हो चुकी थी । वास्तव में मलयालम की आधुनिक कविता रोमान्टिक कविता की अगली कड़ी और उसकी प्रतिक्रिया की परिणति है । जी·कुमार पिल्ले और सुगतकुमारी की कविताओं में रूमानी कल्पना देखी जा सकती हैं । पर साथ ही हम यह भी देख सकेंगे कि इनकी कविता रूमानी कविताओं की दुर्बलताओं का उल्लंघन कर रही है । विशेषकर जी· कुमार पिल्ले की । यह सामान्यत: कवि का औचित्य ही है । लेकिन हम यह भी नहीं भूल सकते कि यह औचित्य आधुनिक भावुकता और काव्य-संस्कार का पोषण ही कर रहा है । एन·वी· कृष्णवारियर द्वारा रचित "नीण्ड कवितकल" "कुरेक्कूडी नीण्ड कवितकल" और "कोच्चुतोम्मन" जैसी कवितायें रूमानी मान्यता का निषेध करती हैं । एम·गोविन्दन की प्रारम्भिक रचनाएं बौद्धिकता की जटिलता से मुक्त नहीं है । लेकिन उनमें कुछ ऐसा ज़रूर था जिसने गोविन्दन की कविता को प्रारम्भ से ही बचाया था । प्रथमत: भाषा पर निष्ठा तथा सच्चाई के प्रति गाढ़ आस्था रखनेवाले गोविन्दन अपनी अनुभूतियों के सच्चे उपासक थे । बाद में रचित उनकी "पोन्नानिक्कारन्टे मनोराज्यम्" "मरणान्तिल जीवितत्तिल" और "नाट्टुवेळिच्चम्" आदि कविताओं ने उन्हें एक नये सर्जनात्मक मंच पर खड़ा किया । अय्यप्प पणिक्कर, माधवन अय्यप्पत्तु, आट्टूर रवि वर्मा, कटमनिट्टा रामकृष्णन, सच्चिदानन्दन,

---

1. Indian poetry Today (Vol.IV) Quoted from the introduction to Malayalam poetry by Dr.K. Ayyappa Panicker, p.154

के·जी· शंकरपिल्ले, एम·एन· पालूर, एन·एन·कक्काड, टी· विनयचन्द्रन, विष्णुनारायणन नंपूतिरि, कावालम नारायण पणिक्कर, अय्यप्पन जैसे आधुनिक कवियों की कतार बहुत लम्बी है । आधुनिक संवेदना को तीव्रता के साथ स्थापित कर तदनुरूप संरचना का ताना बाना बुननेवाले इन कवियों का व्यक्तित्व अपने आप समर्थ एवं सम्पन्न है । "कुरुक्षेत्रम", "मृत्युपूजा" जैसी संकीर्ण रचनाओं से लेकर"इण्डनम्मावन"जैसी कविताओं के माध्यम से पणिक्कर ने अपने सृजनात्मक आयाम का परिचय दिया है । बहिरंग स्तर पर शिथिल चित्रों का सृजन करके सुदृढ आन्तरिक सौंदर्य पर बल देनेवाले हैं माधवन अय्यप्पत्तु । कविता को ऋचाओं से श्रेष्ठ माननेवाले आट्टूर रवि वर्मा विगत सुखद स्मृतियों के प्रति दुख प्रकट करते समय में भी आज के विडम्बना-जन्य जीवन को उसी रूप में अपनाते हैं । पुराने ताल-लयों को पुन: उद्धार करके संवेदना के नए आयामों का अन्वेषण करनेवाले हैं "कावालम्" । इस प्रकार मलयालम के नये कवि अपने अलग-अलग व्यक्तित्वोंके अनुरूप आधुनिक जीवन की सच्चाइयों को और उसके भी बीभत्स सौंदर्य को स्थापित करते आ रहे हैं ।

अन्य भारतीय भाषाओं में नई कविता

भारत की अन्य भाषाओं में भी स्वातन्त्र्योत्तर युग में नयी कविता का आशातीत विकास हुआ है । गुजराती कवि सुरेश, जोशी, रघुवीर चौधरी, असमिया के नवकान्त बरुवा, कश्मीरी के राही, पंजाबी के अमृताप्रीतम, मोहनसिंह, तमिल के का·ना· सुब्रह्मण्यम, ज्ञानक्कूत्तन, पुनुमय-पित्तन आदि ऐसे कुछ नाम हैं जिन्होंने अलग-अलग भाषा में सही भारतीय अवस्था एवं भारतीय मानसिकता का बिंब अपनी कविताओं में स्थापित किया हैं । सूक्ष्मता की ओर जाने पर इन कवियों में भिन्नता मिलेगी,

लेकिन बाह्य एवं आन्तरिक स्तर पर ही अभिन्नता का एक प्रवाह देखा जा सकता है; शायद यह प्रवाह ही भारतीय कविता की आधुनिक संवेदना को गतिशील बना देता है।

हिन्दी की नयी कविता

हिन्दी में नयी कविता पर विचार करने के पहले प्रयोगवादी कविता पर भी विचार करना आवश्यक है। प्रयोगवादी नयी कविता जैसा शब्द भी हिन्दी में उपलब्ध है। अर्थात् प्रयोगवाद और नयी कविता के बीच में भिन्नता के सूत्र को न प्राप्त करनेवाला दृष्टिकोण इसमें है। लेकिन दोनों को अलग अलग काव्य आंदोलन माननेवाले ही अधिक हैं। परन्तु नयी कविता की चर्चा प्रयोगवाद की चर्चा के बिना अधूरी रह जायेगी। नयी कविता प्रयोगवाद की विकसित कड़ी है।

आधुनिक हिन्दी कविता का प्रारंभ

आधुनिकता की चर्चा प्रयोगवाद के पहले कविता के क्षेत्र में छायावाद से शुरू करने की प्रथा है। अलावा इसके आधुनिकता के संकेत या आधुनिक कविता की संभावनायें निराला में संस्थित करने की दृष्टि भी उपलब्ध है। आधुनिकता और सृजनात्मक साहित्य नामक अपने ग्रंथ में इन्द्रनाथ मदान ने आधुनिकता की चर्चा निराला की "कुकुरमुत्ता" से शुरू की है। "आधुनिकता की दृष्टि से हिन्दी कविता की शुरुआत अगर "कुकुरमुत्ता" से की जाये तो आज यह असंगत नहीं जान पड़ता है और महादेवी ने एक सम्पादक के नाते यदि इसे "अपरा" में शामिल करने में संकोच किया था तो यह भी असंगत न था। इसमें छायावादी बोध का अस्वीकार था और उस समय यह कविता किस तरह हो सकती थी?

इसका अन्दाज़ और मिज़ाज छायावादी बोध से भिन्न था । इस तरह की कविताओं की रचना निराला इससे पहले कर चुके थे[1]। मदान ने आधुनिकता का दूसरा दौर तारसप्तक में शुरू होने की बात कही है । इसी प्रकार प्रयोगवाद के पहले ही आधुनिक कविता के प्रारंभ को सूचित करने की इच्छा नामवर सिंह ने की है । अपने तथ्य को अधिक स्पष्ट करने केलिए उन्होंने शमशेर बहादुरसिंह की टिप्पणी को उद्धृत किया है । "मौलिक रूप से "तारसप्तक" के प्रयोग अन्यत्र कई और कवियों के इससे काफी पहले के संग्रहों में मिल जाएंगे प्रथमत: निराला में ही - न केवल "तारसप्तक" के लगभग सभी प्रयोग बल्कि उससे भी और कहीं अधिक, कहीं अधिक; दूसरे पन्तजी में उनकी अतुकान्त और मुक्त छन्द की कविताओं में - लगाकर "ग्रंथि" से "युगवाणी" तक । फिर नरेन्द्र शर्मा ने भी अपनी कतिपय वर्णात्मक अतुकान्त मुक्त छंद की कविताओं में अपनी एक विशिष्ट शैली का परिचय दिया है (मसलन "वासना की देह" में - "पलाशवन"), यद्यपि वह उनकी सामान्य धारा नहीं । उनकी एक कविता "बटन होल" भी पाठकों को अपरिचित न होगी[2]।" तदनन्दर नामवरसिंह ने अपनी बात कही है जो शमशेर के विचार से भिन्न भी नहीं है । "सारांश यह है कि "तारसप्तक" के प्रकाशन के चार-पाँच वर्ष पूर्व "तारसप्तक" के कवियों के अतिरिक्त केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहुदुर सिंह, त्रिलोचन, भवानी प्रसाद मिश्र जैसे अनेक समर्थ कवि नये ढंग की काव्य-रचना कर रहे थे । इस बीच नरेन्द्र शर्मा ने भी रूमानियत से अलग हटकर नये काव्य प्रयोग किए । निराला की "अनामिका" में संकलित 1937-38 की कविताओं और आगे चलकर

---

1. डॉ॰ इंद्रनाथ मदान - आधुनिकता और सृजनात्मक साहित्य (1978), पृ॰12

2. शमशेर बहादुर सिंह के द्वारा "नया साहित्य" में किये गये "तारसप्तक" की समीक्षा - नामवरसिंह के कविता के नये प्रतिमान से उद्धृत, पृ॰87

1941 में प्रकाशित "कुकुरमुत्ता" शीर्षक लम्बी कविता से स्पष्ट है कि हिन्दी में "तारसप्तक" के प्रकाशन से पहले ही नये परिवर्तन की ज़ोरदार हवा बह चुकी थी । "रूपाभ", "उच्छृंखल" जैसी अल्पकालिक एवं "हंस", विशाल भारत" जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाएं इस परिवर्तन का उद्घोष कर रही थी । इनके अतिरिक्त माखनलाल चतुर्वेदी का "कर्मवीर" भी क्षेत्रीय प्रतिभाओं की नई रचनाएँ प्रकाश में ला रहा था । "तारसप्तक" इसी जीवंत परिवेश की उपज और एक अभिव्यक्ति है । सामान्यतः 1938 को इस परिवर्तन की विभाजक रेखा मान सकते हैं "रूपाभ" और "उच्छृंखल" जैसे इस परिवर्तन-काल की मनोवृत्ति की दो संज्ञाएँ हैं[1] इन दोनों वक्तव्यों से यह स्पष्ट होता है कि प्रयोगवाद के बहुत पहले से ही नयी कविता का वातावरण बन रहा था । कोई भी नयी काव्य प्रवृत्ति एकदम उद्भूत होती भी नहीं है । इसलिए प्रयोगवाद से आधुनिक कविता का प्रारंभ मानते हैं कि तारसप्तक के प्रकाशन ने बाद में कविता के क्षेत्र में काफी प्रभाव डाला है । तारसप्तक का यह जो महत्व है, उसे अस्वीकारा नहीं जा सकता । स्वयं नामवर सिंह ने इस तथ्य को स्वीकार किया है । "एक लम्बी चिन्तन प्रक्रिया की परिणति के रूप में प्रकट होने के बावजूद "तारसप्तक" के अपने आकर्षण भी थे । पहला आकर्षण प्रयास की सामूहिकता, दूसरा आकर्षण कवियों द्वारा अपनी अवस्था की घोषणा में साहसिकता; तीसरा आकर्षण अपने-आप को "राहों का अन्वेषी" स्वीकार करने की विनयशीलता । प्रचलित काव्य रुचि के वातावरण में "तारसप्तक" की कवितायें अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न न कर सकीं किन्तु "अन्वेषण" की घोषणा ने काव्य के क्षेत्र में सृजन की सम्भावना केलिए निश्चित रूप से आश्वस्त किया । "तारसप्तक" का यह सर्जनात्मक खुलापन सबसे महत्वपूर्ण हैं[2] ।" निराला की रचना धर्मिता को तथा उत्तर छायावादियों में

---

1. डॉ. नामवर सिंह - कविता के नये प्रतिमान (1974), पृ.87-88

2. वही, पृ.93

प्राप्त किंचित आधुनिक दृष्टि को और प्रगतिवादी कवियों में से उभरे हुए त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल और नागार्जुन की महत्ता को मानने के उपरान्त भी "तारसप्तक" का अपना अलग स्थान है।

"तारसप्तक"

तारसप्तक का प्रकाशन 1943 में हुआ। उसके प्रकाशन के आसपास जो परिस्थितियाँ थीं वह कविता को बदलने में सहायक सिद्ध हुईं। नये युग के यथार्थ की जटताओं से संत्रस्त नयी पीढ़ी इस नये युग के सांस्कृतिक विघटन से बुरी तरह आक्रान्त थी। औद्योगिक और तकनीकी प्रगति ने मनुष्य की जितनी सार्वजनिक सुख सुविधायें प्रदान की थीं, वे भी नयी पीढ़ी के नवयुवकों को सन्तुष्ट करने में असमर्थ थीं। परिणाम स्वरूप उनमें जो एक खास प्रकार की अन्तर्मुखी दृष्टि, आत्मनिष्ठ मानसिकता एवं बौद्धिक निस्संगता की भावना पनप रही थी, उन्हें अभिव्यक्त करने में तत्कालीन रूमानी स्वच्छन्दतावादी तथा प्रगतिवादी दोनों ही प्रकार की कवितायें समान रूप से असमर्थ थीं। तत्कालीन कविता की इन प्रचलित धाराओं का शैली-शिल्प इस परिवर्तन का वहन करने में एकदम असमर्थ था। ऐसी हालत में अपने को संपूर्णतया समग्रता के साथ संप्रेषित करने केलिए तथा नवयुग की नयी वास्तविकताओं को सार्थक रूप से अभिव्यक्ति देने के लिए नये रूप-शिल्पों को ढूंढ निकालना इन नये कवियों के लिए अनिवार्य सा हो गया है। "तारसप्तक" की अधिकतर कविताएं परिवेश की सजगता से युक्त हैं, पर जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि भारतीय परिवेश की दृष्टि से उन पर आंशिक रूप से प्रश्नचिन्ह भी लगता है। परिवर्तित संदर्भ को कवि ने बाहरी प्रभाव के रूप में ग्रहण किया था जो आंशिक रूप में हमारे इतिहास-भूगोल में भी सच थ

---

1. डा॰ अरविन्द सप्तक काव्य (1976), पृ॰37

बाद में चलकर प्रयोगवाद नाम की निरर्थकता स्वयं सिद्ध हो गयी, तो इन कवियों ने इस नामकरण का खुलकर विरोध किया और अपनी रचनाओं को, फिर पाश्चात्य साहित्य से प्रभाव ग्रहण कर "नव लेखन" या नयी कविता नाम देने लगे। सन् 1951 में प्रकाशित "दूसरा सप्तक" की भूमिका में अज्ञेय ने स्पष्ट घोषणा की कि केवल प्रयोगशीलता ही किसी रचना को काव्य नहीं बना देती, हमारे प्रयोग का पाठक या सहृदय केलिए कोई महत्व नहीं है, महत्व उस सत्य का है जो प्रयोग द्वारा हमें प्राप्त हो। प्रयोगों का महत्व कर्ता केलिए चाहे जितना हो, सत्य की खोज लगन चाहे उसमें कितनी भी उत्कृष्ट हो, सहृदय के निकट वह सब प्रासंगिक है। पारखी मोती परखता है, गोताखोर के असफल उद्योग नहीं[1]। आगे उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि प्रयोगवाद कोई वाद नहीं है, हम वादी नहीं रहे, न ही हैं। न प्रयोग अपने आप में इष्ट या साध्य है - अतः हमें प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है जितना कवितावादी कहना[2]। संक्षेप में "प्रयोगवाद" "नयी कविता" की आरंभिक स्थिति की अभिधा है या यों कहें कि संक्रमणकालीन नयी कविता का प्रचलित नाम "प्रयोगवाद" है। आरंभिक स्थिति में, इस धारा के कवियों में अभिव्यक्ति की नवीन भूमियों की खोज और उद्घाटन तथा विषयवस्तु को नये आयाम प्रदान करने की जो प्रवृत्ति विद्यमान थीं, वह धीरे-धीरे अपनी अतिवादिता के कारण एक रूढी सी हो गयी थी। किंतु बाद में चलकर खासकर स्वतंत्रता प्राप्ति के बादवा दशक के आरंभिक चरण तक आते आते कविता अपनी इस आरंभ कालीन अतियों की स्थिति से बचकर एक अधिक स्वस्थ और संतुलित भूमि पर प्रवेश कर सकी थी। इस दृष्टि से "नयी कविता" को प्रयोगवादी कविता का सन्तुलित रूप या उसी कारण स्वस्थ विकास मानने में कोई आपत्ति नहीं है

1· अज्ञेय - दूसरा सप्तक की भूमिका, पृ·6

2· वही, पृ·6

संक्षेप में "नयी कविता" वर्तमान युगीन कविता की उस विशिष्ट धारा का नाम है, जो छायावाद की वायवीयता एवं रूमानियत की प्रतिक्रिया में शुरू में नये प्रयोग और नयी नयी राहों के अन्वेषण के रूप में प्रकट हुई थी और जो क्रमश: स्वस्थित और विकसित होकर नये युग और परिवेश की सार्थक वाहिका बनकर उपस्थित हुई थी । इस नयी धारा के स्वरूप विकास का अपना एक ऐतिहासिक परिवृत्त रहा है ।

नयी कविता, नये वैज्ञानिक युगीन जीवन और परिवेश की नयी काव्यात्मक अभिव्यक्ति है । सच्चे अर्थों में वह नये काल के संपूर्ण वैविध्यों को नवीन रूप-शिल्प में अभिव्यक्ति देनेवाली, युगीन काव्य धारा है वर्तमान वैज्ञानिक युगीन चेतना एवं ज्ञान विज्ञान के नये क्षितिजों से सहज ही आर्जित नव प्रशस्तियों को युग-संदर्भों के अनुकूल पूरी गंभीरता के साथ आत्मसात् करते हुए आगे बढने की ईमानदार प्रवृत्ति के परिणाम स्वरूप ही इस नयी कविता धारा का प्रादुर्भाव हुआ था । सही मानों में वह नये और बदले हुए युग संदर्भों और बदली हुई जीवन स्थितियों और बदले सौंदर्य मानों की कविता है । सुन्दरता की शाश्वत धारणा को भी नई कविता ने बदल दिया है[1] ।

नये युग की इस नयी कविता धारा को लेकर गत कुछ वर्षों में हमारे साहित्य-जगत में अनेक परस्पर विरोधी मतवाद प्रचलित होते रहे हैं । बहुत से विद्वान नयी कविता को कविता की उत्तम कोटी में स्थान देने के पक्ष में नहीं है । उनके विचार में नयी कविता, कविता के चिरन्तन या सर्वमान्य कहे जानेवाले तत्वों से विहीन, कविता की स्वरूप परंपरा से कटी हुई

---

1. लक्ष्मीकान्तवर्मा - नई कविता के प्रतिमान, पृ.97

अधम कोटी की कविता है । इस संदर्भ में अवश्य ध्यातव्य है कि नयी कविता अपनी पूर्व-युगीन कविता धाराओं के प्रति तीव्र असन्तोष और प्रतिक्रिया का भाव लेकर उपस्थित हुई थी । काव्य संबन्धी रूढ़िगत मान्यताओं और युगीन संदर्भों में बासी प्रतीत होनेवाले बहुत से उपादानों का उसने निषेध भी किया था । किंतु इसका कभी भी यह मतलब नहीं हैकि नयी कविता अपनी पूर्ववर्ती काव्य परंपराओं से एकदम विछिन्न या कटी हुई है । हिन्दी की नयी कविता के उद्‌गम और विकास के इतिहास पर दृष्टिपात करने से इस बात की सचाई अनायास ही विदित हो सकती है । यह सत्य चरितार्थ होता है कि नयी कविता जिस भूमि में जड जमायी हुई है, वर्षों का काव्य-प्रवाह अपने रस से उसे सिंचित करता रहा है । उसका विकास एकदम अचानक या शून्य में से हुआ हो, ऐसा भी बात नहीं है । उसके पीछे समय की एक सुदृढ़ पृष्ठभूमि रही है । इसी पृष्टभूमि पर खडे होकर और नये-नये प्रयोग करती हुई वह आगे बढती रही है । ललित शुक्ल इस विकास की रूपरेखा इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि नयी कविता के दौर में एक तो सप्तकों की परंपरा प्रयोगवाद से टूटकर नयी कविता में आ मिली और दूसरे नयी कविता का एक विशाल परिमंडल बना जिसके अंतर्गत प्रयोगवाद, प्रगतिवाद, कुछेक छायावादी सभी आए । जहाँ तक नयी कविता नाम का प्रश्न है, यह किसी प्रतिक्रिया में दिया गया नाम नहीं है । अंग्रेज़ी साहित्य में "न्यू पोएट्स" की संरचना पुरानी है । बहुत पहले न भी जाएं तो भी सन् 1920 ई॰ में डी॰एच॰ लारेंस की कविता पुस्तक "न्यू पोएम्स" प्रकाशित हुई थी । और सन् 1960 में भी एक काव्य पुस्तक प्रकाशित हुई थी "न्यू पोएम्स" के नाम से जिसमें डेनी एब्से, डब्लू॰एच॰ आडेन, अलेक्ज़ेंडर बेडे, पेट्रीशिया बीयर, फ्रेंसिस बेरी, पी॰क्लार्क, सी॰डे॰ लेविस, ग्राहम हाफ, एडिथ सिटवेल, स्टीफन स्पेंडर, डेविड राइट और जेम्स रीब्ज़ आदि कवि सम्मिलित थे । संपादिन एंटनी थ्रोनिन और उनके साथियों ने किया था । हिन्दी में नये पत्ते 1953 में लक्ष्मीकांत वर्मा और रामस्वरूप चतुर्वेदी के संपादन में निकला था ।

इसके बाद सन् 1954 में जगदीश गुप्त और रामस्वरूप चतुर्वेदी ने "नयी कविता" का पहला अंक निकाला । सन् 1955 में भारती और लक्ष्मीकांत वर्मा के सहयोगी संपादन में "निकष" पत्रिका का सूत्रपात हुआ । यही वह समय है जब "नयी कविता" नाम ने ज़ोर पकड़ा । अज्ञेय भी "नयी कविता" संबोधन पसंद करते थे । गिरिजाकुमार माथुर ने "नयी कविता सीमाएं और संभावनाएं" नाम की पुस्तक ही लिख डाली । मुक्तिबोध ने "नयी कविता का आत्मसंघर्ष" की रचना की । जगदीश गुप्त "नयी कविता" संकलन के माध्यम से नयी कविता के प्रसारक के रूप में अभी तक रचना-तत्पर हैं । लक्ष्मीकान्त वर्मा ने "नयी कविता के प्रतिमान" स्थिर किए । "नयी कविता" की काव्य यात्रा का प्रारंभ एक विशेष स्थान से न होकर चतुर्दिक से हुआ । जगदीश गुप्त ने अपने संतुलित और नवीन विचारों द्वारा नयी कविता के साथ उठनेवाले नकली आंदोलनों की भीड़ को तितर-बितर भी किया । अब नयी कविता पूर्ण प्रतिष्ठित है । उसका रथ अनेक मोडों, ऊंची-नीची ढलानों प्रशस्त पगडंडियों और भारत में पायी जानेवाली अव्वल, दोयम दर्जों की सड़कों से गुज़रता हुआ आगे बढ़ रहा है ।[1] कहने का तात्पर्य यही है कि नयी कविता को कविता की स्वस्थ परंपरा से कटी हुई मानना बिलकुल ठीक नहीं होगा, यद्यपि वह एक व्यापक प्रतिक्रिया और निषेध का भाव लेकर उपस्थित हुई थी ।

नई कविता : युग की प्रतिनिधि कविता

नयी कविता नये युग की प्रतिनिधि कविता है । उसमें नवीनता के प्रति एक विशेष लगाव आरंभ से ही विद्यमान रहा है । अपनी पूर्वयुगीन कविता-धाराओं के रूढ़, संकुचित एवं सीमित दायरों को तोड़ते हुए तथा विश्व युद्धों एवं नयी वैज्ञानिक प्रगति के फलस्वरूप देश विदेश में बहुततेज़ी से विकसित नयी सामाजिक, आर्थिक, नैतिक और राजनीतिक परिवेश और

---

1. ललित शुक्ल नया काव्य नये मूल्य (1979) अध्याय 5 नयी कविता, पृ. 167

उनके व्यापक प्रभावों से अनुप्राणित एवं उनके प्रति बौद्धिक सजगता एवं सहज मानवीय संवेदना को लेकर विकसित यह कविता "नयी" कहलाने की सर्वथा अधिकारिणी है । "यह नवीनता अथवा विशिष्टता है काव्य में व्यक्ति-मानव की, अपने परिवेश के साथ असंख्य भावसूत्रों से जुड़े हुये और अपने अन्तर की अतल गहराइयों में झांकते हुए आत्मसजग व्यक्तित्व की, अपनी सम्पूर्ण सामाजिकता तथा व्यक्ति सत्ता में, अनेक स्तरों पर, नानाविध रूपों में प्रतिष्ठा । मानव व्यक्तित्व की सामाजिकता तथा आत्मसजगता की यह बहुरूपी स्वीकृति ही हिन्दी के वर्तमान काव्य की नवीनता है और यही कारण है कि यह नवीनता किसी नये आकस्मिक रूपगत अथवा विषयगत तत्व के प्रचलित हो जाने में नहीं है, बल्कि समूचे पिछले हिन्दी-काव्य की परिणति के रूप में है, इसलिए नयी कविता की संज्ञा केवल किसी नवीन छन्द, लय, शब्द तथा भाव-विन्यासवाली कविता का एकाधिकार नहीं है, वह इस युग की समूची सार्थक और सक्षम काव्य रचना को प्राप्त होनी चाहिए, वह चाहे किसी छंद में और किसी दल के कवि की लिखी हुई क्यों न हो । अनुभूति की विविधता तथा विस्तार और उसकी स्वीकृति ही आज की हिन्दी-कविता की विशेषता और उसका नयापन है, यह बात दीक्षाधारी प्रगतिवादियों, प्रयोगवादियों अथवा नवीनतावादियों को छोड़कर बाकी अधिकांश संवेदनशील पाठकों और स्वयं कवियों को मान्य होगी । इस कविता में न कोई अनुभूति वर्जित है और न कोई जीवन बहिष्कृत । वह न निराश प्रेम के गीतों तक सीमित है, न यौन - वर्जनाओं के प्रतीक-चित्रों तक न क्रान्ति की हुंकार अथवा सामाजिक परिवर्तनों की कल्पना मूलक लालसा तक । यही कारण है कि आज की कविता में यदि विचार-विश्लेषण है तो लोकगीतों - जैसे लुभावने प्रकृति के तथा किशोर - प्रणय के चित्र भी हैं, तीखी आत्मसजगता और कुंठा है तो व्यंग्य और फक्कड़पन भी है, सरल आत्मदर्शन है तो सामाजिक विषमता की चेतना भी है । निस्संदेह इन्हें तथा अन्य अनगिनत भावसत्यों को असंख्य स्तरों पर, तीव्रता और

प्रौढ़ता की विभिन्न मात्राओं में, पूरी स्वीकृति के साथ झेलने और वाणी देनेवाली कविता ही नई कविता है। चेतना का ऐसा विस्तार हिन्दी-काव्य के पिछले किसी युग में नयी आयाम और जीवन के छोटे-से-छोटे साधारण अनुभव की इतनी सहजता के साथ पहले कभी व्यक्त नहीं किया गया।[1]"

यथार्थ से तादात्म्य स्थापित करते हुए आगे बढ़ने की नये युग की माँग ही इस नयी कविता धारा के मूल प्रेरणा रही है। यही नहीं, अपने विकास के ऐतिहासिक दौर में यह उस मानव के चरित्र के संस्कार में तल्लीन रही है जो रूढ़ियों से मुक्त होने का इच्छुक है तथा जिसका वैज्ञानिक बोध एक विशाल अन्तर्राष्ट्रीय बोध से परिचालित है। काल्पनिकतावादी युग की स्वप्न संकुल वैयक्तिक दृष्टि और प्रगतिवादी युग की राजनीतिक-सैद्धान्तिक जड़ता का परित्याग करके उनके स्थान पर मनुष्य के पूर्ण स्वतंत्र व्यक्तित्व को उजागर करने में तल्लीन यह कविता अपने भाव बोध एवं शिल्प अन्वेषण में अत्यधिक आधुनिक एवं नयी रही है। कहने की ज़रूरत नहीं कि नयी कविता का सारा अवबोध अत्यन्त आधुनिक और नया है जो नयी वैज्ञानिक यथार्थवादी-मानवतावादी दृष्टि से परिचालित है।[2]

---

1 नेमिचन्द्र जैन - बदलते परिप्रेक्ष्य (1968), पृ.108

2. "नयी कविता के विभिन्न कवियों की अपनी-अपनी विशेष शैलियाँ हैं। इन शैलियों का विकास अनवरत है। आगे चलकर जब वे प्रौढ़तर होंगी - नयी कविता विशेष रूप से ज्योतिर्मान होकर सामने आएगी। साथ ही नयी कविता में स्वयं कई भाव-धाराएँ हैं। एक भाव-धारा नहीं। इनमें से एक भावधारा में प्रगतिशील तत्व पर्याप्त है। उनकी समीक्षा होना बहुत आवश्यक है। मेरा अपना मत है आगे चलकर नयी कविता में प्रगतिशील तत्व और भी बढ़ते जाएंगी और वह मानवता के अधिकाधिक समीप आएगी।"

गजानन माधव मुक्तिबोध - नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध, - पृ.10

अन्य शब्दों में, नये वैज्ञानिक विकास से समन्वित नवीन जीवन-विश्वास और यथार्थ बोध की नवीनतम अभिव्यक्ति ही नयी कविता है । निस्संदेह यह नये युग, परिवेश और नवीन जीवन मूल्यों की कविता है ।

नयी कविता का वास्तविक रूप इन रचनाओं में देखा जा सकता है जिनको कवि ने कविता के क्षेत्र में आनेवाले आडम्बरों को छोड़कर और बन्धनों को तोड़कर लिखा है । कवि-कर्म में प्रवृत्त प्रत्येक व्यक्ति के अनुभव में यह बात आती है कि किसी एक भाव या विचार को व्यक्त करने केलिए प्राय: छान्दसिक तथा अन्य प्रकार के बन्धनों के कारण एक शब्दाडम्बर खड़ा करना पड़ता है । नये कवि ने उस शब्दाडम्बर को छोड़कर अभिव्यक्ति के सहज और संपृक्त रूप को अपनाया है । उसने यह अनुभव किया है कि यदि हम परंपरागत शब्दावली और भाव-प्रवाह को लेते रहेंगे तो कविता में ताज़गी नहीं रह सकती और न ऐसी रचनाओं में युगीन जीवन का प्रतिबिम्ब और आज के जटिल जीवन की संवेदनाओं और चेतनाओं की अभिव्यक्ति ही मिल सकती है । इसलिए उसने इस तरह के मोहों व पूर्वाग्रहों को त्यागकर कविता की चेतना और अभिव्यक्ति के लिए नये क्षेत्र और नयी भूमियों की तलाश की । आज वह जीवन की जो अनुभूति करता है उसे उसी रूप में निराडंबर और सहज शब्दावली में व्यक्त करने की चेष्टा कर रहा है ।[1]

---

1. "नयी कविता की मुख्य समस्या सामान्य को अर्थवान बनाने की है । ... आज का कवि इस स्थगित और उपेक्षित जीवन के बहुलांश का चित्रण करना चाहता है । नयी कविता संपूर्ण जीवन की कविता है, केवल महिमाशाली अंशों तक वह अपने को सीमित नहीं रखती ।"

रामस्वरूप चतुर्वेदी - नयी कवितायें एक साक्ष्य (1976), पृ. 18

अपनी अभिव्यक्ति में व्यर्थ की शब्दावली का तिरस्कार करके भी वह भावना की संपूर्ण तीव्रता को संप्रेषित करना चाहता है । तदर्थ उसने नये प्रयोग और नये लाक्षणिक प्रयोग को अपनाया है । इन प्रयोगों के द्वारा वह न केवल अपनी अभिव्यक्ति में आधुनिक बन सका है, वरन् अपनी भावनाओं को वास्तविक तीव्र अभिव्यक्ति देकर कविता में भव्यता या ताज़गी भी ला सका है । आज का कवि शब्दों की नकल नहीं करता, सन्धान भी करता है । उसकी शब्दावली में ऐसे चुटीले प्रयोग होते हैं जो ताज़े होते हैं और भावनाओं की समग्र तीव्रता के साथ अभिव्यक्ति भी करते हैं । यह निश्चय ही, नयी कविता का एक मौलिक व महत्वपूर्ण प्रदेय है ।

नई कविता का विकास एक ऐतिहासिक अनिवार्यता के रूप में हुआ था । अपनी पूर्ववर्ती काव्य धाराओं के अभावों व सीमाओं के प्रति एक व्यापक प्रतिक्रिया और विद्रोह भावना को लेकर ही यह नयी विधा आगे बढ़ती आयी है । यह विद्रोह प्रवृत्ति नयी कविता की मूल प्रेरणा रही है[1] । एक ओर विज्ञान की बढ़ती हुई प्रगति और विश्व-मानवता पर उसका व्यापक प्रभाव तथा दूसरी ओर विश्व-युद्धों के फलस्वरूप विकसित नये वैश्विक संदर्भों ने मिलकर मानव और उसके विचार-विश्वासों को इस तीव्र गति से बदल दिया था कि इन्हें आत्मसात् करते हुए आगे बढ़ने में काल्पनिकतावादी एवं प्रगतिवादी काव्य अवधारणाएं नितान्त असमर्थ साबित हो चुकी थीं । नई कविता ने इस चुनौती को स्वीकार किया ।

1· डॉ· जगदीश गुप्त द्वारा संकलित सम्पादित 'कवितान्तर' (1973), - पृ·64

जहाँ तक शिल्पगत विनियोजन की दृष्टि से मूल्यांकन का प्रश्न है कि "नयी कविता" अनेक नवीन रचना धर्मी आयामों और शैल्पिक प्रतिमानों से संभूत है । बिम्ब, प्रतीक, उपमान, अलंकरण छंद, लय, ताल और भाषात्मक रूपविधान आदि के क्षेत्र में नयी कविता के कृतिकारों ने सार्थक प्रयोगों के साथ-साथ अपेक्षित मौलिकता का भी परिचय किया है । "प्रयोगवाद का आंदोलन विशेष रूप से काव्य के कला पक्ष से संबन्धित था । उसी ढर्रे पर नयी कविता भी आगे बढ़ी थी । यद्यपि यह नयी कविता का नया उन्मेष अभिव्यक्ति की प्रणाली को लेकर था, किंतु फार्म का बदलाव 'टेंट' में भी नयापन भर गया । वस्तुत: नयी कविता का फार्म और कंटैंट दोनों बदले।[1] अभिव्यक्ति की सरणियाँ भी संख्या में अधिक है।[2] नवीन शब्द-विधान के द्वारा कवियों ने भाषा के भण्डार को समृद्ध भी किया है । विजयदेव नारायण साही ने नयी कविता के दोहरे भाषा-संकट की चर्चा करते हुए कहा है कि नयी कविता को "परिपाटीग्रस्त भाषा" और "बाज़ारू भाषा" के दोहरे खतरों से बचाकर "जीवित भाषा" बनाना था । लेकिन जिसे लेकर कई तरह के फतवे नयी कविता को दिये गये हैं, अक्सर हर देश की आधुनिक कविता को कमोबेश ऐसी ही चुनौती का सामना करना होता है ।

---

1. ललित शुक्ल - नया काव्य नये मूल्य, पृ.204

2. "एक बने-बनाए पेटर्न पर चलना उसे पसंद नहीं है । एक-एक कवि में इस प्रकार की अनेकता के और चित्रण की अनेक भंगिमाओं का दर्शन होते हैं । इस विविधात्मकता का कारण है विषय वस्तु की अनेकता । संवेदना और संप्रेषण के रूपाकार विषय के अनुसार बदल जाते हैं । नयी कविता में तो इस प्रकार का बदलाव रचना के हर स्तर पर पाया जाता है । शिल्प के प्रति सजगता तो नयी कविता की एक विशेषता है ।"
वही, पृ.205

एलनटेट ने अपने निबंध में सामान्य गीतकारों द्वारा प्रयुक्त गीतों की सामान्य भाषा और जनभाषा को अनुभव द्वारा दूषित किये जाने के कारण, नये कवियों द्वारा सीमित और निजी भाषा के इस्तेमाल की आवश्यकता का समर्थन किया, जबकि हिन्दी के शास्त्राचार्यों और आलोचकों ने निजी भाषा की तीव्र भर्त्सना की है। लेकिन मैं समझता हूँ कि कवियों की कठिनाइयों समझते हुए उनके भाषा प्रयोग के प्रति एक दृष्टिकोण की ज़रूरत है। भाषा के अस्त्र को एक साथ संहार और सृजन दोनों करना होता है। उसमें भाषा के निजी प्रयोग की एक हद तक हिस्सेदारी होती है। इसलिए हिन्दी की नयी कविता के भाषा प्रयोग को भी इस रूप में समझने और मूल्यांकन करने की ज़रूरत है कि रचनाकार के सम्मुख कौन सी समस्याएं हैं।[1] नयी कविता प्रथमत: और प्रमुख: कविता है, शिल्प एवं संवेदना दोनों ही दृष्टियों से उसकी कुछ निजी विशेषतायें एवं उपलब्धियाँ हैं।

नई कविता के विशिष्ट हस्ताक्षर

नई कविता का इतिहास कई कवियों की रचना धर्मिता का दस्तावेज़ ही है। विभिन्न काव्य प्रवृत्तियों के पुरोधा होते हुए भी इन कवियों की रचनाओं में नई कविता परिनिष्टित हुई है। नई कविता का इतिहास गतिशील दृष्टि का भी इतिहास है। प्राय: नई कविता की समयगत परिधि साठ-पैंसठ तक ही तो मान लेते हैं। उसके बाद कविता की रचना दृष्टि एवं शिल्प भी बदलने लगा। साठोत्तरी कविता इसका प्रमाण है। नई कविता के दौर में जो कवि रचना रत थे, नई कविता के चिन्तन क्षेत्र को जिस प्रकार उन कवियों ने संपन्न किया है उनका रचना-क्षेत्र बाद में एकदम कुंठित या आवृत नहीं हो गया है।

---

1. प्रभाकर श्रोत्रिय - कविता की तीसरी आँख (1980)
रचनात्मक भाषा बदलते संदर्भ, पृ॰21-22

समकालीन वास्तविकताओं के प्रति इन नए कवियों में एक खुली दृष्टि प्राप्त होती है । रचनात्मकता को काव्यधर्मी बनने की प्रतिक्रिया में भी वे अधिकाधिक जागरूक दीखते हैं । समकालीन कविता में तरुण कवियों ने नई रचनाशीलता का परिचय दिया है । समकालीन कविता में तथा कथित नई कविता के युग के कवियों का स्वर भी कम महत्वपूर्ण नहीं है । इसके लिए कई उदाहरण ढूंढे जा सकते हैं । साही की परवर्ती रचना "साखी" हो या श्रीकान्त वर्मा की "मगध" हो, केदारनाथ सिंह की "ज़मीन पक रही है" हो, इन सब रचनाओं ने समकालीन कविता के अन्तरंगी स्वर को ध्वनित किया है । हालांकि कहना यह बेहतर होगा कि नई कविता के एकाध कवियों को छोड़कर बाकी सभी कवियों ने अपने को एक विशेष परिधि में बांधा नहीं है । यही नई कविता की गतिशीलता का प्रमाण है । नई कविता का क्षेत्रीय विस्तार सीमातीत है, जैसे कि बताया गया है कि उसमें कई कवियों का योगदान है । अज्ञेय की कविताओं में जहाँ मानवीय व्यक्तित्व की अपनी विशिष्टता का बोध है तो दूसरी ओर उन्हीं की कविता में प्रकृति और यांत्रिक सभ्यता के अन्तर्विरोध से उत्पन्न सौंदर्य जन्य पीड़ा है । मुक्ति बोध की कविता भयावहता की कविता है । मुक्तिबोध ने इसलिए आत्मसंघर्ष की बात कही कि वे स्वयं उस दहशत के शिकार बने हुए थे, साथ ही उन्होंने आसपास की स्थितियों में इसका एहसास पाया था । प्रभाकर माचवे का कविता संसार व्यंग्य और विद्रूपता का है । हल्के फुल्केपन के प्रति विशेष आग्रह तथा रचनाक्रम के साथ खिलवाड करने की प्रवृत्ति[1] उनमें बराबर प्राप्त होती है । आधुनिक जीवन की विसंगतियों को उन्होंने इस प्रकार प्रस्तुत किया है । पौराणिक प्रसंगों के माध्यम से धर्मवीर भारती ने जीवन की विडंबना का चित्रण किया । रोमान्टिकता के बावजूद उनके पौराणिक पात्रों के प्रश्न सही प्रतीत होते हैं । युगीन विकृतियों के

1· आलोचना 1967 जुलाई-सितंबर अंक

प्रति विद्रोहात्मक रुख अपनाते हुए भरतभूषण अग्रवाल ने हिन्दी कविता को तीव्र बना दिया है । यथार्थ का धरातल उनमें स्पष्ट होता है । छोटे छोटे अनुभव खंडों के कवि के रूप में गिरिजाकुमार माथुर का प्रवेश हुआ । वे शिल्प के दक्ष हैं । इसलिए बौद्धिक साक्षात्कार को कवि कर्म भी मानते हैं । शमशेर की कविता इसलिए ब्राह्यत: उलझी दीखती है कि उसकी कलात्मक बारीकी अत्यधिक सूक्ष्म है । चित्रकला और संगीत का समन्वय उन्होंने अपनी कविताओं में किया है । लेकिन आधुनिक जीवन का एक पारदर्शी रूप उनमें विद्यमान है । भवानी प्रसाद मिश्र में गांधीवादी दर्शन प्रकट है । लेकिन रचनाक्रम एकदम साधारण । एक आन्तरिक निष्ठा उनकी कविताको गतिशील बना देती है । बाहरी परिवर्तन का तालमेल जब आन्तरिक जीवन के साथ होता नहीं है तो आन्तर्विरोध रहता ही है । "आत्महत्या के विरुद्ध" के कवि रघुवीर सहाय का मूल चिन्तन इस अन्तर्विरोध को लेकर है । जनवादी चेतना और प्रगतिशील जीवन मूल्यों को लेकर सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविता चलती है । व्यापक करुणाद्रता का स्वर भी इनमें हमें मिलता था । केदारनाथ सिंह ठोस अनुभवों के कवि हैं । मानवीय लगाव इन अनुभवों को जीवन्त बना देता है । विसंगतियों से भरे इस दौर में उनकी कविता आदमियत की तलाश भी करती है । *पर वे कुछ ढूंढते* हे अपने में यह अनुभव करते हैं । साही की रचनायें दहाड़ते आतंक के बीच सच बोलने की कला सिखाती है । सामान्य जीवन स्थितियों में असामान्य संदर्भ ही वे खोजते हैं । "कहीं कुछ भी बदलता नहीं है" -यह उनका सामान्य कथन है; पर है अर्थवान । तीखेपन से उद्भूत विद्रूपता श्रीकान्त वर्मा की कविता में प्राय: देखी जा सकती है । जीवन की निस्सारता को अंकित करके श्रीकान्तवर्मा उसी यथार्थ को प्रस्तुत करते हैं जो हमारे अपने जीवन को मूल्य हीन बना रहा है । कुंवर नारायण ने अपनी आत्मस्थिति से कवितायें शुरू की है

प्राय: नई कविता के केन्द्र में वह मनुष्य रहा है जिसकी अस्मिता संकट ग्रस्त ही रही है । उसे कुंवर नारायण ने शब्दबद्ध किया है ।

संक्षेप में यह कहना संगत मालूम होता है नयी कविता आधुनिक मनुष्य की बदली हुई संवेदना की सृजनात्मक अभिव्यक्ति है ।

अध्याय - तीन

नयी कविता में आधुनिक मन की अन्तर्वृत्तियाँ

अध्याय - तीन

नई कविता में आधुनिक मन की अन्तवृत्तियाँ

वस्तुत: कविता अनुभव की अभिव्यक्ति नहीं, वह अवबोध की संरचनात्मक ऊर्जा की अभिव्यक्ति है । इसलिए हर युग की कविता की विशेष मानसिकता होती है जिसे संवेदना कही जा सकती है । आधुनिक कविता की संवेदना की थाह पहचानने केलिए युगीन मानसिकता की तमाम गतिविधियों और अन्तवृत्तियों से परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है ।

हिन्दी की नई कविता की संवेदना आधुनिक मनुष्य के अन्तर्मन की ही विवृतियाँ है । "नयी कविता इसी दिशा में संघर्षशील नये मनुष्य की कल्पना से ज्योतित एक प्रकाश स्तम्भ है।[1]" इसलिए नई कविता की वास्तविक पहचान के लिए आधुनिक मन की संकीर्णताओं से गुज़रना है । पिछले युग की कविताओं की समस्त गतिविधियों को सरलीकृत करके प्रस्तुत किया गया है । आयोजनबद्धता की सीधी गति

1· डॉ· जगदीश गुप्त - नयी कविता स्वरूप और समस्याएँ
§द्वितीय संस्करण 1971§, पृ·28

रचनाओं की होती थी । सबसे पहले हिन्दी कविता में छायावादी युग में रचना का सीधापन गायब हो गया । पर छायावाद की संकीर्णता की अपनी कलात्मक गहराइयों के होते हुए मानवीय सत्ता का निराकरण ने कविता की ऊर्जा को कम कर दिया है । "छायावाद के अनुभूति पक्ष की सीमा वहीं तक है जहाँ तक मन की गति है और दार्शनिक पक्ष की जिज्ञासा कुतूहल और विस्मय तक[1] ।" छायावादी कविता में मनुष्य की स्थिति संकल्पनात्मक है,[2] प्रगतिवाद ने भी इसी प्रवृत्ति का उल्लंघन किया । प्रगतिवादी कविता, जो सामाजिक सापेक्षता पर विश्वास करती है, छायावादी मानव संकल्प को तोड़ता है । प्रगतिवाद ने उसे सामाजिक बनाया । लेकिन बिना किसी विलंब के इसका भी पता लगा कि प्रगतिवादी कविता का प्रारंभिक दौर भी तो आवेग की कविता है जिसमें मनुष्य का सामाजिक आग्रह विद्यमान है, पर वह विचारों के वाहक के रूप में हमारे सामने आई है । उपरोक्त दोनों प्रकार की काव्य प्रवृत्तियों में सारांशतः मनुष्य का आधुनिक रूप प्रकट नहीं हो पाया है । इस अर्थ में प्रयोग की अपनी सान्दर्भिकता है । प्रयोगवाद ने मनुष्य को उसके वास्तविक संदर्भ में पहचानने का काम किया है । जैसे कि विजयदेवनारायण साही ने अपने बहुचर्चित लेख "लघुमानव के बहाने आधुनिक हिन्दी कविता पर एक बहस" में बताया है कि प्रयोगवाद उन अगंभीर कविताओं की प्रतिक्रिया स्वरूप विकसित हुआ था[3] । अगंभीर कविता से उनका मतलब छायावादोत्तर नव-स्वच्छंदतावादी कविता से है, जो बच्चन, अंचल, नरेन्द्रशर्मा, दिनकर इत्यादियों की रचनाओं से संबंध है । साही का निरीक्षण संगत लगता है । प्रयोगवाद ने आधुनिक मनुष्य को ही कविता के केंद्र में प्रतिष्टित किया है ।

---

1. डॉ. जगदीश गुप्त - नयी कविता स्वरूप और समस्याएं (द्वितीय संस्करण 1971), पृ.310
2. डॉ. नामवर सिंह - आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ (1983), पृ.25
3. डॉ. नामवर सिंह - कविता के नए प्रतिमान मे उद्धृत, पृ.92

प्रयोगवादी कविता आगे चलकर नयी कविता के रूप में परिणत होती है जो उसमें इस प्रवृत्ति का उत्तरोत्तर विकास होता नज़र आता है । नयी कविता का यथार्थ बहु आयामी और बहु स्तरीय है । नयी कविता में मनुष्य का रूप सामान्य नहीं है । इसलिए सरलीकृत सिद्धान्तों की बैसाखी पर खडे होकर उसका आस्वादन संभव भी नहीं है । यह भी है कि समाधान ढूंढने का कार्य भी नयी कविता में नहीं है । अत: असामान्य स्थितियों और अतिरंचित अवस्थाओं में आधुनिक मनुष्य को अवतरित अवस्थाओं में आधुनिक मनुष्य को अवतरित करने का कार्य नये कवियों ने किया है ।

नई कविता में तनावग्रस्तता

नई कविता के सभी कवियों ने आधुनिक जीवन में व्याप्त तनाव को पहचान लिया है । इसकी सूचना "तारसप्तक" के अलग अलग आत्मवक्तव्यों में से हमें मिल जाती है । यह सही है अलग अलग कवियों की मान्यतायें अलग-अलग रही हैं । परन्तु तनाव ग्रस्तता के विभिन्न पक्षों पर उन्होंने प्रकाश डाला है । रचनात्मक संघर्ष के बारे में नेमिचन्द्र जैन ने लिखा - "अपने संस्कारों और मान्यताओं के जगत को वह समस्याओं को सुलझाने के सही मार्ग पर अर्थात् एक सामूहिक प्रश्न के द्वारा उनका समाधान पाने के मार्ग पर लाने में अपनी असमर्थता को बार बार अपने विवेक के द्वारा चीर चीर कर डालना चाहता है । उसके मन का सारा संघर्ष इसी बिंदु पर केंद्रित हो उठा है ।[1]" मुक्तिबोध ने भी सही लिखा है - "काव्य या तो बाह्य जीवन जगत के साथ सामंजस्य में या उसके अनुकूल उपस्थित होता

---

1 नेमीचन्द्र जैन - वक्तव्य तारसप्तक, पृ॰50

अथवा उसके साथ द्वंद्व रूप में प्रस्तुत होता है अथवा काव्य प्रवृत्ति एक स्तर या क्षेत्र में सामंजस्य और दूसरे स्तर या क्षेत्र में द्वन्द्व को लेकर प्रस्तुत होती है । संक्षेप में आभ्यन्तर या बाहनीकरण, विश्व व्यापी सामंजस्य या द्वन्द्व अथवा दोनों के भिन्न रूप में उपस्थित होता है । आज की कविता में उक्त सामंजस्य से अधिक द्वन्द्व ही है । इसलिए इसके भीतर तनाव या खिंचाव का वातावरण है[1] । मुक्तिबोध ने संघर्ष और द्वंद्व को एक कदम और आगे बढ़कर "तनाव" तक पहुँचा दिया है । तनाव आज की आलोचना में एक अर्थपूर्ण पारिभाषिक शब्द बन गया है । मैकेल हमबेर्गर ने तनाव को आधुनिक कविता के सत्य के रूप में स्वीकार किया है और इस दिशा में उनसे रचित ग्रंथ "दि ट्रूथ ओफ पोयट्रि" में उन्होंने इसकी विस्तार से विवेचना की है[2] ।

अंतर्जीवन की तीखी चेतना और जीवन की विविधता को संबद्ध करते हुए तनाव की अनिवार्यता पर अज्ञेय ने भी बल दिया है "मानसिक तनाव की अनिवार्यता पर अज्ञेय ने भी बल दिया है – "मानसिक तनाव से धनुष की प्रत्यंचा-सी तनी हुई, अन्तर्जीवन की तीखी चेतना के स्वर सी संयत लेकिन जीवन की विविधता के बोध से विशृंखल होती हुई भी – आज की कविता का सौंदर्य इसी कोटी का है[3] ।"

एक अन्य सन्दर्भ में "भारतीय परम्परा संघर्ष का प्रयोग" शीर्षक निबंध में अज्ञेय संघर्ष को नये रूप में परिभाषित करते हुए कहते हैं "जहाँ संघर्ष मौजूद है, वहाँ महत्व यह पहचानने का नहीं है कि परिवेश में

---

1 मुक्तिबोध – नयी कविता का आत्मसंघर्ष, पृ॰32

2॰ Michael Hamburger – The Truth of poetry – Tensions in Modern Poetry, p.25

3॰ डॉ॰ नामवर सिंह – अनुभूति की जटिलता और तनाव
कविता के नये प्रतिमान, पृ॰193

परिवर्तन लाया जा सकता है; महत्व की बात यह है कि अपने भीतर एक नयी क्षमता पहचानी जा सकती है, यह और यही मात्र संघर्ष का रचनात्मक उपयोग है जब संघर्ष एक उच्चतर आत्मचेतना और ज्ञान की खिड़की का काम दे[1]।"

नामवरसिंह के अनुसार अज्ञेय के तनाव के स्थान ले लिया है एक थकान भरी शान्त मुद्रा ने[2]। उनके अनुसार अज्ञेय से तो कहीं अधिक तनाव नितान्त सौंदर्यवादी कहे जानेवाले शमशेर बहादुर सिंह के काव्य में है। इसको विजयदेव नारायण साही ने अत्यन्त सूक्ष्मता से उभारकर सामने रखा है। बाहर के शून्य के भीतर के न कुछ के बीच "एक अटका हुआ आँसू" और "पतझर का ज़रा अटका हुआ पत्ता" शमशेर की काव्यानुभूति के तनाव के प्रतीक है। यह तनाव इतना तीखा है कि उस अटके हुए पत्ते के समान ही काव्यानुभूति एक दम "शांत" दिखाई पड़ती है। शमशेर के मित कथन, सादे शब्द, क्रियाहीन वाक्य, निरुद्वेग लय आदि उस तनाव के तीखेपन का एहसास कराते है "मौन" और "महामौन" जैसे उस तीखेपन के चरम बिन्दु का सूचक है।

मुक्तिबोध की कविता में तनाव पक्ष प्रकरण है, तनाव कविता के आन्तरिक पक्ष की स्थिति है। बाह्य परिस्थिति के साथ-साथ आन्तरिक परिस्थिति को भी उन्होंने साहित्य केलिए आवश्यक माना हैं। "पर क्या कारण है, युग के साथ-साथ कला परिवर्तित होती चलती है ? इसके मुख्य हेतु दो हैं। प्रथम, आन्तरिक; और दूसरा, बाह्य। बाह्य परिस्थिति जिस तरह बदलती चलती है उसी तरह साहित्यिक धारा भी अपनी दिशा बदलती है। इसके उदाहरण आपको किसी भी अच्छे साहित्य में दृष्टिगोचर होंगे। हम इसको अधिक-से-अधिक बाह्य से प्रतिक्रिया कहेंगे।

---

1 अज्ञेय - हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य, पृ॰126

2॰ डॉ॰ नामवर सिंह - कविता के नये प्रतिमान, पृ॰206

पर एक ऐसी भी प्रतिक्रिया है जो आन्तरिक जगत में होती है, जिसके कारण साहित्य की आन्तरिक धारा में हलचल उत्पन्न होती है[1]।" कवि के अन्तर्मन को उन्होंने इस प्रकार परिभाषित किया है - "कलाकार का अन्तर्मन विचारों को आत्मानुभूत जीवन संदर्भों से एकाकार करके ग्रहण करता है । अन्तर्मन में उपस्थित वास्तविक जीवन विचारों में प्रवाहित होता है । विचारों की यह प्रवहणशीलता लेखक की सारी संवेदनाओं से मिलकर उसके अन्तर्जीवन का अंश बन जाती है[2]।" मुक्तिबोध की कविता की वास्तविक पहचान केलिए इस रचनात्मक परिदृश्य से परिचित होना आवश्यक है । उनकी सभी रचनाओं की पृष्टभूमि में अन्तर्जगत का वैचारिक द्वंद्व विद्यमान है ।

"ब्रह्मराक्षस" नामक कविता का विश्लेषण करते समय इस बात का पता लगता ही है । ब्रह्मराक्षस आत्ममुक्ति के लिए छटपटाते मानसिक अनुभव की कविता है -

गहन अनुमानिता
तन की मलिनता
दूर करने केलिए, प्रतिपल
पाप-छाया दूर करने केलिए, दिन-रात
स्वच्छ करने -
ब्रह्मराक्षस
घिस रहा है देह
हाथ में पंजे बराबर
बाँह-छाती-मुँह छपाछप
खूब करते साफ
फिर भी मैल
फिर भी मैल[3] !!"

1· गजानन माधव मुक्तिबोध - आखिर रचना क्यों ? (1982), पृ·12
2· नेमीचन्द्र जैन (सं·) मुक्तिबोध रचनावली (खण्ड-5) (1985), पृ·347
3· मुक्तिबोध चाँद का मुँह टेढा है (1982), पृ·8

"ब्रह्मराक्षस एक ऐसा मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी है जो आत्ममुक्ति के लिए छटपटा रहा है और उसके लिए जीवन भर ज्ञानार्जन करता है । लेकिन ज्ञानोपलब्धन की इस प्रक्रिया में वह ज्ञानकूप से नहीं निकल पाता, अपने ज्ञान को व्यवहार में परिणत नहीं कर पाता । व्यवहार से कटे होने का स्वाभाविक परिणाम होता है कि वह ज्ञान के किसी भी क्षेत्र में निर्णायक नहीं हो पाता । फ्रस्ट्रेट रहता है, मानसिक रूप से उद्विग्न रहता है, अनेक प्रकार के अन्तर्विरोधों से ग्रस्त रहता है, उलझाव और जटिलताओं को जन्म देता है । मुक्तिप्राप्ति का माध्यम केवल ज्ञानक्षेत्र के संघर्ष को समझ लेना उसे छद्म-संघर्षों में उलझा देता है और वह लगातार नि:संग होता चला जाता है । ज्ञानसंघर्ष में जब जब वह सत्य से परिचित होता है, तब तब सत्य की कटुता (शोषण का यथार्थ) उसे उद्विग्न तो करता है किन्तु उसकी वर्गबद्धता उसे कुछ नहीं करने देती और वह शोषक और शोषित के बीच अपनी पक्षधरता को स्पष्ट नहीं कर पाता । अपने इन्हीं वर्गीय संस्कारों की "पाप छाया" को "स्वच्छ करने दूर करने केलिए वह बावड़ी में दिन रात स्नान करता रहता है, देह घिसता रहता है । इस छद्म-संघर्ष में उसकी संवेदना भी स्थाह और भोंथरी हो जाती है क्योंकि मूलत: अवैज्ञानिक है[1] ।

तनाव की दृष्टि से "माया दर्पण" के कवि श्रीकान्त वर्मा और "आत्महत्या के विरुद्ध" के कवि रघुवीर सहाय की कवितायें प्रमुख हैं । "मायादर्पण" की अन्तिम कविता "अन्तिम वक्तव्य" की अन्तिम दो पंक्तियाँ हैं

"तुम जाओ अपने बहिश्त में
मैं जाता हूँ
अपने जहन्नुम में[2] ।

---

1. अशोक चक्रधर - मुक्तिबोध की काव्य प्रक्रिया (1975), पृ. 146
2. श्रीकान्तवर्मा - माया दर्पण, पृ.

और कवि यह कहता है -

न मैं आत्महत्या
कर सकता हूं
न औरों का खून ।"[1]

उसकी काव्यानुभूति के गहरे तनाव के बारे में कोई सन्देह नहीं रह जाता ।

"आत्महत्या के विरुद्ध" की अन्तिम कविता "एक अखेड भारतीय आत्मा का मुख्य स्वर है

कल फिर मैं
एक बात कहकर बैठ जाऊँगा ।"[2]

यह स्थिति परिवेश के प्रति कुछ अधिक गहरे और तीखे तनाव को सूचित करती है । इसकी पुष्टि कविता संग्रह के आरम्भिक वक्तव्य के इस कथन से भी होती है, "उस दुनियाँ को देखें जिसमें हमें पहले से ज़्यादा रहना पड रहा है, लेकिन जिससे हम न लगाव साध पा रहे हैं न अलगाव[3] । सतह पर करनेवाली एक सामान्य स्थिति के रूप में नयी कविता का अनुभूत्यात्मक संसार विकसित नहीं हुआ । लगाव और अलगाव का एक संकीर्ण संदर्भ अकसर नयी कविता में दृष्टिगोचर होता है । लेकिन एक अवसर पर कविता में भावुक स्थितियों का कोई परिदृश्य नहीं है । परन्तु एक आन्तरिक संदर्भ ज़रूर है, जहाँ तनाव के पक्ष उभरते हैं ।

1· श्रीकान्तवर्मा - माया दर्पण, पृ·
2· रघुवीरसहाय - आत्महत्या के विरुद्ध (1976), पृ·86
3· रघुवीरसहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - भूमिका, पृ·11

अस्तित्ववाद और असंगत दर्शन

परंपरा और नवीनता, स्वतंत्रता और सत्ता, ईश्वर और मशीन राष्ट्रीयता और मानवता के ऐसे ही अतिपूर्ण और संघर्षमय वातावरण में अनेक वाम और दक्षिण पंथी विचारधाराओं के साथ ही साथ वर्तमान सदी के जीवन को दो विचार धाराओं ने विशेष रूप से प्रभावित किया है - वे हैं मार्क्सवाद और अस्तित्ववाद । इनके अतिरिक्त मनोविज्ञान पर आधारित अन्तश्चेतनावादी चिन्तन-पद्धतियाँ भी एक व्यापक हद तक आधुनिक युवा-मानव को आक्रान्त करके में सक्षम रही । द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् का बहुत ही संकीर्ण परिवेश तथा उसके परिणामस्वरूप विकम्पित जीवन की विभीषिकायें, गहन आशंका अनिश्चय और अनास्था का वातावरण इस तरह की विचारधाराओं के लिए बड़ी ही उर्वर भूमि तैयार कर रही थी । ठीक इसी परिवेश में सोरेन कीर्केगार्ड कार्लयास्पर्स, गेब्रीयल मार्सल, मार्टिन हेडेगर, ज्यापाल सार्त्र, आदि है तथा उनकी अस्तित्विक आकुलता पर आधारित विचारधाराओं एवं पिछले ईसाई धर्म और नीत्शे के दार्शनिक विचारों पर आधारित अस्तित्ववादी दर्शन की ओर लोगों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट होने लगा । युद्ध से पूर्व जिस अस्तित्व पर सन्देह किया जाता था, और कोई निर्णायक उत्तर नहीं मिलता था, अब उस अस्तित्व पर सन्देह किया जाता था, और कोई निर्णायक उत्तर नहीं मिलता था, अब उस अस्तित्व पर विचार करने के लिए लोग विवश हो गए । विश्व की समग्रता में अपने को खो देने की कल्पना समूल भंग हो गयी । अब मनुष्य के पास केवल अपना अस्तित्व ही असंदिग्ध रह गया । विश्व भर के प्राय: सभी इने-गिने देशों का जनजीवन और साहित्य भी इस नवीन दार्शनिक चिन्तन के झोंके में पड़कर डवाँडोल होने लगा । भारतीय संदर्भ में भी हम देख सकते हैं कि मार्क्सवादी धारणाओं के अतिप्रभाव से चालित प्रगतिवादी युग के उपरान्त

विकसित आधुनिकता से ओतप्रोत आधुनिक साहित्य खासकर नयी कविता अस्तित्ववाद के इस विश्वव्यापी प्रभाव से अपने को मुक्त नहीं रख सकी ।

अस्तित्ववाद और एब्सर्डवाद जैसे आधुनिक विचार दर्शनों के पीछे आधुनिक मानव की यही "फ्रस्ट्रेटड्" मानसिकता काम कर रही थी । नयी कविता इसी "फ्रस्ट्रेटड" मानसिकता की कविता है अत: उसमें अस्तित्ववाद एब्सर्डवाद जैसे अन्तर्मुखी चिन्तनों का प्रभाव पडना स्वाभाविक है । नयी कविता के संदर्भ में एक उल्लेखनीय बात यह भी है कि "नयी कविता को उत्तराधिकार के रूप में न आध्यात्मवादी विचारधारा प्राप्त हुई न भौतिकवादी[1] ऐसी हालत में कुछ खास जीवन दृष्टि की तलाश में नये कवि पश्चिम अस्तित्वचिन्तन की ओर मुडने लगे क्योंकि उसमें भी इन्होंने कुछ अपने ही समानधर्म व्यथाओं को पाया था । किन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि "नयी कविता" या "नया साहित्य" संपूर्ण रूप से अस्तित्ववाद पर आधारित है । वास्तव में नयी कविता का क्षेत्र इतना व्यापक और विशाल है कि उसमें अनेक विचार-धाराओं और जीवन दृष्टियों का सम्मिलित होना बिलकुल स्वाभाविक है । अस्तित्ववाद के अतिरिक्त, मार्क्सवाद, अतियथार्थवाद, मनोविश्लेषणवाद जैसे और भी अनेक विचार-दर्शनों का उसमें प्रभाव देखा जा सकता है ।

लघुमानव की परिकल्पना, मानव-मन की आंतरिक सचाई की स्वीकृति, क्षणवादिता अन्तर्मुखी दृष्टि, अनुभूति की प्रामाणिकता, भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति आदि अनेक बातें अस्तित्ववादी प्रत्यय से मेल खाती है ।

---

1. मुक्तिबोध - नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध, पृ.3।

सैद्धान्तिक दृष्टि से यदि देखा जाय तो हम कह सकते हैं कि सन् 1943 में "तारसप्तक" के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी कविता के क्षेत्र में इस आधुनिक व्यक्तिवादी परंपरा का सम्यक समावेश होने लगा था । नव लेखन से संबन्धित सभी विधाओं में, खासकर नयी कविता में, इसी नयी चेतना का परवर्ती रूप मानवीय अस्तित्व संघर्ष और आन्तरिक वैयक्तिकता की अवधारा के विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होने लगा था । भीड के प्रति उसका आक्रोश, उसकी नितान्त वैयक्तिकता, उसके चुभते व्यंग्य, उसकी आत्मा की कड़ुवाहट और निस्संगता सब के पीछे उसकी अस्तित्विक आकुलता ही काम करती रही है । जीवन की निरर्थकता का बोध, व्यक्ति की अवशता और आकुलता, शून्यता की अनुभूति, निराशा, अनास्था, कुण्ठा, त्रास, घृणा, ऊब, आसन्न मृत्यु का आतंक, आत्महत्या की चाह, भीड में अजनबीपन एवं अकेलापन का एहसास इत्यादि न जाने कितनी कितनी बातों से वह परेशान है । जीवन उसकेलिए एक निरर्थक मेहनत के सिवा और कुछ नहीं है । जिन्दगी जो एक निरर्थक यात्रा है, इसे भोगने केलिए इस पर बस चलते रहने केलिए हम अभिशप्त हैं । इसी अनास्थाजन्य लक्ष्यहीनता और किंकर्तव्यविमूढता के कारण कवि पूछता है -

" कौन सा पथ है ?
मार्ग में आकुल अधीरातुर बटोही ने पुकारा
कौन सा पथ है ?
"महाजन जिस ओर जाये" शास्त्र हुंकारा
अन्तरात्मा ले चले जिस ओर बोला न्याय पंडित
साथ आओ सर्वसाधारण जनों के क्रान्ति वाणी ।
पर महाजन-मार्ग-गमनोचित न रथ है
अन्तरात्मा अनिश्चित-संशय ग्रसित
क्रान्ति-गति-अनुसरण योग्य है न पद सामर्थ्य
कौन सा पथ है ?"[1]

---

1. भारत भूषण अग्रवाल - तारसप्तक, पृ. 106 (1981 - संस्करण)

यदि आत्मविश्लेषण के बाद भी कवि अपनी शक्तिहीनता और व्यर्थता को ही चरम लक्ष्य मानता है तो इसका यह अर्थ है कि वह जीवन से पूर्णत: पराजित हो चुका है । ऐसे व्यक्ति को न कोई मार्गदर्शक मार्ग दिखा सकता है और न कोई मसीहा जीवित कर सकता है -

किन्तु पथ दर्शक
विवश मैं हार जाता हूँ थककर मौन से
बेमाप अपने प्राण में छाये हुए एकांत से
सतत निर्वासित हृदय से ।
तिरस्कृत व्यक्तित्व के
थोथे असंगत दर्प ने मन की
सहज अनजान स्वाभाविक अनावृत धार को
कर दिया है कुंठित
सहज अंगारे कि मानों दब गये हो बुझे से
जैसे कि ठण्डी राख से
xx x xx
इसलिए ओ मार्गदर्शक
आज मैं बस व्यर्थ हूँ
सुनसान में निर्जन खडे उँचे महल सा[1] ।

अपने एकाकीपन का यह दर्द उसे इतना कुंठित बना देता है कि वह संघर्ष से पराजित होकर अपने को निर्जीव, अशक्त और निरर्थक समझने लगता है । उसे लगता है कि अपनी "दर्दभरी आत्मा पर स्वप्न नहीं अब, गीत नहीं अब, दर्द नहीं अब, एक पर्त ठंडे लोहे की[2] ।"

1· नेमिचन्द्र जैन - तारसप्तक, पृ·69-70

2· धर्मवीर भारती - ठण्डा लोहा, पृ·24

भारत भूषण अग्रवाल की कविता "सीमाएँ आत्म-स्वीकृति" में भी यही भाव व्यंजित है -

है श्रान्त तन, है क्लान्त मन, मैं आज हूँ निष्प्राण ।
    आगे बिछी है राह
जानता हूँ यही है वह पथ कि जिस पर मिल सकेगी मुक्ति
    मेरी और सब की मुक्ति,
जानता हूँ यही है वह पथ कि जिस तक पहुँचने की
    थी हृदय में चाह
    जी में था अतुल उत्साह ।
कडा करके जी, कमर कस, चल पडा था उस दिव अम्लान
वंचितों के स्वत्व-संगर में चढाने एक निज का दान
सोचता था अब हुआ जीवन सफल, अब मिट गया अँधियार
    छूटे अब हमारे बन्ध
    तन के और मन के बन्ध
सोचता था क्षुद्र मन के स्वार्थ पर ही था विगत आधार
    मैं था मूढ, मैं था अन्ध ।
यों तोड जाते, छोड़ चिन्ता, एक निश्चय को संभाले टेक
मैं चला बनने अनेकों सैनिकों में एक ।"[1]

जीवन की निरर्थकता का एहसास, आत्महीनता एवं लक्ष्यहीनता आधुनिक मानव की विकट समस्यायें हैं । जीवन इन की दृष्टि में एक बेमतलब पहलू है, हम जीने को अभिशप्त हैं । यही बोध जीवन के प्रति घृणा या ऊब पैदा कर देता है । सार्त्र के दो विख्यात नायक रोकिंटिन्टन

---

1. अज्ञेय (संकलनकर्ता एवं सम्पादक) - तारसप्तक (पंचम संस्करण 1981) - पृ. 93

और मैथ्यू तथा कामू के विख्यात सिसिफस के समान हमारे नये कवि भी इस ऊब का अनुभव करते हैं ।

जीवन की इस दर्दनाक स्थिति से आधुनिक कवि अत्यन्त ही चिन्तित और पीड़ित है । जीवन के प्रति उसकी आस्था और आशा मिट चुकी है । हताश-निराश होकर वह सोचने लगता है कि यहाँ कुछ भी स्थाई नहीं, सब मिथ्या है । इसी दर्दनाक स्थिति की तीव्रतम अभिव्यक्ति कुंवर नारायण के इन शब्दों में मुखरित है -

"प्रकाश के रंगीन झरने
जो असंभव उंचाइयों से गिर रहे हैं
पत्थर को गुदगुदा कर
एक तरल संगीत जगाकर
कहीं दूर चले जाएगी
और तब मैं बंद आँखों के अपार अंधकार में
झूलते हुए अपने ही चित्रों को नोचकर कहूँगा
कि सब कुछ
शायद मेरे उन्माद की छाया थी
तुम नहीं ।"[1]

जीवन की व्यर्थता का यह एहसास नये साहित्य में सर्वत्र हम देख सकते हैं । वर्तमान युग की खोखली-दिखावटी एवं यान्त्रिक जिन्दगी उसे बोझ प्रतीत होती है । व्यक्ति, असहाय और निरुपाय है । श्री॰ सर्वेश्वरदयाल सक्सेना को लगता है -

---

1· कुंवर नारायण - नयी कविता अंक 3, पृ·43

एक द्वार की तरह
मैं रेगिस्तान में खड़ा हूँ
एक टूटी दीवार का अकेलापन भी
अब कहाँ है जो कुछ रोक सके ।
गर्म हवाएँ सनसनीनी हुई
मुझ में से गुज़र जाती हैं ।[1]

जीवन की निरर्थकता, सारशून्यता, लक्ष्यहीनता आदि से आधुनिक कवि बुरी तरह संत्रस्त हैं । यह संत्रास की भावना आधुनिक जीवन में सर्वत्र व्याप्त है । नगरों की सभ्यता में पले लोग एक दूसरे के बन्धुत्व का सहारा नहीं ले सकते - वे सब गुमनाम, बेनाम, लोग हैं । उनका न कोई निजी अस्तित्व है, न कोई हमदम, न बन्धु और वे तनहाई की अन्धी गलियों में सहमे हुए भटक रहे हैं । उनके सामने केवल यही समस्या नहीं कि वे बाह्य जगत के दबाव से अपने निजी जीवन को कैसे सुरक्षित रखें बल्कि तनहाई के आन्तरिक भय और वेदना से कैसे मुक्ति प्राप्त करें[2] संत्रास का यह स्वर नयी कविता में सर्वत्र हम देख सकते हैं । आधुनिकता की यह दुखहीनता पश्चिम की अपेक्षा हमारे देश में भले ही बहुत कम है फिर भी इस आधुनिक विभाविकता से हमारे देश भी पूर्णत: मुक्त नहीं है । हमारे देश की स्थिति भी यही है -

हर मकान की पीठ पर नए मकान
हर दिन
शहर की सीढ़ी पर
नया शहर

1· गर्म हवायें - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ·47
2· देवेन्द्र इस्सर - साहित्य और आधुनिक युग बोध, पृ·2

किंतु नवागन्तुक के आने का बोध नहीं
हर्ष नही
दु:ख नहीं
क्रोध नहीं[1]।

आधुनिक युग की विभीषिकाओं और विसंगतियों से भरे जीवन से संत्रस्त होकर आधुनिक कवि सोचने लगताहै कि वह एक अजनबी दुनियाँ में रहता है जहाँ उसका न कोई अपना है, न कोई साथी है, न ही कोरे सहारा। वह अपने को एक "आउट साइडर" महसूस करने लगता है जिसका कोई मुख नहीं, नाम नहीं, आइडेंठिटी नहीं। कवि श्रीकान्त वर्मा का कहना है -

"मैं किसी भी सड़क पर
निकल जाता
और किसी भी
बस पर आहिस्ता
बैठ जाता
§ हूँ §
मेरा कोई नाम नहीं[2]।"

अतीत, वर्तमान और भविष्य के प्रति उदासीन बनकर आज का नया कवि काल के अखण्ड प्रवाह में विश्वास नहीं करता, इसलिए वह किसी एक क्षण से अपना अस्तित्व सिद्ध करना चाहता है। अस्तित्वदर्शन के अनुसार मनुष्य की स्वतंत्रता विविध परिस्थितियों से सीमित है और मनुष्य प्रत्येक स्थिति में "चुनने" की स्वतंत्रता रखता है। अत: प्रत्येक क्षण वह कुछ ऐसा

1· श्रीकान्त वर्मा - माया दर्पण, पृ·61।
2· कीर्तिचौधरी - नयी कविता - अंक 3, पृ·63

चुनने में रहता है जो ग्राह्य हो किंतु परिस्थितिवश उसे ग्राह्य भी चुनना पड़ता है । कीर्ति चौधरी का कहना है -

मैं प्रस्तुत हूँ
इन कई दिनों के चिन्तनों संबन्धों के बाद
यह क्षण जो अब पाया है
उस में बंधकर मैं प्रस्तुत हूँ
तुम से सबकुछ कह देने को ।
x x x x x
मैं प्रस्तुत हूँ
यह क्षण की कही न खो जाए[1]
हाँ, नये कवि क्षण में ही केन्द्रित हो गया है[2]

नया कवि क्षण की अनुभूति पर बल इसलिए देता है कि वह अपने को समसामयिक जीवन के प्रति प्रतिक्षण उत्तरदायी समझता है । उससे हटकर शश्वतता में विश्राम करने की कल्पना करना उसके स्वभाव के प्रतिकूल है ।

क्षण के खण्डहरों में होते हुए भी जीवन और मृत्यु के संवेदन के आधुनिक युग के प्राय: सभी कवि परिचित है । यही नहीं, ये मृत्यु-क्षण के भी लघुतम अंश की अनुभूति करना चाहते हैं -

चाहता हूँ पा सकूँ
उस एक क्षण को
नहीं

---

1 कीर्तिचौधरी - नयी कविता - अंक 3, पृ.63

2. डॉ. छोटेलाल दीक्षित - नयी कविता क्षणवाद के संदर्भ में आलोचना, अप्रेल 1966, पृ.40

क्षण के भी विभाजित
मात्र उतने अंश की अनुभूति
जितने में अनाहत धार जीवन की
अचानक मौत की काली गुहा में डूब जाती है[1]

यथार्थ की गतिशीलता सम-सामयिकता द्वारा ही वहन की जा सकती है अनुभूति पर आधुनिक स्तर यह मानकर विकसित हुआ है कि जीवन की छोटी सी छोटी अनुभूति मेंनिहित सत्य का महत्व है[2] ।

मृत्युबोध :: क्षणवादी-क्षणभोगी प्रवृत्तियों के समान ही कविता में मृत्यु और आत्महत्या की भी खूब चर्चा सुनाई पड़ती है । नयी कविता को कहीं-कहीं मृत्यु बोध की कविता तक कही जाती है । इसी मृत्यु बोध ने पश्चिम में काम्रू जैसे चिन्तकों को जीवन की निरर्थकता (अबसर्डिटी) के बारे में सोचने केलिए मज़बूर किया था । युद्ध और युद्ध जन्य संत्रास्त और अनिश्चितत्व ने मानव जीवन को व्यर्थ और निरर्थक माननेवाला जीवन दर्शन प्रस्तुत किया तो यह बिलकुल स्वाभाविक था । यह दुनियाँ जो विसंगतियों का पर्याय है, इस में बस एक ही सत्य है जीवनगत निरर्थकता का, बस एक ही अपवाद है और वह है मृत्यु । मानवअस्तित्व की इति मृत्यु में है । इसलिए अस्तित्ववादियों ने मृत्यु वरण की चर्चा की है, क्योंकि जीवन को समग्रता से देखने की शक्ति यही प्रदान करती है । आज की नयी कविता के मूल में यही मृत्यु बोध द्रष्टव्य है । पाश्चात्य कवियों के समान ही हमारे यहाँ के नये कवि की मृत्यु संत्रास की दुर्वहनीय पीडा से बुरी तरह संग्रस्त है । उनकी त्रासदी यही है कि वे जीवन और मृत्यु दोनों से ही नहीं उबर पाते -

---

1. जगदीश गुप्त - शब्द दंश, पृ.15
2. डॉ. लक्ष्मीकान्त वर्मा - नयी कविता के प्रतिमान, पृ.260

जीवन क्या है ?
मृत्यु क्यों ?
मुक्ति कैसे
ईश्वर कहाँ ?[1]

जीवन में शांति संभव नहीं है, मृत्यु ही शांति है[2] मृत्यु को जीवन के अंग रूप में स्वीकार करना इस बात का प्रमाण है कि कवि मृत्यु से पृथक जीवन का कोई मूल्य नहीं मानता है । मृत्यु को पचा लेना ही जीवन है । सृजन की संभावनाओं के कारण मृत्यु का और भी महत्व बढ़ जाता है -

ऐसे ही मैं ने सृजन को देखा है
और उसे मृत्यु की तरह पहचाना है
वह हत्या से उपजता है
और आत्महत्या की ओर बढ़ता है[3]

मृत्यु अवश्यभावी है, जिससे बच निकलना बिलकुल संभव नहीं । हर क्षण हमारे पीछे मृत्यु की छाया पडी हुई है । हमारे हर कदम पर मृत्यु मानों मुँह बाये खडी है । चेतना की रीढ़ पर रेंगती मौत की थूथनी को गन्दे स्पर्श का उसे अनुभव हो रहा है -

मेरी चेतना की रीढ़ पर
मौत की थूथनी का गन्दा स्पर्श
धीरे-धीरे रेंग रहा है[4]

1· कुँवर नारायण - आत्मजयी, पृ·108
2· दुष्यन्तकुमार - सूर्य का स्वागत, पृ·27
3· विजयदेवनारायण साही - मछली घर, पृ·95
4· सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - गर्म हवायें, पृ·10

आज का नया कवि भी जीवन और मृत्यु दोनों ही स्तरों पर अपने को अकेला महसूस कर रहा है -

क्योंकि व्यक्ति मरता है
और अपनी मृत्यु में वह बिलकुल अकेला है
विवश असान्त्वनीय[1]

फिर भी यह मृत्यु उसे जीवन भर से सुन्दर प्रतीत होता है -

यह मौत का क्षण जिन्दगी भर से सुंदर[2] और इसी भावना से प्रेरित होकर कभी कभी वह आत्महत्या कर लेना चाहता है। उसे मालूम है कि आत्महत्या कायरों का काम है, वह प्रश्नों का कोई समाधान नहीं है। फिर भी कभी कभी न जाने .क्यों ऐसे क्षण आ जाते हैं जबकि आत्महत्या की चाह ताज़ी हो जाती है -

मगर इस क्षण न जाने क्यों यही जो चाहता है झाँक लूँ उस अन्ध तमसावृत अजाने लोक में जिस में हज़ारों प्रेत बसते हैं[3]।

किंतु नयी कविता में आत्महत्या की यह जो चाह मिलती है उसका कदापि यह आशय नहीं है कि नये कवि जीवन से परामुख होना चाहते मृत्यु से साक्षात्कार के ज़रिये वास्तव में वह जीवन की ओर ही लौटता है। कामू के विख्यात सिसिफस के समान ही हमारे नये कवियों केलिए भी मृत्यु जीवन की वास्तविकता को पहचानने का माध्यम है। चाहे राजकमल चौधरी का "मुक्तिप्रसंग" हो या कुँवरनारायण का "आत्मजयी या ऐसी ही

1· कुँवर नारायण - आत्म जयी, पृ·1।

2· सर्वेश्वर दयाल - काठ की घण्टियाँ, पृ·26।

3· जगदीश गुप्त - विविधा, 2, पृ·1।

मृत्यु-बोध की कोई भी रचना मृत्यु के माध्यम से नवीन मौलिक जीवन दृष्टि को विकसित करने में ही ये जुडी हुई है । "आत्मजयी" में हम देख सकते हैं कि मृत्यु से साक्षात्कार करके नचिकेता जीवन की ओर लौटता है । यम के वरदान स्वरूप वह मरता नहीं है, अपितु मृत्यु का अनुभव करता है । वह जीता है उस सत्य के लिए जहाँ उसे पहुँचना है और वह सत्य मृत्यु ही है । व्यक्ति को यह जानकर जीना है कि उसे मृत्यु अथवा काल तक वापस आना है । यम ने भी नचिकेता से यही बात कही है - "तू यही समझकर जी तुझ को फिर मुझ तक वापस आना है[1] नचिकेता मरता नहीं है, वह तो मृत्यु से भी बडे मर्म का साक्षात्कार कर लेता है । अत: स्पष्ट है कि नयी कविता में "मृत्यु बोध का विकास नये अर्थों में हुआ है। यदि एक ओर मृत्यु को अनिवार्य, सृजन का परिणाम और भयंकर बताया गया है तो दूसरी ओर अस्तित्ववादी दर्शन के प्रभाववश मृत्यु के नव्यर्थ को बतानेवाले आयामों का भी विकास हुआ है[2] ।

जिजीविषा का नया स्वरूप

नयी कविता की दार्शनिक पार्श्वभूमि वास्तव में जीवन और जगत को एक सर्वथा नवीन वातायन से देखने की आदी है । यह सही है कि उसमें जो अनास्था, निराशा, अवसाद, कुण्ठा, मृत्युन्मुखता आदि भावनाएँ मिलती है वास्तव में यह द्वितीय विश्वयुद्धोत्तर वैश्विक संदर्भों और परिवेशगत प्रवृत्तियों की ही देन है । मृत्यु और अंधकार के बीच रहते हुए भी उनसे अभिभूत होते हुए भी प्रकाश या जीवन के अमरत्व की ओर बढ़ने की कोशिश ही "नयी कविता" की मूल चेतना कही जानी चाहिए । मानव

---

1. आत्मजयी - पृ.88
2. डॉ. हरिचरण शर्मा - नयी कविता का मूल्यांकन परंपरा और प्रगति की भूमिका पर, पृ.187

मन की गहराइयों में उतरते हुए, असमें सोई पड़ी जिजीविषा को एक नयी अर्थवत्ता प्रदान करते हुए फिर से जगाने की ईमानदार कोशिश हो नयी कविता में हम देख सकते हैं । चाहे "अन्धायुग" हो, "आत्मजयी" हो, "मुक्ति प्रसंग" हो या "अंधेरे में" ही क्यों न हो, सर्वत्र यही भावना हम देख सकते हैं । मृत्यु और अंधकार के माध्यम से मानवीय जिजीविषा को उजागर करना, मानवीय अस्तित्व को एक नयी अर्थवत्ता प्रदान करते हुए एक नूतन युग-दर्शन का अन्वेषण करना यही नयी कविता की मूल दार्शनिक अन्तधारा है । नयी कविता आत्मसंघर्ष रत रहकर अपनी खोई हुई अस्मिता की पुनर्रचना के लिए सार्थक व ईमानदार कोशिश में लगे नयी पीढ़ी के नूतन अन्वेषण का प्रतिस्पंदन है । साठोत्तर समय में हिन्दी काव्य क्षेत्र में उभरी नव-वामपंथी पीढ़ी में इसी भावना का विकास हम देख सकते हैं । इधर कविता के क्षेत्र में जो नव-प्रगतिवादी या नववामपन्थी रुझान मिलती है, उसके मूल प्रयोगकालीन कविता में ही देखे जा सकते हैं । फिलहाल काव्य क्षेत्र में जिस नयी सामाजिकता व प्रतिबद्धता की चर्चा ज़ोरों पर है, उसके बीज नयी कविता में आरंभकाल से ही विद्यमान है । ज्यों ज्यों संक्रमणकालीन स्थितियों को पार करते हुए नयी कविता का रूप अधिक निखरता गया त्यों त्यों उसकी दार्शनिक चेतना भी अधिकाधिक स्पष्ट होता गया ।

व्यंग्य की नई दिशा

आज के वैयक्तिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक व राजनीतिक स्तर का जीवन इतना खोखला और विसंगृस्त हो गया है कि जहाँ कहीं भी देखें सर्वत्र मिथ्याचार, भ्रष्टाचार और विकृतियाँ ही नज़र आती है । इन सब के बीच जकड़ा हुआ आज का व्यक्ति इतना संत्रस्त और पीड़ित है कि वह स्वयं नहीं जानता कि उसे क्या करना है । परंपरागत आदर्शों-विश्वास

से उसकी आस्था तो नष्ट चुकी है लेकिन उनके स्थान पर प्रतिष्ठित करने के लिए कोई नया आदर्श या विश्वास उसके सामने नहीं है । तत्कालीन अनुभवों के आधार पर उसने यह भली भाँति समझ लिया है कि स्मानी काल्पनिकों के समान इन कटु यथार्थों से मुँह मोड लेने या प्रगतिवादियों के समान इन सबके खिलाफ निरे नारे लगाने से समस्याओं का कोई स्थायी समाधान नहीं हो सकता । यही नहीं, समस्याओं केलिए कोई बना-बनाया समाधान प्रस्तुत करके खुद को सुधारक घोषित करने में आज के नये कवियों को कोई दिलचस्पी नहीं है । प्रश्नों को पूरी गंभीरता के साथ, यथार्थ रूप में लोगों के सामने प्रस्तुत करना और उनके बारे में सोचने केलिए लोगों को खुद मजबूर करना यही आज के कवियों की रचनात्मक पक्षधरता है । इसके लिए सबसे समर्थ माध्यम के रूप में व्यंग्य का उपयोग करते हैं । यह व्यंग्य साधारण हास्य के रूप में नहीं है[1] । व्यंग्य का व्यापक अर्थ है आधुनिक कविता की आलोचना में इसका प्रमुख स्थान है[2] ।"

---

1. "A number of writers associated with the new criticism use 'irony' in a greatly extended sense, as a general criterion of literary value. This use is based largely on two literary theorists. T.S. Eliot praised a kind of 'wit' absent in the Romantic poets, which is an 'internal equilibrium' that implies the 'recognition' in dealing with any one kind of experience, of other kinds of experience which are possible........ Great poems are invulnerable to external irony because they incorporate the poet's own 'ironic awareness of opposite and complementary attitudes.
M.H. Abrams A Glossary of literary Terms (1971), p.84

2. I.A. Richards Principles of Literary Criticism, p.120

इसमें मत भेद नहीं हो सकता कि बहुत गहरे में चोट खाया हुआ व्यक्ति जब बोलेगा तो व्यंग्य ही बोलेगा, जब कुछ करेगा तो प्रहार ही करेगा। यही कारण है कि जब भी कृतिकार, कलाकार ने स्वयं को भीतर-बाहर से आहत अनुभव किया है, वह व्यंग्यशील हो उठा है[1]। अतएव आज के नये कवियों ने वर्तमान सामाजिक, राष्ट्रीय और वैयक्तिक जीवन के जटिल अन्तर्विरोधों के उद्घाटन के लिए सबसे समर्थ माध्यम के रूप में व्यंग्य को चुना तो धीरे-धीरे व्यंग्य नयी कविता की एक मूल प्रवृत्ति भी बन गई। निश्चय ही आज के जीवन की विषमताओं और विकृतियों से आक्रान्त मनुष्य की चेतना में कटुता का अंश है जो स्वाभाविक ही व्यंग्य के माध्यम से अभिव्यक्त होने लगा है। कुछ कवियों ने इसे अपनी ईमानदारी के अन्तिम प्रमाण के रूप में अपनाया है। अधिकतर कवियों ने व्यंग्य को गंभीर ढंग से अपनाकर वस्तु-सत्य को व्यक्त करने का सबसे समर्थ माध्यम सिद्ध किया है। जो भी हो, नयी कविता में व्यंग्य एक अनिवार्यता के रूप में प्रकट हुआ है। वर्तमान युग के जटिल जीवन के अन्तर्विरोधों को, वैयक्तिक एवं सामाजिक स्तर के संकीर्ण यथार्थ को बौद्धिक व संवेदनात्मक स्तर पर मानवीय विडम्बनाओं और असंगतियों के माध्यम से अभिव्यक्त करनेवाली आज की नयी कविता के संदर्भ में व्यंग्य की यह अनिवार्यता तो स्वयं सिद्ध है ही। व्यंग्य की अनंत संभावनाओं और विविध आयामों को सृजनात्मक स्तर पर प्रस्तुत करते हुए युग जीवन के प्रति एक रचनात्मक दृष्टिकोण को रूप देनेवाली व्यंग्य की आधुनिक प्रवृत्ति निश्चय ही जैसा कि डॉ॰ रामस्वरूप चतुर्वेदी ने कहा है, नयी कविता की एक मौलिक प्रवृत्ति" है[2]

---

1. डॉ॰ शेरजंग गर्ग - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य - प्राक्कथन, - पृ॰5

2. डॉ॰ रामस्वरूप चतुर्वेदी - हिन्दी नवलेखन, पृ॰42

व्यंग्य की यह आधुनिक प्रवृत्ति नयी कविता की एक निजी उपलब्धि है । व्यंग्य को गंभीर ढंग से अपनाने और उसके बौद्धिक आयामों पर बल देते हुए पाठकों के मन-मस्तिष्क पर गहरी व स्थाई चोट व प्रभाव उत्पन्न कर देने की अपेक्षा विद्रूपता के माध्यम से भीड़ को हँसाने और उनके क्षणिक मनोविनोद करने तक ही प्राचीन हास्य कवियों का ध्यान विशेष रूप में रहा करता था । समाज के एक रचनात्मक आलोचक की भूमिका निभाने के बदले एक साहित्यिक विदूषक बनने में ही ये तथाकथित व्यंग्यकार समर्थ हुआ करते थे । संभवत: इसलिए प्राचीन व्यंग्यकारों को कभी भी साहित्यकारों की प्रथम श्रेणी में स्थान नहीं मिलता था और इनके तथाकथित व्यंग्य-काव्य की गणना निम्न-कोटी के साहित्य में की जाती रही है । यह भाव भारतीय साहित्य की ही बात नहीं है, संसार के इतर भाषा साहित्यों की भी प्राय: यही स्थिति रही है[1] । लेकिन वर्तमान समय तक आते आते साहित्य में, खासकर कविता में, व्यंग्य की प्रचुरता इतनी बढ़ गयी है कि वह नयी कविता की एक मौलिक चेतना या अनिवार्य प्रवृत्ति सी हो गयी है । स्वातन्त्र्योत्तर भारत की विघटित आस्था और सौंदर्यबोध को, विसंगतियों, विडम्बनाओं, निराशाओं और मोह भंगों से भरी जीवन को सबसे सार्थक और मार्मिक ढंग से अनुभूत कराने के सर्वाधिक समर्थ माध्यम के रूप में व्यंग्य को अपनाने की प्रवृत्ति निस्सन्देह हमारी नयी कविता की सबसे नवीन व मौलिक प्रवृत्तियों में एक बन गयी है

नयी कविता में व्यंग्य (अयरनी)

जहाँ तक नयी कविता का संबंध है, उसमें व्यक्तिगत व्यंग्य का प्राय: अभाव ही रहता है । प्राय: सभी नये व्यंग्यकार समष्टिगत व्यंग्य को ही अपनाकर चलते हैं । समष्टिगत व्यंग्य के भी कई स्तर होते हैं

---

1. Satire is relatively a low form of Literature
Hugh Walker; English Satire and Satirsts, p.119

जैसे धर्म से संबन्धित, समाज से संबन्धित, साहित्य से संबन्धित, राजनीति से संबन्धित आधुनिक सभ्यता व संस्कृति से संबन्धित, मानवीय दुर्बलताओं और विकृतियों से संबन्धित इत्यादि । नयी कविता में इन सभी स्तर के व्यंग्यों का काफी प्रयोग हुआ है । उसमें व्यंग्य का महत्त्व इतना अधिक हो गया है कि जीवन की, राजनीति की, समाज की, व्यक्ति की, विसंगतियों को व्यक्त करने के लिए सर्वत्र व्यंग्य का सहारा लिया जाने लगा है । आज समाज और जीवन से संबन्धित कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जिस पर वर्तमान युवा-कवियों की व्यंग्यात्मक दृष्टि न पडी हो । यहाँ तक कि व्यंग्य न करने पर भी उसने व्यंग्य किया है -

व्यंग्य मत बोलो
काटता है जूता तो क्या हुआ
पैर में न सही
सिर पर रख डालो
व्यंग्य मत बोलो[1] ।

छायावादोत्तर काव्य में सशक्त व्यंग्य का प्रयोग सर्वप्रथम निराला ने किया है । इनकी "कुकुरमुत्ता" जैसी रचनाएँ इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय है । निराला के बाद व्यंग्य की इस आधुनिक प्रवृत्ति को काव्य के एक सशक्त उपादान के रूप में मान्यता प्रदान करने में हिन्दी के प्रयोगवादी कवियों ने - सप्तकीय परंपरा में आनेवाले कवियों ने तथा प्रपद्यवादियों ने - विशेष हाथ बँटाया है । सप्तकीय परंपरा के अग्रणी कवि अज्ञेय ने तथा उनके सहयोगी भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे,

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - एक सूनी नाव, पृ.56-57

नेमीचंद्र जैन प्रभृतियों ने बदलते हुए युगपरिवेश तथा जीवन स्थितियों को तीखे व पैने व्यंग्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया है । आधुनिक वैज्ञानिक और मशीनी सभ्यता, महानगरीय वातावरण की विभीषिका के ग्रस्त विश्व मानवता की आन्तरिक पीडा, गरीब और अमीर के शोषित - शोषक सम्बन्धों, आदि पर मार्मिक, तीखा और करुण व्यंग्य की भरमार ही इन कवियों में हम देख सकते हैं । आधुनिक महानगरीय जीवन व सभ्यता के खोखलेपन और वहाँ के विषैले वातावरण की विभीषिका पर प्रहार करते हुए अज्ञेय ने लिखा है -

साँप ।
तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया
एक बात पूछूँ (उत्तर दोगे ?)
तब कैसे सीखा डसना
विष कहाँ पाया ?[1]

इसी तरह तत्कालीन जीवन के नाना क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों और विषमताओं का व्यंग्य के माध्यम से भंडाफोड करनेवाली अनेक कवितायें इस समय लिखी गयी जिनमें तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक नैतिक व राजनीतिक सभी स्तर के जीवन पर प्रश्न चिह्न लगानेवाली व्यंग्योक्तियें की भरमार ही दिखाई पडती है । शब्दों के जादू के बल पर लोगों को बेवकूफ बनानेवाली तत्कालीन सत्ता या व्यवस्था को आमूल हिला देनेवाली भारत भूषण अग्रवाल की यह प्रसिद्ध व्यंग्योक्ति देखिए -

---

1. अज्ञेय - इन्द्रधनु रौंदे हुए थे, पृ.29

"शब्द-शब्द-शब्द / बचे ! बचो !!
जनतंत्र की टंकी फट गई है
और शब्दों का एक भयंकर रेला
अर्राता हुआ सब को निगले जा रहा है
किताबों की फुहारें / अखबारों की बौछारें
भाषणों के परनाले / बहसों की नदियाँ
सेमिनार की लहरें / और विधान सभाओं की पोखरें
सब उफन रही है
आकाशवाणी के पाइप छूट रहे हैं
और लोग कानों तक डूब गये हैं।[1]"

यहाँ शब्दों के इस सैलाब में योजनाओं की फाइलें और इतिहास के पन्ने, भविष्य के कन्ट्रैक्ट और विज्ञान के प्रबन्ध बहे चले जा रहे हैं। ऐसे वातावरण में साँस लेनेवाला आधुनिक व्यक्ति यदि स्वयं यह दुविधा महसूस कर रहा है कि -

"हम क्या है कहाँ है
यह डल लेक या ड्रामों का थिएटर
हाजीपीर पास या उटी का जेलखाना
इंसान या राशन कार्ड।[2]"

तो दोष किसका है ? दोष और किसी का नहीं है, स्वयं उस व्यवस्था का है, उस परिवेश का है - स्वातंत्र्योत्तर कालीन भारत के उस बिगडे हुए वातावरण का। कवि यहाँ इसी बिगडी हुई व्यवस्था पर व्यंग्य कर रहा है।

---

1. आलोचना - पूर्णांक 38, पृ.48
2. वही, पृ.48

यह अपचय मात्र सामाजिक या राजनैतिक क्षेत्र में ही नहीं, जीवन से संबन्धित सभी क्षेत्रों में दिखाई पड़ता है । आज की सभ्यता और संस्कृति इतनी खोखली और दिखावटी हो गई है जहाँ कहीं भी देखें सर्वत्र हमें झूठे प्रपंचपूर्ण एवं कोरे आकर्षणों से भरा वातावरण ही दिखाई दे रहा है । इन्हीं पर व्यंग्य करते हुए कवि कहता है -

"खूब सुविधा है, नया रंग हल्के अंग
अन्दरूनी कुछ नहीं, बस शिल्प ही सत्संग
खार दामन को यहाँ उलझा नहीं सकते
फूल प्लास्टिक के कभी मुरझा नहीं सकते ।"[1]

व्यंग्य का बौद्धिक स्तर

हिन्दी के इन प्रयोगवादी कवियों की व्यंग्यात्मक कविताओं में जहाँ एक ओर मर्मस्पर्शी करुणा का पुट दिखाई पड़ता है, वही दूसरी ओर इनमें हास्यात्मकता का अंश भी काफी मात्रा में विद्यमान है । किंतु आधुनिक कवियों की इस हास्यात्मकता और प्राचीन हास्य कविताओं में काफी फर्क है । इनमें सबसे प्रमुख बात यही है कि आधुनिक व्यंग्य कवियों की इस हास्यात्मकता के पीछे बौद्धिकता का पुट व व्यंग्यात्मक गंभीरता काफी मात्रा में विद्यमान रहता है । भारत भूषण अग्रवाल की "टूटे सपनों का सपना" इसी कोटी की एक समर्थ रचना है । बदले हुए संदर्भों में मानव के चूर-चूर सपनों की तसवीर खींचते हुए कवि कहते हैं -

---

1 प्रभाकर माचवे - स्वप्न भंग, पृ.68

"रात मैं ने एक सपना देखा
मैं ने देखा
कि मेनका अस्पताल में नर्स हो गई है
और विश्वामित्र ट्यूशन कर रहे हैं
उर्वशी ने डांस-स्कूल खोल लिया है
नारद गिटार बजा रहे हैं
और बृहस्पति अंग्रेज़ी से अनुवाद कर रहे हैं[1]।"

प्रभाकर माचवे की कविता "पन्द्रह का पहाडा" भी इसी कोटि की है। पन्द्रह का पहाडा गाते गाते कवि हंसी में कितनी सच्ची और तीखी बातें कह गया है -

"जी हां, एम॰एस्सी हूं फर्स्टक्लास पिचहत्तर स्टार्ट दिया है,
जी हां, अब की सावित्री का मुन्नीजान ने पार्ट किया है
"हां" एजेंसी है बीमे की पड हाते हैं अस्सी नब्बे,
बडे ठसाठस भरे हुए रहते हैं थर्ड के डिब्बे।
यही बेतुकी बातें जहां सुनो मिल जायेंगी सुनने को
यहां किसे फुरसत है सुसरी कथा और संस्कृति गुनने की[2]।"

हिन्दी तथाकथित प्रयोगवादी या प्रारंभ की नयी कविताओं में व्यंग्य के जो विविध रूप प्रकट हुए हैं उनके पीछे एक व्यापक हद तक, अनुभूति का गहरा ताप है। हां, इस अनुभूति प्रक्रिया के पीछे एक व्यापक हद तक, अनुभूति का गहरा ताप है। हां, इस अनुभूति प्रक्रिया के पीछे निश्चय ही

1· भारत भूषण अग्रवाल - ओ अप्रस्तुत मन, पृ·122
2· प्रभाकर माचवे - अनुक्षण, पृ·36

कवियों की वैयक्तिक निष्ठा, विश्वास, आदर्श व वैचारिक मान्यताओं का गहरा प्रभाव विद्यमान है । "अज्ञेय के व्यक्तित्व में क्योंकि एक अभिजात और शालीन गंभीरता है, इसलिए उनमें हल्की-सी चुटकी लेकर विद्रूप को उभारने की प्रवृत्ति है, किन्तु भारवे फकीराना ठाठ और मस्ती के कवि है इसलिए उसमें आभिजात्य या शालीनता नहीं है । भारत भूषण अग्रवाल मध्यवर्गीय आकांक्षों के संवेदनशील एवं भावप्रवण कवि रहे हैं, इसलिए उन्होंने मध्यवित्त वर्ग की छोटी-छोटी आकांक्षों के पूरा न हो पाने की विडम्बना को व्यंग्य के माध्यम से उभारा है । गिरिजाकुमार माथुर के व्यंग्य में तीखापन आक्रोश एवं कटु प्रहार है और चुटकी तो बहुत ही कम है । इसी प्रकार मुक्तिबोध और रामविलाश शर्मा के व्यंग्य में जनवादी तथा विश्व-मानवतावादी चेतना है । कहने का अभिप्राय यही है कि "तारसप्तक" के प्रयोगवादियों ने प्रयोग के प्रति आस्थावान होने के बावजूद विसंगतियों पर व्यंग्य करते समय अपनी अनुभूतियों को प्रयोग की सूली पर नहीं चढ़ाया है[1] । आधुनिक युग में व्यंग्य अपने समस्त संभावित आयामों के साथ इसमें अभिव्यक्त हुआ है । प्रख्यात युवा कवि मदन वात्सायायन ने इसे "नयी करुणा" की अभिधा देते हुए कहा कि "मृत्यु और दुर्भाग्य का आज का आदमी आदी हो गया है । दारिद्र्य की दवा भी अब दान-दया नहीं, पंचवर्षीय योजना है आज का विषाद कुछ और तरह का है, अकसर ही व्यंग्य-युक्त[2] ।" इस व्यंग्य युक्त विषाद के अनेक उदाहरण नयी कविता में उपलब्ध होते हैं । स्वयं मदन वात्स्यायन की कई कवितायें इसके सशक्त उदाहरण है । इनकी वे कवितायें जिनमें यंत्रों और सरकारी अधिकारियों की व्यवहार-पद्धतियों पर व्यंग्यात्मक प्रतिक्रियायें है, अत्यन्त ही मार्मिक बन गयी है ।

1· डॉ· शेर जग गर्ग - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य, पृ·249

2· मदन वात्स्यायन - तीसरा सप्तक, पृ, 122

यंत्रालयों को "असुरपुरी" का नाम देते हुए इन्होंने कहा है कि यह एक ऐसी असुरपुरी है जहाँ मज़दूरों की सुबह दस बजे से शाम को छः बजे तक काम करना पड़ता है । "असुरपुरी में दूसरे छः शीर्षक कविता यंत्रों और यन्त्रालय में काम करनेवाले कमकर अर्थात् पानी भरनेवाले कर्मचारी और यंत्र के मध्य होनेवाले संवाद को प्रस्तुत करती है । यह संवाद आज के यंत्र-शोषित युग में मानव के अवमूल्यन की सूचना देताहै । मशीनें कमकर के प्रति भर्त्सना और उपेक्षा भरी वाणी में कहती हैं -

"बातें बडी बडी करता है
ऐंठा ऐंठा ही फिरता है
हम सब डटी रही ड्यूटी पर
पर उस कोने में पाइप पर
ऊंघ रहा था मानव फिर जा,
ऊंघ रहा था मानव तू तो
ऊंघ रहा था मानव
छि: छि:
छि: छि: छि: छि: छि:! ।"[1]

नयी कविता में युग के बदले हुए स्वभाव, रुचियों और मूल्यों के नष्ट हो जाने अथवा विघटित हो जाने के प्रति करुणायुक्त व्यंग्य है । लोगों को इस सीमा तक निस्संग हो जाता कि न अच्छाई अच्छी लगे और न बुराई बुरी, विकट व्यंग्य को जन्म देनेवाली स्थिति है । "वक्त" कविता में इसी तकलीफ की व्यंग्यात्मक अनुगूंज है -

---

1. मदन वात्स्यायन - तीसरा सप्तक, (पंचम संस्करण), पृ.106

"यह कैसा वक्त है
कि किसी को कडी बात कहो
तो वह बुरा नहीं मानता ।
जैसे घृणा और प्यार के जो नियम है
उन्हें कोई नहीं जानता ।"[1]

"नयी कविता" में सामाजिक और सांस्कृतिक विकृतियों पर प्रहार करने की प्रवृत्ति भी कम नहीं है । समाज में सब कही व्याप्त ह्रासोन्मुखी मनोवृत्तियों, अनैतिकता और विकृत जीवन-मूल्यों पर भी नये कवियों ने व्यंग्य किया है । यहाँ कवियों का लक्ष्य ध्वंसात्मक न होकर प्राय: निर्माणात्मक रहा है । विकृतियों और गलत जीवन-मूल्यों के प्रति एक प्रकार की घृणा और उदासीनता उत्पन्न करने का प्रयास भी नये कवियों में देखा जा सकता है । समाज में बढती हुई अनैतिकता के विरोध का स्वर भी इन में काफी मुखर हुआ है । असल में यदि देखा जाय तो "नयी कविता" में प्रहार केलिए उतनी तीव्र आकांक्षा नहीं है जितनी कि मनुष्य की असहाय अवस्था, मशीनों के समक्ष बौनी लगनेवाली मानवीय क्षमता और आत्मविडम्बनाओं की दुखद करुणा की अभिव्यक्ति की । समसामयिक गतिविधियों और आर्थिक विषमताओं से परास्त होकर आज जीवन ही क्या, साहित्य भी व्यावसायिक होता जा रहा है । मानवीय भावनायें प्रकट रूप से खरीदी और बेची जा रही है । काव्य भी अब नैसर्गिक लोकोत्तर व उदात्त नहीं रह गया है, उसमें भी व्यावसायिकता पनप रही है । आज के इस युग में जब ईमान, सत्य और मानव धर्म चंद सिक्कों की कीमत पर पण्य में प्रस्तुत हो जाते हैं तो काव्य की लोकोत्तरता एक मिथ्या होकर रह जाती है । इस अराजकता पूर्ण अव्यवस्था में कवि को बाज़ारू होना पड़ रहा है, भाँति भाँति की डिजाइनें लेकर गली गली भटकने केलिए वह अभिशप्त है । वर्तमान की इस सड़ी-गली सामाजिक व्यवस्था की व्यंग्यात्मक हँसी उडाने के साथ ही साथ उसपर कठोर आघात

---

1. कीर्ति चौधरी - तीसरा सप्तक, पृ॰74

करने से भी नये कवि चूकते नहीं है । एक श्रमजीवी "गीतफरोश" की यही आत्म स्वीकृति है -

"जी हाँ, हुजूर मैं गीत बेचता हूँ
यह गीत सख्त सरदर्द भुलावेगा,
यह गीत पिया को पास बुलावेगा
जी, इस में नाखुश होने की क्या बात ।
मैं पास रखे हूँ कलम और दवात ।
जो गीत जनम का लिखूं, मरन का लिखूं ....।
कुछ और डिज़ाइन और भी है, ये इलमी
यह लीजें चलती चीज़ नई फिल्मी ।
है गीत बेचना वैसे बिलकुल पाप -
क्या करूं मगर लाचार हारकर गीत बेचता हूँ ।
जी लोगों ने तो बेच दिए ईमान
मैं सोच समझकर आखिर अपने गीत बेचता हूँ ।"[1]

राष्ट्रीय प्रशासन में व्याप्त नौकरशाही, वर्गभावना, शासक शासित का द्वन्द्व और तत्परिणाम स्वरूप श्रमजीवियों की अधोदशा "नयी व्यांग्यात्मक कविता का एक प्रिय प्रतिपाद्य रहा है । पददलित, शोषित और पीड़ित समाज के प्रति नया कवि विशेषत: सहानुभूति प्रवण रहा है । वास्तव में नये कवि में व्यवस्था की विडम्बनाओं में पिस रहे मनुष्य के प्रति गहन सहानुभूति है । मदन वात्स्यायन की कविता "सरकारी कारखानों में कर्मचारी की चिन्ता" में सरकारी कारखाने का एक निष्कासित कर्मचारी उच्च वेतन भोगी अधिकारी वर्ग पर कटु व्यंग्य करता हुआ अपनी चिंता व्यक्त कर रहा है -।

---

1. भवानी प्रसाद मिश्र - दूसरा सप्तक, पृ.23

हमारे प्रशासन की एक अति नेताशाही या लीडरी में द्रष्टव्य है । भारत के भाग्य-विधाता, जननेता और लीडर के निर्माता जनता के बीच कितनी विषमता है उसकी व्यंग्योक्ति इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है -

"चपरासी कसे बेल्ट
सेक्रेटरी लिए डायरी
गेट पर खडी कार
लोगों को इन्तज़ार
कौन आ रहा ?
लीडर आ रहा !
कूडे से भरी गाड़ी
खडी है गली के बीच
भंगी का इंतज़ार
गंदगी का संसार
भूखा ही कौन जा रहा ?
लीडर का निर्माता[1] ।"

मानवीय सौंदर्यबोध और युग-जीवन पर अत्यधिक अन्तर्वेध व्यंग्य भी नयी कविता में कम नहीं है । सर्वेश्वर की कविता "सौन्दर्यबोध" इसी तरह की एक सशक्त व्यंग्य-रचना है -

"दुनियाँ आँसू पसंद करती है
मगर शोख चेहरों के,
ओछी नहीं है दुनिया-
महज उसका सौन्दर्य बोध बढ गया है[2] ।"

1• शकुन्त - माथुर - दूसरा सप्तक, पृ•45

2• सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - गर्म हवाएँ, पृ•22

नये कवियों में स्वानुभूतिगत विवेक चेतना और पीड़ित अन्तरात्मा का उद्भास अधिक है इसलिए उनके व्यंग्य में भी तीक्ष्णता तथा पारदर्शी कटुता का पुट विद्यमान रहता है । इस दृष्टि से कुँवर नारायण की कवितायें विशेष रूप से द्रष्टव्य है । उनकी एक कविता "गोस्वामी बाबा तुलसीदास" इस संदर्भ में विशेष ध्यातव्य है । कवि ने यहाँ तुलसी का आधुनिक मूल्यांकन करते हुए आज के कवि की विडम्बना और मध्य वर्ग तथा समसामयिक परिप्रेक्ष्य की प्रतारणा का सूक्ष्म संकेत प्रस्तुत किया है । यहाँ कवि की विवशता, काव्य के प्रयोजन, जनप्रिय कवि के "पब्लकीकरण" और राजनीतिक विषम क्रियाओं का तथ्योद्घाटन किया गया है । इस व्यंग्य का लक्ष्य तुलसी नहीं है, उसका लक्ष्य है युग जीवन । कवि की यह व्याजोक्ति अत्यन्त पैनी है, साथ ही शिष्ट भी -

"इस युग में जन्म लिया होता यदि तुम ने
हो जाती छीछालेदर अच्छी खासी
अवधी में कविता करते कहलाते गंवार
होते ज्यादा से ज्यादा तुम चपरासी
बेबी की साल गिरह पर "बास" बुलाता,
धूत पिए बैठते कविता सुनने बदतमीज़,
लेकर डकार कोई मनचला मचलता -
हो जाए बाबा जब कोई मसखरी चीज ।
संतों की भीड तुम्हारे घर पर लगती,
रामायण कम सुनते ज्यादा देते सुझाव
बाबा ! सचमानो, भव्य तुम्हारे तुम को
लडवाकर ही रहते अयोध्या से चुनाव ।[1]"

---

1. कुँवर नारायण - चक्रव्यूह, पृ.

वर्तमान ज़माने में सिर्फ नेता-लोग ही नहीं, स्वयं जनता-जनार्दन भी काफी बदल गए है । उनके बदले हुए विश्रृंखल चरित्र की एक झाँकी विपिन अग्रवाल की कविता "हमारा देश" में देखी जा सकती है । व्यक्तिवादी स्वार्थपरता और नकलीपन ही उसकी मुख-मुद्रा है । जहाँ मुँह से गाली निकल जाने का अर्थ क्रान्तिकारी हो जाना, पडोसी को लाभ पहुँच जाने का अर्थ देश के लिए खतरा खडा हो जाना, जेब कट जाने का अभिप्राय महादानी बन जाना हो और निकम्मेपन, काम चोरी, एवं अकर्मण्यता को संन्यास अथवा ईमानदारी का पर्याय माना जाय, वहाँ इस प्रकार का व्यंग्य लिखा जाना बिलकुल स्वाभाविक ही है । -

"आज मेरे मुँह से गाली निकल गयी
मैं क्रान्तिकारी हूँ
आज मेरे पडोसी को नौकरी मिल गयी
देश खतरे में है
आज मेरी जेब कट गयी
मैं महादानी हूँ
आज मैं ने कुछ भी नहीं किया
मैं तो सन्यासी हूँ
x x x x x
कौन हो तुम जो खाली हाथ उठाये हो
मत सुनाओ मुझे अपने दुख-दर्द की कहानियाँ
देखते नहीं मैं बडे बडे सवालों में डूबा रहूँ ।"[1]

---

1. विपिन कुमार अग्रवाल - कल्पना, अप्रैल 66, पृ.18

समय की भयावहता के विभिन्न रूप

जैसे ही प्रारंभ में सूचित किया कि नयी कविता आधुनिक मन की ही अभिव्यक्ति है। अतः आज की संकीर्ण दायरे में मन की जो परिभ्रान्त अवस्था है, आशंकाओं का जो बीहड जंगल है नयी कविता में अनेकानेक बिम्बों एवं स्वप्निल यथार्थ के रूप में अवतरित होते हैं। "उसमें न तो अनुभवों को प्राकृतिक उपकरणों में सीधे-सीधे आरोपित करते हुए सज्जाशील संसार बनाने की कामना है, और न किसी वैचारिक व्यवस्था के आधार पर सुखद भविष्य की कल्पना। वह किसी एकदम नये मनुष्य की खोज नहीं करती, और न ही उसे एक नये संदर्भ में ले जाने का कोई आश्वासन देती है। वह अपने समय के मनुष्य को भावना और विवेक के स्तर पर समझना चाहती है। यह चेष्टा एक रूप नहीं है, वह हो भी नहीं सकती।[1] नयी कविता का अनेकाग्र फैलाव इस बात का प्रमाण है। हिन्दी में सबसे पहले मुक्तिबोध ने ऐसे यथार्थ से हमारा परिचय कराया। यह संयोग की बात नहीं कि मुक्तिबोध की प्रायः सभी कवितायें लंबी है। इन लंबी कविताओं का रचना पटल अतिविस्तृत है। मुक्तिबोध ने हमेशा खंडहरों, चट्टानों, घाटियों के चित्र उतारे हैं। यह भी संयोगवश नहीं है। "चाँद का मुँह टेढा है" की भूमिका के रूप में जो लेख शमशेर बहादुर सिंह ने प्रस्तुत किया है, वह द्रष्टव्य है "किसी ने मुक्तिबोध की एक बरगद से तुलना की है, जो अवश्य ही उनका एक प्रिय इमेज है। मगर वह बरगद नहीं-चट्टान एक ऊँची, सीधी चट्टान है। शिलाओं पर शिलाएँ। झरने कहीं बिरले ही। केवल गहरी बावलियाँ सूखे कुएँ, झाड-झंखाड, ऊँची-नीची अनन्त पगडण्डियाँ जैसे मालवा के पठार मध्यप्रदेश की ऊबड-

---

1. डॉ. राजेन्द्र मिश्र - समकालीन कविता सार्थकता और समझ (1973) - पृ. 16

खाबड धरती- और इस धरती के आतंकमय रहस्यमय इतिहास - और उनके बीच लहूलुहान मानव ।

मुक्तिबोध हमेशा एक विशाल विस्तृत केन्वास लेते हैं - जो समतल नहीं होता जो सामाजिक जीवन के "धर्मक्षेत्र" और व्यक्ति चेतना की रंगभूमि को निरंतर जोड़ते हुए समय के कई काल-क्षणों को प्राय: एक साथ आयामित करता है । लगता है । इतिहास के संघर्ष - एक षड्यन्त्र का - सा जाल फैलता सिमड़ता है । और इस जाल में हम और आप, अनजाने तौर से, और अनिवार्य त:, फँस गये हैं - और निकलने का रास्ता खोज रहे हैं - मगर कही कोई रास्ता नहीं है - और फिर भी पक्का विश्वास है कि रास्ता है, रास्ता है ।[1]

"नगर के बीचो - बीच
आधी रात-अंधेरे की काली स्याह
शिलाओं से बनी हुई
भीतों और अहातों के, काँच-टुकड़े जमे हुए
ऊँचे-ऊँचे कन्धों पर
चाँदनी की फैली हुई सँवलायी झालरें ।
कारखाना - अहाते के उस पार
धूम्र मुख चिमनियों के ऊँचे-ऊँचे
उद्गार-चिह्नाकार-मीनार,
मीनारों के बीचों-बीच
चाँद का है टेढ़ा मुँह !!
भयानक स्याह सन तिरपन का चाँद वह !!

1· मुक्तिबोध - चाँद का मुँह टेढ़ा है (1971), पृ·20

गगन में करफ्यू है
धरती पर चुपचाप ज़हरीली छि: थू, है !!
पीपल के खाली पड़े घोसलों में पक्षियों के,
पैठे हैं खाली हुए कारतूस ।
गंजे-सिर चाँद की संवलायी किरनों के जासूस
साम-सूम नगर में धीरे-धीरे घूम-घाम
नगर के कोनों के तिकोनों में छिपे हैं !!
चाँद की कनखियों की कोण-गामी किरनें
पीली-पीली रोशनी की, बिछाती है
अँधेरे में, पट्टियाँ ।
देखती हैं नगर की जिन्दगी का टूटा-फूटा
उदास प्रसार वह ।"[1]

मुक्तिबोध की सबसे अधिक चर्चित कविता "अँधेरे में" एक तनावपूर्ण भयावहकता की अभिव्यक्ति है । नामवरसिंह ने उसे अस्मिता के संकट की कविता बतायी है[2] । नयी कविता के उन्मेष के काल में बहुतों की रचनाओं में इस संकट का प्रतिपादन हुआ है । लेकिन मुक्तिबोध की प्रस्तुत रचना उसके आगे की स्थितियों की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित करती है । "मुक्तिबोध की कविता मनुष्य की दशा को सैकड़ों स्तरों पर और सैकड़ों रूपों में उपस्थित करती है । ये कविताएं अभिव्यक्तियाँ नहीं हैं, मनुष्य के आत्मसंहार की भयानक और आक्रामक तस्वीरें हैं । मुक्तिबोध की कविता में शब्दों का कोई अर्थ नहीं रह गया है । शब्द केवल समूह

1· मुक्तिबोध - चाँद का मुँह टेढा है, पृ·23

2· नामवर सिंह - कविता के नये प्रतिमान, पृ·238

हपेकर रह गये है, अर्थ उनसे अलग जा पडा है । शब्द और अर्थ के अलग-अलग हो जाने से एक असंगत संसार पैदा हो गया है जो कि जितना ही पैशाचिक है, उतना ही मानवीय है ।"[1] श्रीकांतवर्मा का यह कथन सार्थक है क्योंकि "अंधेरे में" की रचना जन्य अवस्था चुनौती पूर्ण हैं । उनकी कविता की भयावहता इसलिए विचारों में परिवर्तित होती नहीं है, क्योंकि उनमें उनकी निजता और बाह्य दृश्यालेख का समन्वय मिलता है । अशोक वाजपेयी ने सही बताया है - "उनकी कविता का सामाजिक दृश्य सिर्फ एक पीडा-भरा "बाह्य" नहीं है, बल्कि वैसी ही पीडावाला एक अंतस भी है, और इसलिए अत्यन्त सामाजिक होते हुए भी अत्यंत निजी है ।[2] "अंधेरे" में की ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -

"सूनापन सिहरा
अंधेरे में ध्वनियों के बुलबुले उभरे,
शून्य के मुख पर सलवटें स्वर की,
मेरे ही उर पर, धंसती हुई सिर,
छटपटा रही हैं शब्दों की लहरें
मीठी है दु:सह !!
अरे, हां, सांकल ही रह-रह
बजती है द्वार पर ।
कोई मेरी बात मुझे बताने केलिए ही
बुलाता है - बुलाता है
हृदय को सहला मानो किसी जटिल
प्रसंग में सहसा होठों पर
होठ रख, कोई सच-सच बात
सीधे-सीधे कहने को तडप जाय, और फिर

1· श्रीकान्तवर्मा - जिरह (1973), पृ·49-50
2· अशोक वाजपेयी - फिलहाल (1973), पृ·109

वही बात सुनकर धँस जाय मेरा जी -
इस तरह, साँकल ही रह-रह बजती है द्वार पर
आधी रात, इतने अँधेरे में कौन आया मिलने ?
विमन प्रतीक्षातुर, कुहरे में घिरा हुआ
द्युतिमान मुख - वह प्रेम भरा चेहरा -
भोला-भाला भाव -
पहचानता हूँ बाहर जो खड़ा है !!
यह वही व्यक्ति है, जी हाँ ।
जो मुझे तिलस्मी खोह में दिखा था ।
अवसर-अनवसर
प्रकट जो होता ही रहता
मेरी सुविधाओं का न तनिक ख्याल कर ।
चाहे जहाँ, चाहे जिस समय उपस्थित,
चाहे जिस रूप में
चाहे जिन प्रतीकों में प्रस्तुत,
इशारे से बताता है, समझाता रहता,
हृदय को देता है बिजली के झटके !!
अरे, उसके चेहरे पर खिलती है सुबहें,
गालों पर चट्टानी चमक पठार की
आँखों में किरणीली शान्ति की लहरें
उसे देख, प्यार उमड़ता है अनायास ।
लगता है - दरवाज़ा खोलकर
बाहों में कस लूँ
हृदय में रख लूँ

घुल जाऊं, मिल जाऊं लिपटकर उससे
परन्तु, भयानक खड्डे के अंधेरे में आहत
और क्षत-विक्षत, मैं पड़ा हुआ हूं,
शक्ति ही नहीं है कि उठ सकूं ज़रा भी
(यह भी तो सही है कि
कमज़ोरियों से ही लगाव है मुझको)"[1]

इस प्रकार के संख्यातीत भयावह बिंब मुक्तिबोध की रचनाओं में सुलभ है, जो मात्र उपरोक्त मनःस्थिति के सूचक ही नहीं बल्कि समय के इतिहास को भी रेखांकित करते हैं । मुक्तिबोध के काव्य में यदि एक ओर सुनसान, वीरान, बियाबान सन्नाट्टा है और थरथराना, कांपना, सिहरना चीखना जैसे शब्दों का प्रयोग तो दूसरी ओर वध, दुर्घटना, आग, गोली, रैफल, जुलूस, नारा, कर्फ्यू आदि के दहशत भरे चित्र भी[2] ।

मुक्तिबोध की तुलना में शमशेर बहादुर सिंह विशिष्ट भावप्रसंग के कवि है । स्वयं मुक्तिबोध ने लिखा हैं - "उनकी आत्मपरकता उन्हें भाव प्रसंग के भीतर उपस्थित अपनी संवेदनाओं के चित्रण केलिए बाध्य करती है उनकी संवेदना वास्तविक है, वह प्रसंगबद्ध है, प्रसंग उस संवेदना के रूप को निर्धारित करता है[3] । शमशेर ने अनुभवजन्य सच्चाइयां दो विरोधी ध्रुवों का स्पर्श करती हैं । इसलिए ही विशिष्ट भावप्रसंग उनकी कविताओं में अनावृत होते हैं । आत्मपरकता और वस्तुपरकता के बीच में झिलमिलानेवा कुछ प्रकाशवृत्त उनमें प्राप्त किये जा सकते हैं । विजदेवनारायण साही ने ठीक ही लिखा है - "शमशेर की कविता में एक प्रवृत्ति है, उसी शून्य,

---

1. मुक्तिबोध - चाँद का मुँह टेढा है, पृ.230-232
2. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी - समकालीन हिन्दी कविता (1981)पृ.43
3. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, मलयज (सं.) - शमशेर (1971)
   (शमशेर मेरी दृष्टि में - मुक्तिबोध का लेख), पृ.16

उसी न कुछ में वापस चले आने की । गति और प्रतिगति - अभिव्यक्ति और संकोच के इस तनाव में एक तरह की स्थिरता, संतुलन पैदा होता है । यह स्थिरता, यह अटकाव, यह स्थिति अनस्तित्व और अस्तित्व के बीच एक अंतराल है - विशुद्ध संभावना का क्षण है । यह वह मनोभूमि है जहाँ कविता अपने अर्थ से आलोकित होती है ।[1]" इसलिए प्रायः शमशेर एक पारदर्शी यथार्थ का अंकन करते हैं ।

"एक आदमी दो पहाड़ों की कुहनियों से ठेलता
पूरब से पश्चिम को एक कदम से नापता
बढ़ रहा है ।
कितनी ऊँची घासें चाँद-तारों को छूने को है
जिनमें घुटनों को निकलता वह बढ़ रहा है
अपनी शाम को सुबह से मिलाता हुआ
फिर क्यों
    दो बादलों के तार
    उसे महज़ उलझा रहेहैं[2] ?"

देश और काल के यथार्थ में छिपे हुए मर्म को प्रस्तुत कविता रेखांकित करती है ।

नयी कविता का यह परिदृश्य भारती की कविताओं में एकालाप और संवाद के रूप में परिलक्षित होता है । उन्होंने आम आदमी क

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, मलयज (सं.) - शमशेर (1971)
   (शमशेर मेरी दृष्टि में - मुक्तिबोध का लेख), पृ.23
2. वही, पृ.120

उस मंच पर खड़ा किया जहाँ पर उसकी परिभाषा सार्थक होती है । अतः उनका एकालाप आज की सच्चाइयों का नाटकीय संवाद है । सरलीकृत दृष्टि से तो हम बता सकते हैं कि उनकी कविताओं में संवाद तत्व है । पर सवाल यही है कि क्या यह मात्र संवाद शिल्प तत्व है ? उसका वास्तविक धरातल क्या है ? तमाम जोखिमों का खतरा मोल लेने केलिए प्रायः असुरक्षित वृत्त में से बाहर आकर सही सवालों का रचनात्मक क्रम इसमें विन्यासित होता है ।

"पृष्ठभूमि के नाम पर यों समझिए
कि बाकी दुनिया अँधेरे में है
बीच में एक मेज़ है
जिसके ईर्द-गिर्द लोग बैठे हैं
कुछ खड़े भी हैं
सब की आँखें मेज़ पर लगी है
इन्तज़ार ।"[1] (इसी तरह उम्र भर)

xx xx xx

मैं जानता हूँ
मैं निरस्त्र और निस्सहाय
मेरे पास सिवाय एक करुणा के कुछ भी नहीं
लेकिन मुझे उस अनाविल निर्झर का पता है
जो दिन-रात अर्थ विस्मृत कुंडों में गिरता है
जिसे मैं ने देखा नहीं, सिर्फ सुना भर है
और सुनकर ही विश्वास कर लिया
तुम्हें कितनी करुणा चाहिए
जितनी जो तुम्हें इस शिकंजे से मुक्ति दिला सकें[2] ।"

---

1. विजयदेवनारायण साही - मछली घर, पृ.49
2. वही, पृ.84

वस्तुत साही की कविताओं का सरोकार एकदम मनुष्य की स्थितियों से है । साही अपनी सहज उपस्थिति से इसकी प्रतीति देते हैं । वे वार्तालाप करते महसूस होता है, पूरी सक्रिय उपस्थिति का दुर्निवार एहसास ।

"मैं सिर्फ इन्तजार कर रहा हूं
उस विकल्प का
जिसकी अफवाह
रात की हवा की तरह
समय के एक छोर से दूसरे छोर तक
मंडराती हुई सुनाई पड़ती है[1] ।"

साही के संवादों का यह व्यापक संदर्भ है, इस ओर मलयज ने प्रकाश डाला है - "अनैतिक और विशृंखल युग में कवि-कर्म के प्रति नैतिक संपृक्ति की दृष्टि क्यों ? शायद इसलिये कि कवि जीवन के प्रत्यक्ष साक्षात्कार में एक ऐसी व्याकुलता का अनुभव करता है जो उसे मानव जीवन के सतही रूपों से परे मानव अस्तित्व की बुनियादी शर्तों और चुनौतियों की ओर आकर्षित करती है । शायद यह अपने आप में किसी मूल्य की तलाश है, चाहे इस मूल्य का रूप कुछ भी क्यों न हो । कवि-कर्म में आस्था अपने आप में एक मूल्य है और अनैतिक विशृंखल युग में जिम्मेदारी का बोध भी एक मूल्य ही है[2] ।" उस मूल्य स्थापना के दौरान क्षत-विक्षत हुए अनेकानेक संदर्भ साही की कविता में उद्घाटित होते हैं ।

1· विजयदेवनारायण साही - मछलीघर, पृ·122

2· मलयज - कविता से साक्षात्कार (1979), पृ·47

बाह्य: श्रीकान्तवर्मा की रचनात्मक मुद्रा क्षुब्ध है । मध्यवर्गीय बेचैनी और क्षोभ उनकी प्रारंभिक कविताओं में भी प्राप्त होते हैं । उन्हीं भावों का एक विकसित सिलसला "मायादर्पण" और "दिनारंभ" में प्राप्त होता है । जैसे कि अशोक वाजपेयी ने सूचित किया - "मायादर्पण" की दुनिया दहशत की, भयावह और अक्सर अप्रत्याशित संबंधों की दुनिया है । लेकिन उसमें से गुज़रते हुए आप पायेंगे कि श्रीकान्त वर्मा के क्षुब्ध और तीखे स्वर के बावजूद, उनकी करूणा लक्ष्य करने से आप बच नहीं सकते । दोनों में, यानी कि क्षोभ और करुणा में, जहाँ तक कविता का सवाल है, वह अंतर्विरोध नहीं है।[1]" लेकिन बहुधा क्षोभ का एक तटस्थ संकेत उनमें बराबर प्राप्त होता है -

"न मेरी कवितायें हैं
न मेरे पाठक
न मेरा अधिकार है
यहाँ तक कि मेरे सिगरटें भी नहीं है[2] ।"

कवि का "मूड" खींच आत्मालोचन तथा रोश का है । और कहा जा सकता है कि यह कविता श्रीकांत वर्मा के अपने त्रास को नहीं, वरन् समूचे कवि कर्म की रेगिस्तानी छटपटाहट को व्यक्त करती है । आज की कविता की यह बड़ी पहचान यह कहा जाय कि एकमात्र पहचान यही है कि वह कविता की निस्सारता की निर्ममता पूर्वक समझ चुकी है[3] ।" प्रश्न यह है कि यह निर्ममता कविता के प्रति है या आज के जीवन की निस्सारता के प्रति ?

1· अशोक वाजपेयी - फिलहाल, पृ·100

2· श्रीकान्त वर्मा - दिनारंभ, पृ·38

3· विष्णु खरे - आलोचना की पहली किताब §1983§, पृ·110

एक खास नाटकीय अंदाज़ में आज के यथार्थ और उसकी भयावहकता को रघुवीर सहाय ने प्रस्तुत किया है । रघुवीर सहाय की कविता के निकट जाने का अर्थ उस परिवेश के निकट जाना है, जो हमारा न भी हो, पर जिसके नैतिक ह्रास और सांस्कृतिक अवमूल्यन ने हमारा अनिवार्य सरोकार है क्योंकि हम उसकेलिए सीधे उत्तरदायी न होकर भी उसके अभ्यस्थ हो जाते हैं[1] । आज के इस अवमूल्यन को स्वयं कविता के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है -

"जो शरीर भूखे मरे पाये गये
उनमें जाने कितने कलाकारों के थे
उनकी कोई रचना छपी नहीं थी बल्कि
उनकी कोई रचना हुई नहीं थी क्योंकि
अभी उन्हें करनी थी
दो हज़ार वर्ष के अत्याचार के नीचे से उठकर
उन्हें एक दिन करनी थी रचना
इसके पहले ही मारे गये
इस वर्ष पिछले वर्ष की तरह[2] ।"

कविता और कवि के संकेतों से रघुवीर सहाय समय की सच्चाइयों का ब्योरा प्रस्तुत करते हैं । इस कविता में उस कविता की ऐसी कई दिशायें और संभावनायें हैं जिनपर पाठकीय दृष्टि अतत: टिकती है । "उन्होंने प्रेम और प्रकृति की कोमल कविता से प्रारंभ करके जीवन के नग्न यथार्थ की कविता तक काव्य यात्रा की है[3] ।"

---

1 परमानन्द श्रीवास्तव - समकालीन कविता का व्याकरण(1980), पृ.47
2. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध, पृ.26
3. डॉ. हरदयाल - हिन्दी कविता का समकालीन परिदृश्य (1978), पृ.48

केदारनाथ सिंह की कविताओं में एक विशेष प्रकार का संयम है। उनकी कविताओं का अपना एक खुलापन भी है। हर स्थिति के सूक्ष्मतम पहलू के साथ जुड़ जाने की प्रक्रिया उनका रचना प्रक्रिया का मुख्य पहलू है। अतः वे भावगुंफित चित्रों के माध्यम से या ऐसे कुछ बिंबों के माध्यम से अपनी बात कह डालती है।

समय की भयावहता उनकी कविता में निजी स्तर पर व्यक्त हुई है। अपनी बेचैनी को उन्होंने भावात्मक न बनाकर रागात्मक बनाया है। केदारनाथ की कविताओं में व्यक्त बेचैनी के संबन्ध में नामवर सिंह का मत दृष्टव्य है - "घबराहट, बेचैनी और आकुलता के चित्रों की संख्या केदार में सबसे अधिक है, जो उनकी मानसिक स्थिति को व्यक्त करने के साथ ही सम्भवतः इस युग की सामान्य "बेचैनी" को भी चित्रित करती है। यह बेचैनी उनकी काव्य लय के माध्यम से व्यक्त होती है जिससे लय को एक विशिष्ट गति प्राप्त हो गयी है और जो कहीं भी पहचानी जा सकती है।"[1] सामान्य ढंग से प्रयुक्त कुछ ऐसी वस्तुओं की वस्तुपरकता के आगे जाकर जीवन में व्याप्त अंधकार को उनकी पंक्तियाँ परिभाषित करती है। उनकी "सूर्य" नामकी कविता इसके लिए उदाहरण है -

"वह रोटी में नमक की तरह प्रवेश करता है
तावे पर रखी हुई रात की रोटी
उसके आने की खुशी में ज़रा-सा उछलती है
और एक भूखे आदमी की नींद में गिर पड़ती है
एक बच्चा जागता है
और घने कोहरे में पिता की चाय केलिए दूध खरीदने

---

1. देवशंकर अवस्थी (सं.) - विवेक के रंग, पृ.140

नुक्कड़ की दुकान तक अकेला चला जाता है
एक पतीली गरम होने लगती है
एक चेहरा लाल होना शुरू होता है
एक खूंखार चमक
तम्बाकू के खेतों से उठती है
और आदमी के खून में टहलने लगती है
मेरा ख्याल है
वह आसमान से नहीं
किसी जानवर की मांद से निकलता है
और एक लम्बी छलांग के बाद
किसी गंजे तथा मुस्तंड आदमी के भविष्य में
गायब हो जाता है
अकेला
और शानदार
वह आदमी के सर उठाने की
यातना है
आदमी का बुखार
आदमी की कुल्हाडी
जिसे वह कंधे पर रखता है
और जंगल की ओर देता है
मेरी बस्ती के लोगों की दुनिया में ।"[1]

---

1. केदारनाथ सिंह की "सूर्य" शीर्षक कविता ।
साक्षात्कार (जनवरी, फरवरी, मार्च 1984) कविता अंक से उद्धृत, पृ.11

केदारनाथ सिंह की कविताओं के संबन्ध में राम स्वरूप चतुर्वेदी ने ठीक ही बताया है - "प्रकृति और लोकजीवन के साथ कवि की निगाह जीवन के तनावों पर भी बराबर रही है । यह ठीक है कि उनके यहाँ तनाव बहुत चीखने की मुद्रा में नहीं है, और यही कारण है कि उसका वर्णन एक तटस्थ मुद्रा में करता है ।"

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना में भयावहता का खुलकर एहसास प्राप्त होता है । राजनीतिज्ञ एवं सामाजिक परिदृश्य में प्राप्त अनैतिक पहलुओं के प्रति एक सीधा संवाद इनकी कविताओं में हो गया है ।

ये कुछ उदाहरण मात्र हैं । नई कविता की मूल अन्तर्वृत्तियों को परिभाषित करनेवाले इस पक्ष का संबन्ध आज की पहचान से है । इस पहचान का आत्मालोचन पक्ष तथा संकटग्रस्त एवं दुविधा ग्रस्त मानसिकता एवं उसका सामाजिक परिदृश्य आज के जीवन के ही परिप्रेक्ष्य हैं ।

नई कविता के कथ्य की सीमातीतता ही उसका सौंदर्य पक्ष है । बाह्यत: नई कविता के कथ्य पक्ष को स्वरूपित और निर्मित करनेवाले कई घटक हैं और उनमें आपसी संबन्ध ढूंढ सकना एकदम आसान तो नहीं लगता है, परन्तु इन सब का सम्मिश्रित भाव गुंफन ही नई कविता की समग्र संवेदना है । एतदर्थ सौंदर्य शास्त्र भी ।

अध्याय - चार

नयी कविता की बिम्ब परिकल्पना

अध्याय - चार

नई कविता की बिम्ब परिकल्पना

कविता की कलाधार्मिता का एक प्रामाणिक संकेत काव्य बिम्बों में उपलब्ध किया जा सकता है । काव्येतर ज्ञानराशियों की समावेशी दृष्टि की सहायता से काव्य चिन्त की नयी प्रक्रिया का विकास हुआ तो बिम्बों के अर्थ विस्तार पर अधिकाधिक मात्रा में प्रकाश पड़ने लगा । काव्य बिम्बों की प्रासंगिकता इस प्रकार बढ़ने लगी और काव्यबिम्ब सौंदर्य बोध के महत्वपूर्ण पक्ष सिद्ध होने लगे ।

बाहरी संसार बिम्बों का निबिड वन है । जब हम दृश्य जगत की वस्तुवों को देखते हैं तो हमें लगता है कि वे सारे चित्र हमारे अनुभवों के समान हैं । लगभग बिम्ब योजना में यही कार्य होता है । ऐंद्रिय अनुभवों की अभिव्यक्त करनेवाली बिम्बजन्य योजना में उपमा, रूपक आदि अलंकारों का सहारा कवि लेता है । विभिन्न वस्तुओं में दृश्यमान अस्पष्ट समानता इसका एक प्रमुख अंग है । इस अवसर पर अंग्रेजी में प्रयुक्त "इमेज" शब्द के मूल लाटिन शब्द की व्याख्या उपादेय हो सकती है । इमेज इमागो (Imago) शब्द से निष्पन्न है[1] । इसका अर्थ है समानता । लेकिन समान दीखनेवाले सभी चित्र बिम्ब नहीं है । अलंकारों की सामान्य स्तर से जो चित्र उभरते नहीं है, उन्हें हम बिंब की कोटी में नहीं रख सकते । बिम्ब कल्पना में सामान्यतः यही होता है कि दो प्रमुख वस्तुवों को कवि समान ढंग से जोड़ता है । इन दो वस्तुवों में जिस प्रकार कलाकार का भावात्मक संसार भरा रहता है, उसी का आस्वादन के अवसर पर पाठक पहचान लेता है ।

बिम्बवाद

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक चरण में बिम्बवादी आंदोलन शुरू होता है । इस आंदोलन के प्रारंभिक प्रवर्तक है; टी॰ई॰ हल्म और फ्लिंट । बिम्ब को कविता के मानक तत्व के रूप में स्वीकार किया गया यही बिम्बवाद का प्रारंभिक स्वरूप है । बिंबवाद का विरोध रोमांटिक कविता की वायवीयता एवं कल्पनाशीलता से था । "स्पेक्युलेशनस" नामक

---

1. Image - to resemble (ME < OF Var of Imagene (appar taken as base suffix by folk etym) < L. imàgin, s. of imago. a copy, likness. The Random House Dictionary (1969), p.662

अपने विख्यात निबंध में टी॰ई॰ ह्यूम ने कविता के ठोस और क्लासिक होने की बात कही[1] इतना तो अवश्य हुआ कि बाद की कविता बिंबात्मक होने लगी बिंबाकृत रचना विशेष हुआ करती है । इसलिए सामान्य के स्थान पर विशेष स्थान ग्रहण करने लगा 1909 में बिम्बवादियों का प्रथम घोषणा पत्र प्रकाशित हुआ ।

1913 में प्रकाशित फ्लिन्ट की टिप्पणी जो बिंबवाद शीर्षक की है और उसकी तीन स्थापनायें थी -

1. काव्य में वस्तु का प्रत्यक्ष ग्रहण ।
2. ऐसे शब्दों का सर्वथा त्याग जो काव्य को अर्थवान बनाने में योगदान नहीं देते ।

---

1. Hume Attacked the Romantic notion that man, the individual is an infinite resource of possibilities, and predicted that a renewal of poetry must come in the form of 'dry, hard, classical form'.

Frank Kermode - The Romantic Image, p.

3· लययोजना में यान्त्रिक पद्धति का त्याग और सांगीतिक नियमों का पालन।[1]

बिंबवादी आंदोलन के प्रसिद्ध कवि और सैद्धान्तिक एज़रा पाउंड ने बिंब की सविस्तार चर्चा की है। केदारनाथ सिंह ने इसका सारसंक्षेप इस प्रकार दिया है[2] -

---

1. i. Direct treatment of the 'thing' whether subjective or objective.

   ii. To use absolutely no word that does not contribute to the presentation.

   iii. As regarding rhythm to compose in the sequence of the musical phrase, not in sequence of a metronome.

   Imagism and vorticism - Natan Zach
   Malcolm Bradbury James Mc Farlane
   Modernism, p.228

2· डॉ· केदारनाथ सिंह - आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्बविधान, पृ·11

1· काव्य के रूप अथवा रचना-तन्त्र को सर्वोपरी महत्व देना ।
2· नयी संवेदना के अनुकूल नयी लय-पद्धतियों की खोज ।
3· मुक्त छन्द को मानव की मौलिक स्वातन्त्र्य-चेतना के रूप में स्वीकार करने का आग्रह ।
4· विषय के निर्वाचन में पूर्ण स्वतन्त्रता ।
5· ताज़े और मूर्त बिम्बों का अन्वेषण तथा अमूर्त शब्दों का पूर्ण बहिष्कार ।
6· ऐसे कविताओं का निर्माण करना जो "संक्षिप्त" कठोर और स्पष्ट हो ।
7· काव्यगत केंद्रणशीलता का सिद्धांत ।

---

1. Use no superfluous word, no adjective which does not reveal something.
Go in fear of abstrations. Do not retell in mediocere verse what has already been done in good prose. What the expert is tired of today the public will be tired of to-morrow.
Don't imagine that the art of poetry is any simpler than the art of music.
Be influenced by as many great artists as you can, but have the decency either to acknowledge the debt out right, or to try to concel it.
Don't allow 'influence' to mean merely that you mop up the particular decorative vocabulary to some one or two poets whom you happen to admire use either no ornament or good ornament.

Ezra Pound - A retrospect
Quoted from 20th Century Literary Criticism
A reader Edited by David Lodge, p.60

बिंब वाद के संबंध में रिच्चार्ड अल्टिंगटन ने लिखा कि हम भावात्मक स्थिति की अभिव्यक्ति विषय वस्तु और परिस्थिति को अभि-व्यंजित करके संभव बना डालते हैं । अनावश्यक विशेषण शब्दों का उपयोग नहीं करते । भावुकता से हम दूर रहते हैं । अगर बिंब वादी कविता ठोस और कठोर है तो हम आश्वस्त होते हैं कि हम ने एक बढ़िया काम किया है[1] ।

1914 में अमीलोवल ने बिम्बवाद का नेतृत्व किया । पाउंट ने उसे "अमेजिसम" के नाम से अभिव्यक्त किया है । 1915 में अमीलोवल द्वारा संपादित 'S me Imagist poets' नामक ग्रंथ बिम्बवादक का एक दूसरा घोषणा ग्रंथ है । उसका सारसंक्षेप पाउंट के विचारों से भिन्न तो नहीं है[2] ।

---

1. i. Direct treatment of the 'thing' whether subjective or objective.

   ii. To use absolutely no word that does not contribute to the presentation.

   iii. As regarding rhythm to compose in the sequence of the muscial phrase, not in sequence of a metronome.

   David Lodge (Ed.)20th Century Literary Criticism,p

2. 'Contradictions, real or apparent, and differences are rooted in the very nature of Imagism. As a movement, it contained three distinct phases (1) Hulme's 1909 group of obscure, non-combative poets who for a year or so discussed a new 'dry and hard' poetic in their weekly meetings (2) Pound's much more ambitious and bellinerent school of 1912 and (3) the post-poudian Imagists whom pound dubbed 'Amygists' after Amy Lowell' take over.

   Malcolm Brabury (Ed.)Modernism, p.229

बिम्बवाद की उपलब्धियों और सीमाओं के संबंध में केदारनाथ सिंह ने यों प्रस्तुत किया है - "सैद्धान्तिक दृष्टि से बिम्बवादियों की दो उपलब्धियां मानी जा सकती है । उन्होंने पहली बार काव्य की मूर्तिमत्ता [बिम्ब] पर बल देकर कविता को यथार्थ के जीवित धरातल पर लाने का प्रयास किया । उससे भी महत्वपूर्ण उनकी देन यह थी कि उन्होंने "सामान्य" [रोमांटिक कविता की सौन्दर्य और सत्य सम्बन्धी सार्वभौम अनुभूतियों] के विरुद्ध काव्य के क्षेत्र में पुन: "विशेष" [जीवन और जगत की देशकालबद्ध विशिष्ट अनुभूतियों] के महत्व का प्रतिपादन किया । अपने इन आदर्शों की सिद्धि केलिए उन्होंने चीनी कविता से पर्याप्त प्रेरणा ली और कलात्मक संहति तथा संक्षिप्तता की दृष्टि से जापानी कविता की "हाइकू" शैली को अपना सर्वोच्च आदर्श बनाया है । वे यह मानते थे कि आदिम मानव के सहज भावचित्रों से विकसित होकर आज भाषा पूर्णत: अमूर्त हो गयी है और घिसते-घिसते सारे शब्द स्थूल संकेत बनकर रह गये हैं । चीनी भाषा की वर्णमाला में आदिम चित्रात्मकता आज भी सुरक्षित है । चीनी कविता के बिम्बबहुल या चित्रात्मक होने का यही रहस्य है । यह चित्रात्मकता सौन्दर्य की उपलब्धि केलिए कवियों को पुन: भाषा की उसी सहज आदिम चित्रात्मक अवस्था की ओर लौटना चाहिए । बिम्ब के स्वरूप के सम्बन्ध में बिम्बवादियों की दृष्टि अपेक्षाकृत सीमित थी । वे उसे अनिवार्यत: "दृश्य" मानते थे और उसकी चित्रात्मकता पर अधिक बल देते थे । आज की समीक्षा में बिम्ब एक अधिक सूक्ष्म और जटिल शब्द बन गया । आज बिम्बवादियों का स्थूल चित्रात्मकता का सिद्धान्त आज ग्राह्य नहीं हो सकता । फिर भी, बिम्ब सिद्धान्त के विकास में उनका जो ऐतिहासिक योगदान है, उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता[1] ।"

---

1. केदारनाथ सिंह - आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान, पृ. 12

बिम्ब की परिभाषायें

बिम्ब को एक सरल परिभाषा में बाँधना कठिन कार्य है[1]। कई आलोचकों ने बिम्ब, प्रतीक, रूपक आदि शब्दों को एक ही अर्थ में प्रयुक्त किया है। कभी-कभी बिम्बों का स्वरूप प्रतीक में परिवर्तित होने लगता है[2]। कई विद्वान समालोचकों ने बिंब की परिभाषा भी दी है।

---

1. "However the term 'imagery' is essentially misleading when it is used to refer to figurative language, because it presupposes when its primary appeal is to the eye. This is not the case. The appeal of figurative language may include the visual sense, as the above metaphor certainly shows, but its essential mode is linguistic and as a result its appeal goes much further. In this case an extensive non-visual response involving myth and symbol in terms of the relationship of birds and scare crows is required'.

   Terence Hawkes Metaphor (1972), p.2

2. "Have we in these four terms - Image, Metaphor, symbol, Myth - a single referent ? semantically, the terms overlap, they clearly point to the same area of interest. Perhaps our sequence may be said to represent the convergense of two lines, both important for the theory of poetry."

   Rene Wellek and Austin Warren Theory of Literature (1980), p.180

सी॰टी॰ लिविस ने प्रतीकात्मक बिम्ब शब्द का प्रयोग किया है[1]। मन की बिम्ब निर्माण शक्ति की ओर प्रसिद्ध आलोचक फ्रैंक केरमोड इशारा करते हैं[2]। कवि व समीक्षक मार्कलीष कहते हैं कि बिम्ब और भाव के बीच नितांत संबंध है[3]। रेनेवेल्लक के अनुसार बिम्ब एक साथ मनोविज्ञान व साहित्यचिंतन का विषय है[4]। क्लेंथब्रुक्स के अनुसार बिम्ब प्रतिभा के सारभूत तत्व है[5]। लिविस के अनुसार बिम्ब की सरल परिभाषा यही है कि वह शब्द चित्र है[6]। उन्होंने आगे लिखा है, उपमा रूपक जैसे अलंकार बिंब सृजित कर सकता हैं। इस अर्थ में हर बिम्ब की रूपात्मक क्षमता है,

---

1. C. Day Lewis The Poetic Image (1965), p.18

2. "Image making powers of the mind at the expense of its rational powers and to the substitution of organicist for mechanistic modes of thinking about works of art".
Frank Kermode Romantic Image (1971), p.57

3. "Images in a poem do seem to have some relationship to the emotion a poem contains and an examination of the way images work would thus appear to promise at least a hint of light."
Archibald Mac Leish : Poetry and Experience (1960) - p.52

4. "Imagery is a topic, which belongs both to psychology and to literary study. In psychology the word 'image' means a mental reproduction, a memory of a past sensational or perceptual experience, not necessarily visual. But imagery is not visual only.
Rene Wellek and Austin Warren Theory of Literature, p.187

5. "Poetry deals with intensive manifolds and to deal with the intensive you must use intution and hence images which are the very essence of an intutive language".
William K. Wimsatt, Jr. Cleanth Brooks - Literary Criticism. A Short History, p.622

6. "In its simplest terms, it is a picture made out of wo
C. Day Lewis : The Poetic Image, p.18

चित्रात्मकता बिम्ब की प्राणवत्ता भी है । लेकिन आगे चलकर इसी चित्रात्मक प्रवृत्ति का उल्लंघन इन्हीं आलोचकों द्वारा हुई है । एफ॰आर॰ लीविस ने इस ओर संकेत किया है[1] । एसरापाउंड ने भी बिम्ब को बौद्धिक संकीर्णता का वाहक माना है । वह चित्रात्मक नहीं है[2] ।

बिम्बों का वर्गीकरण

विभिन्न आलोचकों ने बिम्बों का कई प्रकार से वर्गीकरण किया है । मात्र शब्दाश्रित दृष्टि से रॉबिन स्केलेटन ने बिम्ब विवेचन इस प्रकार किया है[3] ।

(क) सरल बिम्ब (सिम्पल इमेज) - वह बिम्ब, जो भावों को इस प्रकार जगावे कि उनका मानस-प्रत्यक्ष हो जाये । जैसे - चमकीला, पीला, नीला, शील, कोमल इत्यादि ।

(ख) भावनातीत बिम्ब (इमेजज आॅव एवस्ट्रैक्शन) - मानस अथवा अन्य ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष से रहित भाव को पैदा करने वाले बिम्ब । जैसे - सत्य, प्रत्यय, वैदुष्य इत्यादि ।

---

1. F.R. Levis
2. An image is that which presents an intellectual and emotional complex in an instant of time, a unification of disparate ideas.
   Literary Essays of Ezra Pound
   Edited by T.S. Eliot, p.4
3. Robin Skelton - The Poetic Pattern (1956),pp.90-91

(ग) आशु (इमिजियेट) बिम्ब - श्रुति, दृष्टि, गन्ध, रस और स्पर्श के भावों को सद्यःसम्प्रेरित करनेवाले बिम्ब । जैसे - कलकल, टलमल, खुरदुरा, मीठा, महमद इत्यादि ।

(घ) विकीर्ण बिम्ब (डिफ्यूज इमेज) - ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष से अनुबद्ध या प्रकारान्तर सम्बन्ध रखनेवाले अथवा किसी एक इन्द्रिय के प्रति भाव-निवेदन नहीं रखनेवाले बिम्ब, अर्थात् अनेक इन्द्रियों के प्रति भाव-निवेदन रखने वाले बिम्ब । जैसे - गोष्ठी, इच्छा, साहस इत्यादि ।

(च) अमूर्त (एब्स्ट्रैक्ट) बिम्ब - (ख. से नितान्त साम्य) भावानयन से निर्मित ऐसे बिम्ब जो मानवीकरण अथवा अन्य ऐसे ही उपायों से वर्ण्य का मानस प्रत्यक्ष पैदा करते हों । जैसे - दया, विभु, विभा, इत्यादि ।

(छ:) संयुक्त (कम्पाउण्ड) बिम्ब - दो या दो से अधिक शब्दों के संयोग से बनने वाले ऐसे बिम्ब, जो किसी एक वस्तु अथवा भाव का मानस प्रत्यक्ष कराते हों । जैसे - लाल क्रान्ति ।

(ज) संकुल (कम्प्लेक्स) बिम्ब - दो या दो से अधिक शब्दों का ऐसा संयोग, जो एक से अधिक बिम्बों का सृजन करता है । जैसे - सुनहले "डैफोडिल्स", सशैवाल रक्तकमल ।

(झ) संयुक्त भाववाची (कम्पाउण्ड एब्स्ट्रैक्ट) बिम्ब - शब्दों का ऐसा संयोग, जिससे कोई भाववाची बिम्ब (मानस प्रत्यक्ष से रहित) पैदा होता हो । जैसे - भद्र सत्य, शालीन करुणा इत्यादि ।

(ट) संकुल अमूर्त (कम्प्लेक्स एब्स्ट्रैक्ट) बिम्ब-शब्दों का ऐसा संयोग, जिससे एकाधिक भाववाची बिम्ब (मानस प्रत्यक्ष से रहित) पैदा होते हों । जैसे - विश्वस्त दानशीलता, ईमानदार प्रेम ।

(ठ) अमूर्त संयुक्त और अमूर्त संकुल बिम्ब (एब्स्ट्रैक्ट कम्बाइण्ड एण्ड एब्स्ट्रैक्ट काम्प्लेक्स इमेज) - वह संकुल या संयुक्त बिम्ब, जिसमें भावानय बिम्ब धर्मिता से अधिक प्रधान हो और बिम्बधर्मिता उस भावानयन का केवल गुण बोध करती हो । जैसे - स्वर्णिम सटीकता, विकम्पित विगलित करता, इत्यादि (राबिन स्केल्टन के विचारों का हिन्दी अनुवाद डॉ॰कुमार विमल का है[1] ।

बिम्ब ऐन्द्रिय प्रभावों की प्रतिकृति है[2] । विराट ने बिम्बों का भिन्न रूप से वर्गीकरण किया - स्पार्शिक, श्रावण, रासनिक, घ्राणिक, वेगोद्भेदक आदि[3]। दो विभिन्न प्रकार के बिम्ब एक दूसरे से मिलकर समन्वित प्रतीत भी दे सकते हैं[4] ।

---

1 डॉ॰ कुमार विमल - सौन्दर्य शास्त्र के तत्व

2. "Imagery' is used to signify all the objects and qualities of sense perception referred to in a poem or other work of literature'.
M.H. Abraham A Glossary of Literary Terms,p.76

3. "The term 'image' should not be taken to imply a visual reproduction of the object referred. Also imagery includes auditory, tactile (touch) Olfactory (smell) gustatory (taste) or kinesthetic (sensation of movement; as well as visual qualities.
Ibid,p.76

4. M.H. Abrahams A Glossary of Literary Terms, p.77

रेने वेल्लक ने विशेष रूप से दो प्रकार के वर्गीकरण प्रस्तुत किये हैं - "तेरमल इमेज व प्रसर इमेज । उसके अलावा स्थिर और गात्यात्मक बिंबों के रूप मे भी दो वर्गों पर बल दिया है । अन्य प्रकार के काफी बिम्ब जो प्राप्त होती है, वे सब रचनाकारों के अवचेतन मन की अवस्था पर आधारित है । उसके कई कारण भी होते हैं । उदाहरण के लिए जो बिम्ब रोगों से संबन्धित है, उनका कवि के विशिष्ट मनोभावों से ही संबंध जोडा जा सकता है ।[1]

---

1. "There is the important distinction between static imagery and kinetic (or dynamic). The use of colour imagery may or may not be traditionally or privately symbolic. Synaesthetic imagery (whether the result of the poet's abnormal psychological constitution or literary convention) translates from one sense into another eg. Sound into colour. Finally, there is the distinction, usefulfor the reader of poetry, between 'tied' and 'free' imagery the former, auditory and muscular imagery necessarily aroused even though one reads to oneself and approximately the same for all adequate readers, the visual and else, varying much from person to person or type to type.

Rene Wellek and Austin Warren Theory of Literature, p.187

बिम्ब और मनोविज्ञान

बिम्ब के सौंदर्य पक्ष पर विचार करने के पहले बिम्ब और मनोविज्ञान के आपसी संबंध पर विचार करना समीचन लगता है । बिम्ब की प्रतीकात्मक एव बिम्बात्मक अवस्था के परे बिम्ब की अवधारणात्मक महत्वा पर विचार करने केलिए मनोविज्ञान के साथ उसके आनुषंगिक संबन्ध की जाँच आवश्यक है । कविता की रचना के पहले की अवस्था विशिष्ट हुआ करती है, लेकिन वह परिभाषेय नहीं है । यही अस्पष्ट अवस्था बाद मे बिम्ब विधान की विविधोन्मुखी सकीर्णताओं केलिए मंच तैयार करती है । इस अवस्था के संबन्ध में सामान्य ढंग से पिथियन ने प्रकाश डाला है । कविता की संप्रेषणगत समस्या से शुरू करके कविता के अनुभवगत तथ्य तक उन्होंने संकेत किया है[1] । कविता का अनुभव जगत अतिविस्तृत एवं अतिगहन है । इसी संदर्भ मे मनोविज्ञान के कुछ विशिष्ट सिद्धान्तों विशेष रूप से सी·जी· युंग की मान्यताओं का विश्लेषण आवश्यक है । युंग की मूल मान्यता सामूहिक अवचेतन को लेकर है । इसी अवचेतनगः स्थर पर उन्होंने जातिगत मनस्तत्वों एवं आद्यबिम्बों का उल्लेख किया । यद्यपि आगे चलकर मिथक एवं आद्यबिंब विशिष्ट अध्ययन के क्षेत्र बन गये, फिर भी बिम्ब की मनावैज्ञानिक भूमिका की यह भी एक पीठिका है ।

---

1. A poet's aim is to communicate, and what he seeks to communicates is the insight that he has into people and the world. Frequently his feelings are so sublte, so special, so new, that he willhhave difficulty in achieving the communication. Often he himself will n know exactly what it is he is trying to say until he written the poem for like all of us, he finds that id of any complexity become ideas only when they are put into words. Moreover, he is concerned not just with exposition, as-say-the journalist is, he-say, wants make his reader, share the expense.

Phythian Considering poetry - an approach to criti (1970), p.14

आधुनिक काव्य में इन दोनों के पारस्परिक संबन्ध के दो रूप प्रकट हुए है । प्रथम वर्ग के अंतरगत मिथकों और आद्यबिम्बों की ओर प्रसारित होते हुए बिम्ब मिलते है । दूसरे वर्ग मे मनोवैज्ञानिक बिम्ब मिलते हैं, जिसके अंतरगत स्मृतिबिम्बों एवं स्वप्न बिम्बों का आकलन होता है । इस प्रकार के चित्रात्मक प्रवृत्ति के होते नहीं है । क्योंकि वह अवस्थाजन्य है ।

आधुनिक कविता में इस प्रकार की बिम्बात्मक अवस्था का कालगत अंतराल विस्तृत होता है । कभी कभी दो अलग अलग कालखण्ड उसमें आ मिलते है । इस कारण से ऐसे बिम्बों के सौंदर्य पक्ष प्राय: असामान्य होता है । अत: आधुनिक चिन्तन मे बिम्ब का प्रारूप शिल्प-परक नहीं है, सौंदर्य परक है । इस प्रसंग मे जार्ज संतायना का निरीक्षण दृष्टव्य है[1] ।

अब आलोचकों ने भी बिम्ब को कविता के भावजगत मे जोडा है[2] । बिंबविधान के विकास को बदली हुई संवेदना के समकक्ष रखकर देखा जा सकता है[3] । इसलिए उसका संवेदनात्मक विकास भी होता रहता है

---

1. Now, it is the essential privilege of beauty, to so synthesize and bring to a focus the various impulses of the self, so to suspend them to a single image, that a great peace falls upon that perturbed Kingdom.

   George Santayana : The Liberation of the self. Quoted from Literary Criticism written by Wimsatt and Cleanth Brooks, p.618

2. 'Images in a poem do seem to have some relationship to the emotion a poem contains, and an examination of the way, images work would thus appear to promise at least a hint of light.

   Archbald Mac Leish Poetry and Experience (1960),p.5?

3. Edmud Wilson Axel's Castle, pp.5-6

बिम्ब चाहे प्रत्येक युग की कविता का स्थायी धर्म हो, परन्तु उसका "पाटेन" युग दृष्टि और कवि दृष्टि के अनुसार बदलता है ।

आधुनिक काव्य चिन्तन मे बिम्ब के सौंदर्य पक्ष को इस प्रकार निर्णीय किये जा सकते है - सौंदर्य अलंकरण का माध्यम नहीं । वह रचनाकार के दार्शनिक अंदाज़ का संवाहक है । बिम्ब रचना की वेला में वह अपने स्व: और बाह्य जगत को पहचानने का कार्य करता है ।

बिम्ब और सौंदर्य

बिम्बवादी आंदोलन के दौरान बिम्ब की गंभीर व्याख्यायें हुई है । इसलिए आधुनिक कविता में बिम्ब पर विचार करते समय बिम्बवादियों से बढ़कर आधुनिक कलामीमांसकों एवं सौंदर्य शास्त्रियो का निरीक्षण, अधिक वांछनीय है । बिम्बवादियों का योगदान इतना तो अवश्य है कि उन्होंने बिम्ब को एक शाश्वत काव्यसंकेत माना, परन्तु आधुनिक आलोचना शास्त्र एवं सौंदर्य शास्त्र मे बिम्ब की भूमिका काफी कुछ बदली है । इसका प्रमुख कारण बिम्ब को आधुनिक चिंतकों ने कविता के भीतरी संसार से जोडा है ।

कला सृजन के क्षणों में कलाकार की अमूर्त सहजानुभूतियों को बिम्बों के द्वारा ही आकार, इन्द्रियग्राह्यता अथवा विधान (Form) मिल पाता है । अत: बिम्ब-विधान ही बहुत अंशो में कलाकार की सहजानुभूति की अभिव्यक्ति की सफलता को प्रमाणित करता है और कलाकार की सौंदर्य चेतना को भी द्योतित करता है । वस्तुत: बिम्ब विधान कला का वह मूर्त पक्ष है, जिससे कलाकार की भावातयन से

संश्लिष्ट सौन्दर्यानुभूति को वस्तु-सत्य का संस्पर्श या तद्गत संपृक्त आधार के साथ सादृश्याभास मिल जाता है । फलस्वरूप, कुछ विचारक और कलाकार कला-सृजन में बिम्बों को अधिक महत्व देते है ।

किसी कलाकृति मे जो स्वभावत: स्मृति में संरक्षणीय है, इंद्रियग्राम्य है, मूर्त और विशिष्ट है, वही सहृदयत-चित्र के लिए बिम्ब है । अत: उत्कृष्ण कलाकृति योजित बिम्बों के द्वारा अपनी क्षेत्र मे आई हुई वस्तुओं को, गेटे के कथानुसार "कंक्रीट यूनिवर्सल" बना देती है । बिम्ब-विधान मे बिम्बों के सृजन के अलावा बिम्बों के पारस्परिक संग्रथन-सामर्थ्य को सौंदर्यशास्त्रीय कला विवेचन की दृष्टि से बहुत महत्त्व दिया जाता है । वस्तुत: श्रेष्ठ कलाकार अपनी रचना को क्रमहीन बिम्बों का "अलबम" नहीं बनाता है, बल्कि यह बिम्बों को एक सारगर्भ और अर्थवती श्रृंखला प्रदान करता है[1] ।

नई कविता और बिम्बधर्मिता

बिम्ब-दृष्टि की उपलब्धियों और उसकी सीमाओं के बारे मे विचार किया जा चुका है । उस सन्दर्भ में यह भी सूचित किया जा चुका है कि बिम्ब दृष्टि की अतिरंचित अवस्था अवांछनीय है । नामवर सिंह आधुनिक कविता मे बिम्बग्राही दृष्टि के टूटने की अनिवार्यता पर विचार करते हैं । उनके अनुसार कविता में यह स्थिति एक ऐतिहासिक अनिवार्यता के रूप मे उपस्थित हुई है । वे लिखते है - "आज की कविता अपनी प्रकृति में अब-तक की बिम्ब-प्रधान कविता से सर्वथा भिन्न है अथवा

---

1. C. Day Lewis The Poetic Image, p.25

उसका झुकाव बिम्ब-भिन्न है । कवियों का सम्भवत: कुछ ऐसा विश्वास हो चला है कि बिम्ब-विधान सीधे सत्य-कथन केलिए बाधक है । इधर की अधिकांश बिम्बवादी कविताओं को देखते हुए यह आशंका एकदम असंगत नहीं लगती । इसे विरोधाभास ही कहना चाहिए कि जब से कविता में बिम्बों की प्रवृत्ति बढी, सामाजिक जीवन के सजीव चित्र दुर्लभ हो चले । सुन्दर बिम्बों के चयन की ओर कवियों की ऐसी वृत्ति हुई कि प्रस्तुत गौण हो गया और अप्रस्तुत प्रधान । इस तरह कवि की दृष्टी ही संकुचित नहीं हुई, कविता का दायरा भी सीमित हो गया - पहले जीवन से खिंचकर प्रकृति की ओर, और फिर प्रकृति में भी विशेष प्रकार के रमीणीय की ओर; यहाँ तक कि वातावरण का संकेत देनेवाले बिम्ब भी सिमटकर एक कमरे की वस्तुओं के रूप में रह गए और बाहरी दुनिया एक खिड़की की तकदीर के सहारे बैठ गई । कविता को चित्र बनाने का नतीजा क्या होता है,यह बात पिछले पन्द्रह वर्षों के अनुभव से स्पष्ट हो गई । यही हाल प्रतीक-संकेत पद्धति का हुआ । साकेतिकता भीरुता का बाना ही नहीं बनी, अज्ञान का कवच भी बन गयी । जहाँ कुछ स्पष्ट ~~स्पष्ट~~ न हो, वहाँ संकेत अंधेरे में जैसे हर किसी को तीर चलाने का मौका मिल गया और हर कवि को परम ज्ञानी की तरह पहेली बुझाने की छूट मिल गयी । देखते-देखते कविता भी उसी दुनिया का आइना बन गयी जिसमें "सब दूसरों से छिपाते है । यदि इतने पर भी इस कविता के विरुद्ध प्रतिक्रिया न होती तो विनाश निश्चित था - विनाश सामाजिकता और मानवीयता का नहीं, बुद्धि, हृदय और सृजनशीलता का भी"।[1]

लेकिन यहाँ प्रश्न यह है कि बिम्ब धर्मिता ने काव्य के सौंदर्य पक्ष को बढा दिया है या नहीं । बाद में बिम्बग्राहिकता के टूटने की बात भले ही

1· नामवर सिंह - कविता के नए प्रतिमान, पृ·132-133

ऐतिहासिक अनिवार्यता रही हो, फिर भी बिम्ब दृष्टि ने कविता के, विशेषकर नई कविता के सौंदर्य पक्ष को गहन और गंभीर बना दिया है । एक विशेष सीमा के पार हो जाने पर बिम्बवादी आन्दोलन भी तो समाप्त हो गया था । अतः यही बताया जा सकता है बिम्ब-दृष्टि कविता केलिए कहाँ तक अनिवार्य है, या बिम्ब दृष्टि का अतिरिक्त मोह कविता केलिए कहाँ तक हानिकारक है - जैसी बातों से बढ़कर मुख्य यह है कि बिम्ब को रूप और वस्तु की पारस्परिक अन्विति के रूप देखे जाने पर सौन्दर्यबोधात्मक स्थिति में क्या अन्तर पड़ता है[1] ।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि बिम्ब-दृष्टि ने कविता को सौंदर्य प्रदान किया है । हिन्दी की नई कविता के दौर की रचनाओं में बिम्बग्राहिता का एक समुचित परिदृश्य है ।

ऊपर बिम्बों के कई प्रकार के वर्गीकरण सूचित है । उन वर्गीकरणों में बताए गए बिम्बों के अनेकानेक उपशीर्षकों के अन्तर्गत ही बिम्बवादी कविताओं को रख सकेंगे । लेकिन वर्गीकरण के आधार पर कविताओं पर सौन्दर्य शास्त्रीय समीक्षा नहीं की गई है । बिम्ब की उपस्थिति को सामान्य ढंग से परखा गया है और आनुषंगिक ढंग से बिम्बों के विविध रूपों पर भी प्रकाश डाला गया है ।

---

1. "The reader like the writer finds the meaning through a process of Exploration. Inference and guess work What else is interpretation ? How apart from inference and skilled guess work can be supposed ever to understand a writer's or speaker's thought.
I.A. Richards - Philosophy of Rheteric, p.53

बिम्ब की व्यापक स्थिति

बिम्ब की एक व्यापक स्थिति नई कविता में बनी रही हैं । उदाहरणार्थ कविताओं में बार-बार दुहराये जानेवाले कुछ ऐसे बिम्ब जिनका कवियों की पूरी रचनात्मकता के साथ सबन्ध है । मुक्ति बोध की कविता को उदाहरण के तौर पर लिए जाने पर हमे दो प्रकार के बिम्ब प्राय: प्राप्त होते हैं एक है "अंधेरा" दूसरा है "तहखाना" पारिभाषिक अर्थ मे ये दोनो बिम्ब नहीं है । लेकिन इन दोनो से मुक्तिबोध की कविता मे जो बिम्ब ग्राहिता का वातावरण है, वह मुख्य है ।

"ज़िन्दगी के
कमरो मे अंधेरे
लगता है चक्कर
कोई एक लगातार;
आवाज़ पैरों की देती है सुनाई
बार-बार बार - बार
वह नहीं दीखता नहीं ही दीखता,
किन्तु वह रहा घूम
तिलस्मी खोह में गिरफ्तार कोई एक,
भीतर-पार आती हुई पास से,
गहन रहस्यमय अन्धकार ध्वनि-सा
अस्तित्व जनाता
अनिवार कोई एक,
और मेरे हृदय की धक्-धक्
पूछती है - वह कौन

सुनाई जो देता, पर नहीं देता दिखाई !
इतने में अकस्मात् गिरते हैं भीतर से
फूले हुए पलिस्तर,
खिरती है चूने-भरी रेत
खिसकती है पपड़ियाँ इस तरह-
खुद-ब-खुद
कोई बड़ा चेहरा बन जाता है,
स्वयमपि
मुख बन जाता है दिवाल पर,
नुकीली नाक और
भव्य ललाट है,
दृढ़ हनु,
कोई अनजानी अन-पहचानी आकृति ।
कौन वह दिखाई जो देता, पर
नहीं जाना जाता है !!
कौन मनु ?
बाहर शहर के, पहाड़ी के उस पार, तालाब-
अँधेरा सब ओर,
निस्तब्ध जल,
पर, भीतर से उभरती है सहसा
सलिल के तम-श्याम शीशे में कोई श्वेत आकृति
कुहरीला कोई बड़ा चेहरा फैल जाता है
और मुसकाता है
पहचान बताता है,
किन्तु, मैं हतप्रभ
नहीं वह समझ में आता[1] ।

1· मुक्तिबोध - चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ·228

अंधेरे का बिंबग्रहण उनकी एक अन्य चर्चित कविता "चाँद का मुँह टेढ़ा है" में भी हुआ है जो इस प्रकार है -

"नगर के बीचों-बीच
आधी रात-अंधेरे की काली स्याह,
शिलाओं से बनी हुई
भीतों और अहातों के, काँच-टुकड़े जमे हुए
ऊँचे-ऊँचे कन्धों पर
चाँदनी की फैली हुई सँवलायी झालरें ।
कारखाना-अहाते के उस पार
धूम्र मुख चिमनियों के ऊँचे-ऊँचे
उद्गार-चिह्नाकार-मीनार,
मीनारों के बीचों-बीच
चाँद का है टेढ़ा मुँह !!
भयानक स्याह सन तिरपन का चाँद वह !!
गगन में करफ्यू है
धरती पर चुपचाप जहरीली छि: थू:है !!
पीपल के खाली पड़े घोंसलों में पक्षियों के,
पैठे है खाली हुए कारतूस ।
गंजे-सिर चाँद की सँवलायी किरनों के जासूस
साम-सूम नगर में धीरे-धीरे घूम-धाम
नगर के कोनों के तिकोनों में छिपे है !!
चाँद की कनखियों की कोणगामी किरनें
पीली-पीली रोशनी की बिछाती है
अंधेरे में पट्टियाँ ।

देखती है नगर की ज़िन्दगी का टूटा-फूटा
उदास प्रसार वह[1] ।

अंधेरा काव्य गत वातावरण को भयावह और रहस्यमय बनाने के साथ साथ मूर्त भी बनाता है[2] । तलघरों तहखाना और गुफाओं से संबन्धित बिम्ब भी उनकी कविताओं मे प्राप्त होते हैं । तहखानों मे बिम्बीकृत करते समय वे अकसर जासूसी उपन्यासो की रहस्यमय शैली का उपयोग भी करते है, जासूसी उपन्यासों की भांति एक के बाद दूसरी फिर तीसरी गुफाओं में वे उतार दते हैं जहाँ एक रोमांचकारी दृश्य देखने को मिलता है[3] ।

इतनी मे अंधेरी दूरियों मे से
उभरता एक
कोई श्याम, धुंधला हाथ,
सहसा कनपटी पर ज़ोर का आघात ।
आँखों सामने विस्फोट
तारा एक वह टूटा,
दमकती लाल-नीली बैंगनी
पीली व नारंगी
अनगिनत चिनगारियाँ बिखरा
सितारा दूर वह फूटा ।
कि कन्धो से अचानक सिर
उडा गायब हुआ[4] ।

1· मुक्तिबोध - चाँद का मुँह टेढा है, पृ·23
2· नामवर सिंह - कविता के नए प्रतिमान, पृ·238
3· देवेन्द्र इस्सर - मुक्तिबोध के काव्य बिम्ब लहर - नवंबर-67 अंक
4· मुक्तिबोध - चाँद का मुँह टेढा है, पृ·150

मुक्तिबोध के संबन्ध मे प्रभाकर माचवे का कथन ठीक लगता है "जो कभी जेल नहीं गया, उसके लिए जेल एक रहस्यागार है, उसका बेहद रोमांटिक आकर्षण और वैसा ही भय भी उसे होता है । कवि मुक्तिबोध में वह बहुत गहरे पैठा है"[1] । मुक्तिबोध के काव्य में सभी प्रकार के बिम्बों को देखा जा सकता है । दृश्य-बिम्ब यद्यपि अधिक है, लेकिन अन्य सभी ऐन्द्रिक बिम्ब जीवन के प्रत्येक प्राकृतिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, औद्योगिक एवं वैज्ञानिक क्षेत्र से लिए गये बिम्ब, मानव एवं आदिम वन्य-जीवन संबन्धी, संक्षिप्त एवं विस्तृत स्थिर एवं गतिशील बिम्बों की मालिका दृष्टिगत होती है[2] ।

मुक्तिबोध की तुलना में अज्ञेय ने अपनी कविताओं में अधिकाधिक बिम्बों का प्रयोग किया है । उनकी कुछ लघु कवितायें बिंबवादी प्रवृत्ति के ज्वलंत उदाहरण है । जैसे उपरोक्त सूचित किया गया है उसी प्रकार विश्लेषण करते समय अज्ञेय की कविताओं में प्रकृति से संबन्धित अनेक दृश्य बिम्ब प्राप्त होती है । उनकी प्रारंभिक कविताओं से लेकर अंतिम कविताओं तक यह प्रवृत्ति बराबर बनी रही है । उनके काव्य संग्रहों के नामकरण ही इसकेलिए प्रमाण है - "हरी घास पर क्षण भरे", "इन्द्रधनु रौंदे हुए", "सागरमुद्रा", "महावृक्ष के नीचे", "नदी की बाँग पर छाया" ।

. प्राकृतिक बिम्बों की श्रृंखला ही अज्ञेय की कविताओं में उपलब्ध है । इत्यलम की "सावन मेघ" नामक कविता की निम्न सूचित पंक्तियाँ ऐंद्र बिंब केलिए उदाहरण है ।

---

1. प्रभाकर माचवे - मुक्ति बोध की कविता बिम्ब योजना: कुछ परिचित चित्र, राष्ट्रवाणी, जन-फर-1965, पृ-327
2. जनकशर्मा - गजानन माधव मुक्तिबोध व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ-356

"घिर गया नभ, उमड आये मेघ काले,
भूमि के कम्पित उरोजों पर झुका-सा
विशद, श्वासाहत, चिरातुर
छा गया इन्द्र का नील वक्ष -
वज्र-सा, यदि तड़ित से झुलसा हुआ-सा"[1] ।

"शरद" नामक उनकी लोकलययुक्त कविता में श्रव्य, स्पर्श्य, दृश्य-बिंबों की समन्वय हुआ है ।

"ढोलकों से उछाह और उमंग की गमक आयी ।
बादलों के चुम्बनों से खिल अयानी हरियाली
शरद की धूप में नहा-निखर कर हो गयी है मतवाली"[2]

श्रव्य बिंब के लिए एक अनूठा उदाहरण है "पावस - प्रात, शिलङ्" नामक कविता -

"भोर बेला । सिंची छत से ओस की टिप-टिप ।
पहाडी काक
की विजन को पकडती-सी क्लान्त बेसुर डाक-
"हाक् ! हाक् ! हाक् !"
मत संजो यह स्निग्ध-सपनों का अलस सोना-
रहेगी बस एक मुट्ठी खाक !
"थाक् ! थाक् ! थाक् !"[3] "

1· अज्ञेय - पूर्व (1965), पृ· 132
2· वही, पृ·222
3· वही, पृ·221

प्राकृतिक चित्रों को उपस्थित करके गतिशील बिम्बों को बहुत सी लघु कविताओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है ।

"मेरे घोड़े की टाप
चौखटा जड़ती जाती है
आगे के नदी-व्योम, घाटी-पर्वत के आस-पास
मैं एक चित्र में
लिखा गया-सा आगे बढ़ता जाता हूँ ।"[1]

स्थिर एवं गत्यात्मक बिंबों की अन्विति "दूर्वांचल" नामक कविता में देखी जा सकती है ।

पार्श्व गिरि का नम्र, चीड़ों में
डगर चढ़ती उमंगों-सी ।
बिछी पैरों में नदी, ज्यों दर्द की रेखा
विहग-शिशु मौन नीड़ों में ।
मैं ने आँख भर देखा ।
दिया मन को दिलासा-पुन: आऊँगा
भले ही बरस-दिन-अनगिनत युगों के बाद ।
क्षितिज ने पलक-सी खोली
तमक कर दामिनी बोली
"अरे यायावर, रहेगा याद ?"[2]

1· अज्ञेय - सदानीरा (अज्ञेय की संपूर्ण कविताएँ - 2) 1986, पृ·27-28
2· वही (भाग - 1), पृ·211

प्रस्तुत कविता में "उगर चढ़ती उमंगो सी" के साथ "बिछी पैरों में नदी" "ज्यों दर्द की रेखा" को जोड़कर स्थिरता और गतिशीलता का बिंबीकरण किया गया है । घ्राण एवं ऐन्द्रिय बिंबों का समन्वय "वहाँ रात नामक" कविता में हुआ है ।

"पत्थरों के उन कँगूरों पर
अजानीगगन्धा सी
अब छा गयी होगी
उपेक्षित रात ।"[1]

अज्ञेय की बहु चर्चित कविता "असाध्य वीणा" दृश्य बिंबों का विराट रूप प्रस्तुत करती है ।

"उसके कानों में हिम-शिखर रहस्य कहा करते थे अपने,
कन्धों पर बादल सोते थे,
उसकी करि-शुण्डों सी डालें
हिम-वर्षा से पूरे वन यूथों का कर लेती थी परित्राण,
कोटर में भालू बसते थे,
केहरि उसके वल्कल से कन्धे खुजलाते आते थे ।
और सुना है - जड़ उसकी जा पहुँची थी पाताल-लोक,
उसकी गन्ध-प्रवण शीतलता से फण टिका नाग वासुकि सोता था[2]

---

1. अज्ञेय,- बावरा अहेरी (1954), पृ.53
2. अज्ञेय - आँगन के पार द्वार (प्रथम संस्करण 1961), पृ.76

इसी कविता में विशेष शब्द विन्यास के माध्यम से ध्वनि बिंबों की माला ही अज्ञेय ने पिरोयी है ।

"बदली-कौंध-पत्तियों पर वर्षा-बूंदों की पट-पट
घनी रात में महुए का चुपचाप टपकना ।
चौंके खग-शावक की चिहुंक ।
शिलाओं को दुलराते वन-झरनों के
द्रुत लहरीले जल का कल-निनाद
कुहरे में छनकर आती
पर्वती गाँव के उत्सव-ढोलक की थाप ।
गड़रिये की अनमनी बांसुरी
कठफोड़े का ठेका । फुलसुंघनी की आतुर फुरकन ।
ओस-बूंद की ढरकन इतनी कोमल, तरल के झरते-झरते मानो
हरसिंगार का फूल बन गयी
भरे शरद के ताल, लहरियों की सरसर ध्वनि
कूंजों का क्रेंकार । काँद लम्बी टिट्टिटम की ।
पक्षियुक्त सायक सी हंस-बलाका ।
चीड़-वनों में गन्ध-अन्ध उन्मद पतंग की जहाँ-तहाँ टकराहट
जल-प्रपात का प्लुत एकस्वर
झिल्ली-दादुर, कोकिल-चातक की झंकार-पुकारों की यति मे
स्मृति की सायं - सायं ।
"हाँ मुझे स्मरण है
दूर पहाड़ों से काले मेघों की बाढ़
हाथियों का मानों चिंघाड़ रहा हो यूथ
घरघराहट चढ़ती बहिया की
रेतीले कगार का गिरना छप-छड़ाप ।

झंझा की फुफकार, तप्त,
पेड़ों का अररा कर टूट-टूट कर गिरना ।
ओले की करीं चपत ।
जमे पाले से तनी कटारी-सी सूखी घासों की टूटन ।
ऐंठी मिट्ठी का स्निग्ध घाम में धीरे-धीरे रिसना ।
हिम तुषार के फाहे धरती के घावों को सहलाते चुपचाप ।
घाटियों में भरती
गिरती चट्टानों की गूंज-
काँपती मन्द्र गूंज-अनगूंज-साँस खोयी सी, धीरे-धीरे नीरव
मुझे स्मरण है
हरी तलहटी में, छोटे पेड़ों की ओट, ताल पर
बंधे समय-वन-पशुओं की नानाविध आतुर तृप्त पुकारें
गर्जन, घुर्घुर, चीख, भूंक, हुक्का, चिचियाहट ।
कमल-कुमुद पत्रों पर चोर-पैर द्रुत धावित
जल-पंछी की चाप ।
थाप-दादुर की चकित छलांगों की ।
पंथी के घोड़े की टाप अधीर ।
अचंचल धीर थाप भैंसों के भारी खुर की ।
"मुझे स्मरण है
उझक क्षितिज से
किरण-भोर की पहली
जब तकती है ओस बूँद को -
उस क्षण की सहसा चौंकी-सी सिहरन ।
और दुपहरी में जब
घास-फूल अनदेखे खिल जाते हैं

मोमाछियाँ असंख्य झूमती करती है गुंजार -
उस लम्बे बिल में क्षण का तन्द्रालस ठहराव ।
और साँझ को
जब तारों की तरल कंपकंपी
स्पर्शहीन झरती है -
मानों नभ में तरल-नयन ठिठकी
नि:संख्य सवत्सा युवती माताओं के आशीर्वाद-
उस सन्धि-निमिष की पुलकन लीयमान ।[1]"

प्रस्तुत कविता में "सब कुछ की प्रतिकर सत्ता"[2] स्थापित करने की बात जो बतायी गयी है वह प्रकृति के भास्वर दृश्य चित्रों एवं उसकी अंतरंगता से प्राप्त ध्वनिबिंबों के परिपाक से ही हुआ है । सृजन क्षण की पूरी व्यापकता असाध्य वीणा के बिम्बों से छनकर आती है । बिम्बों के अनुकूल भाषा का भी सृजन अज्ञेय ने किया है । इसी कारण वे शब्दों के निकट, जाकर, उनमें स्पंदित जीवन धर्म को आत्मसात कर लेते हैं । प्रस्तुत कविता में, किरीठी तरु के साथ तादात्म्य का काव्य कौशल इसी कारण जीवंत और मार्मिक बन पड़ा है कि भाषा के मानवीय चरित्र से, कवि की प्रगाढ़ आत्मीयता है । यह आत्मीयता शब्दकोश और शास्त्रीय नहीं है, बल्कि कविस्वभाव के अनुरूप शालीन और सुंदर है । कवि शब्दों को चीन्हता हुआ उन्हें मनुष्येतर प्रकृति के जीवन में तो खींचकर ले जाता ही है, साथ-साथ यह भी याद रखता है कि शब्द उसे आदमीतक ले जाते है, आदमी उसकेलिए जीवन के सौंदर्य का शारीरिक रूप है । कई बार इस आदमी में हम "शिलाओं को दुलराते द्रुत लहरीले जल का कल निनाद"

1· अज्ञेय - आँगन के पार द्वार §1961§, पृ·70-73

2· रामस्वरूप चतुर्वेदी - अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या§1972§,पृ·

सुनते है और कई बार यह पोथीवाले पंडित का चेहरा होता है । अब यह हमारे ऊपर है कि इससे हम अपनी आत्मीयता का रिश्ता कायम करें।[1]

छोटी कविताओं में बिम्बवादी प्रवृत्ति अधिक प्रकट होती है शमशेर बहादुर सिंह में यह प्रवृत्ति पहले से ही रही है[2]। शमशेर एक सजग कवि है और जटिलता के भी कवि है । चित्रकला का सन्निवेश भी उन्होने अपने काव्य में किया है । शमशेर ने अपनी रचनाओं में बिम्बों, उपमाओं और संगीत ध्वनियों द्वारा वैचित्र्यपूर्ण प्रयोग किये हैं जो उनकी कला सजगता को प्रमाणित करते हैं[3]। सरलियलिस्ट चित्रकार की भाँति उन्होंने शाम का चित्रण पत्ता और आँसू के बेत को उपस्थित करके प्रस्तुत किया है ।

एक पीली शाम
पतझर का ज़रा अटका हुआ पत्ता
शान्त
मेरी भावनाओं में तुम्हारा मुखकमल
कृश म्लान हारा-सा
(कि मैं हूँ वह
मौन दर्पण में तुम्हारे कहीं ?)
वासना डूबी
शिथिल पल में
स्नेह काजल में
लिये अद्‌भुत रूप-कोमलता
अब गिरा अब गिरा वह अटका हुआ आँसू

---

1. नरेन्द्रमोहन (सं.) - लंबी कविताओं का रचना विधान (1977),पृ.90
2. नामवर सिंह - कविता के नए प्रतिमान, पृ.128
3. जगदीशगुप्त (संप.) कवितांतर - 19

मान्ध तारक-सा
।
अतल में । "

उनकी "मींग और नाखून" तथा "शिला का खूनी पीती थी" जैसी कविताओं में विश्व युद्ध की विभीषिका से संबन्धित सरलियलिस्टिक बिंब उपस्थित हुए है । "सींग और नाखून" के पथराये हुए बिम्ब रुग्णता और मृत्युबोध के सूचक है । सींग, नाखून, मुर्दा, हाथ, कमर का घाव और जड़ों का कड़ा जाल । सिर्फ "घास-काई की नमी" में एक हल्का-सा इशारा जान पड़ता है उम्मीद का, ~~घास काई की नमी" में एक हल्का-सा इशारा जान पड़ता है उम्मीद का~~, घास काई के कटने पर फिर से पानी के नमूदार होनी की उम्मीद । मृत्युबोध और उम्मीद का यह अतार्किक साहचर्य इस कविता के सुर्रियलिस्ट होने का सबूत है । कन्धों पर सींग और नाखून का उगना भी सुरियलिस्ट कृतियों में ही संभव है । पाल देल्वो के चित्र "डान" में असम्बद्ध बिम्बों का जमघट है । इसमें चार स्त्रियाँ दिखाई गई है जिनके वक्ष अनावृत है । उनके शरीर में निचले भाग की जगह वृक्ष के तने चित्रित किए गये है जिनके बीच में एक स्तन को बिम्बित करता हुआ आईना रखा गया है । ऐसी ही स्वच्छ कल्पना अर्नस्ट, मेसों और आर्प के चित्रों में भी क्रियाशील है[2] । विजयदेवनारायण साही ने शमशेर के विविध बिम्बों में एक ही अर्थ के अनेक आयामों के संबन्ध में सूचित किया है । इसके लिए उन्होने कई उदाहरण भी दिये हैं । निषेधों की भावभूमि पर सृजित अनेक बिम्ब उन्होने उद्धृत किये है । "घिरे हुए असीम" के निषेधों की यह भावभूमि बारंबार उन बिम्बों को जन्म देती है, जो अपनी विविधता के बावजूद एक ही है

1· जगदीश गुप्त (संपा) कवितांतर - 29

2· नरेन्द्र वसिष्ठ - शमशेर की कविता (1980), पृ·56

1. रह गया सा एक सीधा बिंब
चल रहा है जो
शांत इंगित सा
न जाने किधर

2. मैं सुनूँगा तेरी आवाज़
परती बर्फ की सतहों में तीर-सी

3. एक दरिया उमड़कर पीले गुलाबों का
चूमता है बादलों के झिलमिलाते
स्वप्न जैसे पाँव

4. मौन आहों में बुझी तलवार
5. कठिन प्रस्तर में अग्नि सुराख
6. गरीब के हृदय, टँगे हुए
7. सुर्मई गहराइयाँ, भाव में स्थिर
8. पूरा आसमान का आसमान है एक इन्द्रधनुषी ताल
9. मोह मीन गगन लोक में बिछल रही
10. मैं खुले आकाश के मस्तिष्क में हूँ
11. कई धारायें खड़ी है स्तंभवद् गति में
12. उषा के जल में सूर्य का स्तंभ हिल रहा है
13. धुँधली बादल रेखा पर टिका हुआ आसमान
14. क्षितिज के बीचों बीच खिला हुआ फूल
15. अंधकार के चमकीले निर्झर में, तुम्हारे स्वर चमकते हैं
16. धुन बजता है हवा में आदि आदि ।

ये सारे बिम्ब निषेधों की प्रक्रिया में संतुलित है । उनका अस्तित्व लगभग झुककर रिक्त होते जाने के क्षण में है । उनकी चमक, उनकी पारदर्शिता और उनकी गत्यात्मकता उसी से उपजती है । इसके अलावा वे उसी घिरे हुए, असीम में अटके हुए है, अंधकार की चमकीला निर्झर उस असीम में गिर रहा है, लेकिन उसमें चमकता हुआ स्वर उसे पूरा का पूरा नहीं भरता । इस संतुलन में एक थरथराहट है । यह थरथराहट एक गति में फँसी हुई प्रतिगति है । बिम्ब न सही तो थरथराहट झिलमिलापन उस असीम को भरता हुआ दिखता है । घिरे हुए असीम को भरती दिखती हुई बिम्बों के साथ की थरथराहट या चमक ही उनकी बिंबलौकिकता है । इस बेचैन, छीछते हुए संतुलन को हम पदार्थों की रेडियो प्रक्रिया के दृष्टांत से समझ सकते हैं ।

मैं ने "बिंबलोक" शब्द का प्रयोग किया है । बिम्ब और बिम्बलोक के अन्तर को स्पष्ट करना यहाँ आवश्यक है । यह लगभग उसी तरह का अन्तर है, जो विष्णु और विष्णु लोक में है । विष्णु तत्व और विष्णु लोक में अंतर है । उसी तरह बिंब के शिवतत्व और बिंबलौकिकता में अन्तर है । शमशेर की कविता में घिरे हुए असीम को बिंब की बिम्बात्मकता नहीं, उसकी बिम्ब लौकिकता भरती है । अंतिम रूप में शमशेर की काव्यानुभूति बिम्ब की अनुभूति है । इसी का निर्माण वे बार-बार करते हैं, और विविध बिंबों के बावजूद एक ही कविता लिखते है । अंतत: इस बिंब लोक में बिम्ब का भी पर्यवसान हो जाता है । लेकिन बिंब का पर्यवसान उस लोक का भी पर्यवसान है[1] ।

1· सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, मलयज [सं] शमशेर, पृ·37

ध्वनिबिंब की कमी शमशेर में नहीं हैं - यदा:

थप्-थप् केले के पातों पर हातों से
हाथ दिये जाय
थप् थप् ।[1]

हवा के कारण केले के हात उसके पातों से टकरा रहे हैं । जैसे कोई ढोलक पर हाथ मार रहा हो - थप्-थप् । छोटी से छोटी वस्तु का अनुकरणात्मक बिम्ब गढने की शमशेर क्षमता रखते हैं । "दो मोती कि दो चन्द्रमा होते" मे यह उदाहरण है -

वह मधु की चट्टान
जब गलती है तब जन्म हुआ करता है मानव का
उन झागों से, जो खिल-खिल-खिल
सत रंगनियां हैं ।[2]

सूरज की रोशनी में सतरंगी झाग देखने और उनकी खिल खिल-खिल सुनने केलिए शमशेर की आँखें और कान होने चाहिए । लेकिन अनुकरणात्मक व्यंजन संगीत से कहीं समृद्ध और प्रभावी कलात्मक संवेदना शमशेर के दीर्घ स्वरों के प्रयोगों में दीख पड़ती है । यहाँ वह निराला के बाद आधुनिक हिन्दी कविता में सबसे समर्थ कवि है । दीर्घ स्वरों के नियोजन अर्थात् एसोनेन्स से शमशेर किसी भाव का गुण-प्रस्तुत करते हैं, अर्थ की छवि भूत करते हैं । "लौट आओ धार" और "यादें" इस प्रकार की ध्वन्यात्मकता के श्रेष्ट उदाहरण है ।

---

1. शमशेर
2. वही

शमशेर में गन्ध-बिम्ब अत्यल्प है । उनको केवल भीनी गन्ध प्रिय है । कुछ उदाहरण -

कुसुमों से चरनों का लोच लिए
थिरक रही है
भीनी-भीनी
सुगन्धियाँ
x x x
कमल के लिपटे हुए दल
कसे भीनी गन्ध में बेहोश भौंरे को ।[1]

मलयज का कथन ठीक लगता है कि शमशेर "मूड" के कवि है, विज़न के नहीं।[2] । यह अवश्य है कि उनका "मूड" उस व्यक्ति का "मूड" है जो हमारे - आपके समाज में उसकी सम्पूर्ण विसंगतियों, विडम्बनाओं, यानी एक शब्द में "यथार्थ" के बीच रहता है, उन्हें भोगता है और उन्हें जीता है । काव्य अनुभूति के स्तर पर शमशेर उस यथार्थ से अप्रभावित नहीं रहते हैं आगे मलयज शमशेर के बिम्बों के संबंध में लिखा है - "किसी यथार्थ अनुभूति का अपरोक्ष साक्षात्कार करना और उसे रचना-अभिव्यक्ति में प्रकट करना, कवि की दिशा यहाँ नहीं, यह एक विशिष्टता - एब्सार्ट्रेक्टनेस - की ओर बढ़ रहा है, जहाँ आकर ख़ोक जाते हैं, रेखाएं विलीन हो जाती है, आशय धूमिल पड जाता है, केवल वर्ण रह जाता है तरल, कोमल और पारदर्शी । वैसे ही बिम्बों के होने की एक शर्त है, वे "भौतिकता" का किन्हीं अंशों तक निषेध करते हैं । शमशेर के निकट बिम्बों के लिए, उसे "भौतिकता" का निषेध एक स्तर पर उनके उस यथार्थ-

---

1. शमशेर
2. मलयज - सर्वेश्वरदयाल सक्सेना शमशेर, पृ.40

बोध के सक्रिय और समसामयिक जीवन-तत्वों का निषेध है वे अपनी परिष्कृत चेतना के आन्तरिक आग्रह से अनायास ही उस विशिष्टता की ओर बढ़ जाते हैं, जहाँ प्रेम और सौंदर्य की शाश्वत खोज की अभिव्यक्ति कवि का लक्ष्य है । इस अभिव्यक्ति का माध्यम है - वर्ण । यह वर्ण कवि की रचना-प्रक्रिया का, विकास के इस स्तर पर, प्रधान तत्व है । इसके साथ एक और चीज़ जुडी हुई है - "चमक" । यह "चमक" कवि के मन में व्याप्त उस यथार्थ-बोध की चेतना का ही सूक्ष्म तत्व है । जो सीधी-अनुभूति के स्तर तक न आकर गहरी करुणा के पारदर्शी रूप में व्यंजित होती है - यह कवि के भावों में निहित मानव-मन की पीडा की सघनता का अमूर्त आलोक-द्रवण है । मन की वह पीडा, वर्ण के सूक्ष्म भौतिक-स्पर्श से संविदित होकर एक अर्द्ध-संमोहित अवस्था में रूपाकार ग्रहण करती है[1] ।"

बिंबवाद की समस्त अतिरंजनाओं के होते हुए भी शमशेर के बिम्बों में उनकी चाक्षुषता और स्पर्शता और श्रव्यता के उपरान्त भावों और अनुभूतियों का भी एक विराट संसार है जो उनकी कविताओं का सौंदर्य भी है ।

धर्मवीर भारती की "कनुप्रिया" में "तन्मयता के क्षणों" में गहरी अनुभूतियों से संबन्धित बहुत सारे बिंब प्राप्त होते हैं । अपने काव्य नायक कनु का दृश्य बिंब राधा के मन पर चित्रित होते दृश्य बिंब के रूप में उन्होने प्रस्तुत किया है ।

---

1. मलयज - शमशेर, पृ.44

तुम्हारा साँवरा लहराता हुआ जिस्म
तुम्हारी किंचित मुड़ी हुई शंख-ग्रीवा
तुम्हारी उठी हुई चन्दन-बाँहें
तुम्हारी अपने में डूबी हुई
अधखुली दृष्टि
धीरे-धीरे हिलते हुए
तुम्हारे जादू भरे होंठ[1]।

कनुप्रिया मूलत: एक प्रेम काव्य है । राधा के प्रेम तप्त मन के विविध स्तर इस काव्य में उपलब्ध है । संयोग की स्मृति वियोग को गहराती है । ऐसे संदर्भों में भारती ने कई स्पर्श, चाक्षुस बिंबों का चयन किया है । स्पर्श के आग्रह से जुड़ा हुआ एक बिंब इस प्रकार है -

कि मैं तुम्हीं में हूँ
तुम्हारे ही रेशे-रेशे में सोयी हुई -
और अब समय आ गया है कि
मैं तुम्हारी नस नस में पसार कर उडूँगी
और तुम्हारी डाल डाल में गुच्छे-गुच्छे लाल-लाल
कलियाँ बन खिलूँगी[2]।"

यह सर्जन की प्रकृति कामना प्रकृति पुरुष के आदि बिम्ब से व्यंजित हुई है[3]। अपनी रोमांटिकता के वावजूद भारती ने 'कनुप्रिया' एवं 'अंधा युग' में इतिहास के विराट फलक को चित्रित करने का कार्य किया है जहाँ आज के विडंबनाजन्य जीवन से संबन्धित कई दृश्य बिंब प्राप्त होते हैं इस अर्थ में उनका पूरा अंधा युग ही एक बिम्ब है ।

1• धर्मवीर भारती - कनुप्रिया {1959}, पृ•76
2• वही, पृ•12
3• डा• रघुवंश - भारती का काव्य {1980}, पृ•56

मुक्तिबोध के बाद नयी कविता के क्षेत्र में फांटेसियों का अधिकाधिक प्रयोग विजयदेवनारायणसाही ने किया है । अतः साही की कविताओं में रात और जंगल से संबन्धित प्रतीकात्मक बिम्ब दुहराये गये हैं । प्रतीकात्मक बिम्बों के संबन्ध में लिखते हुए डब्यू.बी. यटेस की कविताओं में प्राप्त बिम्बों की तुलना मुक्तिबोध के बिम्बों के साथ जिस प्रकार केदारनाथ सिंह ने की है, साही की कविताओं के संदर्भ में भी संगत है । केदारनाथ सिंह का कथन इस प्रकार है - "दैनिक जीवन के इन सुपरिचित दृश्यों के अतिरिक्त नयी कविता ने कुछ ऐसे काव्यात्मक बिम्ब भी दिये हैं जो एक विशेष प्रकार के जादू टोने-के-से वातावरण केद्वारा आधुनिक जीवन की गहन जटिलताओं को प्रतिबिम्बित करते हैं । बिम्ब विधान की यह पद्धति नयी कविता की अपनी उपलब्धि है और हिन्दी-कविता के इतिहास में कुछ उस प्रकार का उदाहरण प्रस्तुत करती है जैसा प्रसिद्ध प्रतीकवादी कवि डब्लयू.बी. यीट्स की उत्तरकालीन कृतियों में पाया जाता है । यीट्स ने प्रथम महायुद्ध के बाद के सांस्कृतिक विघटनको कलात्मक अभिव्यक्ति देने केलिए मध्ययुगीन गाथात्मक प्रतीकों और तन्त्र-मन्त्र के रूढ़ संकेतों को एक नये ढंग से कविता में ढालने का प्रयास किया था । इधर नयी कविता के क्षेत्र में भी कुछ उसी प्रकार के संकेत दिखाई देने लगे हैं । इस प्रकार के बिम्ब प्रायः भूत-प्रेतों की कहानियाँ, दन्तकथाओं और आदिम जनगाथाओं के रूप में व्यक्त होते हैं । मुक्तिबोध ने शहर के छोर पर, खंडहर के बीच परित्यक्त सूनी बावड़ी में स्नान करनेवाले "ब्रह्मराक्षस" के प्रतीक के द्वारा आधुनिक मानव के नग्न नकारात्मक रूप का बडा प्रभावशाली बिम्ब प्रस्तुत किया है[1] ।

भयावह यथार्थ का दृश्य बिम्ब साही की "अलविदा" नामक कविता में दृष्टिगत होता है जो प्रतीक बिम्ब के रूप में परिणत होता है ।

---

1. डॉ. केदारनाथ सिंह - आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान, (1971), पृ.316

"तुम खुद हाथ में रेत लेकर
उसमें चमकते चाँद के जर्रे देखते रहे
तुम्हें किसी ने नहीं भरमाया
और उसमें तुमने देखी
दीवारें ढकेलते हताश भीड़ें
सुरंगों के पार जलती हुई स्वर्ण लंकायें
गटर में छुरे फेंकते स्याह चेहरे
समुन्दर की तरह काँपती लड़कियाँ
दुर्घटनाएँ लिए जाती रेलगाड़ियाँ
तुम्हें यह भी ख्याल नहीं रहा
कि कितना समय गुज़र गया है
जो लोग तुम्हारे साथ यहाँ तक आये थे
वे बार बार तुम्हें पुकार कर
चले गये
क्योंकि उनकी अपनी जिम्मेदारियाँ थीं
और शाम हो जाने के बाद
वे इस बदनसीब इमारत में रुकने केलिए
तैयार नहीं थे।
रात होते ही
खिड़की के पार से
वह हसीन चेहरा झाँकेगा
जिसके बारे में तुम सुन चुके हो
तब उस परिस्थिति का मुकाबला
तुम अपने भीतर की किन ताकतों के सहारे करोगे
यह तुम्हें उसी समय मालूम होगा,
मैं इसमें तुम्हारी कोई मदद नहीं कर सकूँगा

मैं ज़्यादा से ज़्यादा इतना बता सकता हूँ
कि या तो यह होगा
कि सुबह आकर
मुझे तुम्हारा नाम
उन लोगों की फेहरिस्त में लिखना होगा
जिनके वापस आने की कोई उम्मीद नहीं
या फिर
या फिर क्या होगा, यह बताना
मेरे लिए कठिन है
क्योंकि आज तक इसके अतिरिक्त कुछ
घटित हुआ ही नहीं
x x x x x
तब तुम देखोगे कि यहाँ से वहाँ तक
अटूट अँधेरा है
जो माँद में मरते हुए जानवर की तरह
साँस लेता है ।
मगर मैं यह सब
सिर्फ अनुमान के भरोसे कह रहा हूँ
क्योंकि मेरा अनुभव बहुत सीमित है
और मेरे लिए वे सारे रास्ते बन्द कर दिए गये हैं
जिनसे होकर
चमकता हुआ जोखिम प्रवेश करता है
और खून की आखिरी बूँद तक को
आत्मा में बदल डालने की माँग करता है
सच तो यह है
~~कि इस सारे वातावरण की तरह~~

कि इस सारे वातावरण की तरह
मैं भी सिर्फ इन्तजार कर रहा हूं
उस विकल्प का
जिसकी अफवाह
रात की हवा की तरह
समय के एक छोर से दूसरे छोर तक
मंडराती हुई सुनाई पड़ती है[1]।"

साही की कविता आत्मविश्लेषण के स्तर पर एक पूरी जाति या पीढ़ी में व्याप्त भय को प्रत्यक्ष करती है[2]।" "मछलीघर" की कुछ कविताओं के बिंबों की असंख्य क्रमध्वनि इस कविता में सुनाई पड़ेगी जैसे शीशे के दीवार के उस पार का चेहरा" "प्रतीक्षारत अगाध आंखें", "काली चट्टान और उस पर बेतहाशा सिर पटकती धारा", "आलोक और वह जिसमें आलोक समाता है", "दीवारें ही दीवारोंवाली कारा" तथा तोड़ने मात्र के धर्मवाले अद्भुत कारावासी, प्याले से निकलता हुआ गेहुंअन" । इस प्रकार के बिंब इस कविता के सृजन के नाभिक तक पहूंचने में मदद देते हैं । वस्तुत: अलविदा इस "मछली घर" से या "बदनसीब इमारत" से अलविदा की कविता है क्योंकि इसमें मुक्ति का संदेश देनेवाले फरिश्ते की तरह प्रतीत होता है और लोग उसमें प्रकाश की आशा रखते हैं । वे पीढी दर पीढी चली आती हुई इस अपवाद से मुक्ति के इंतज़ार में हैं । इसी अर्थ में यह कविता इस समय तो हमारा "अतीत ही वर्तमान" और "भविष्य" है ही नहीं, उससे मुक्ति का संकेत करती है । भ्रम और वास्तविकता के द्वंद्व से उबारकर वास्तविकता और भ्रम को समझने का संकेत करती है[3]।"

1· विजयदेवनारायण साही - मछलीघर (प्रथम संस्करण 1966), पृ·122

2· परमानन्द श्रीवास्तव - समकालीन कविता का व्याकरण, पृ·63

3· नरेन्द्र मोहन (सं·) लंबी कविताओं का रचना विधान, पृ·108
अतीत और भविष्य की वर्तमानता की पहचान-डॉ·सत्यप्रकाशमिश्र

भयावह परिवेश से सृजित साही के जो बिम्ब हैं उसी प्रकार का एक दृश्यबिम्ब सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने "कुआनो नदी" में भी प्रस्तुत किया है ।

'चमगादडों के उड़ने से
शाखें खड़खड़ाती हैं
और फिर किसी अकेले चिता की
आखिरी लपटें, बडे बडे दहकते
अंगारों की आखों से देखती हैं
ऊपर आसमान में तारे होते हैं
नीचे नदी चुपचाप बहती जाती है[1] ।

प्रस्तुत कविता में ग्रामीण परिवेश से संबन्धित और भी अनेक बिंब प्राप्त होते हैं । "पशों की दयनीयता के जीवंत बिंब के बाद फिर किसान चौपाइयों और घरेलू जीवन के बिंब-बरसात के पानी में खडे चौपाइयों के खुर खरबा से घायल हो जाते हैं । घरों में गीली लकडियों धुआं उगलती है । चूल्हे के एक ओर कुत्ते हांफते बैठे रहते हैं और दूसरी ओर बच्चे जिनकी आखें अंधेरे में तेल की ढिबरियां सी जलती है । ढिबरियों के बिंब से ही अन्य भावात्मक साहचर्य आते हैं - उपमा में प्रयुक्त ढिबिरियां साक्षात् ढिबरियों की याद दिलाती है - ढिबरियां जो केवल घटे भर के लिए जलती है और फिर रात भर अंधेरा छाया रहता है[2] । "कुआनो नदी" के पार "नामक दूसरे खंड में भी उससे मिलते जुलते बिंब उपलब्ध है जो स्थिर एवं गत्यात्मक है ।

---

1. सर्वेश्वर सक्सेना - प्रतिनिधि कवितायें {1986}, पृ.105
2. नरेन्द्र मोहन {सं} - लंबी कविताओं का रचना विधान विवेक प्रक्रिया में - कुआनो नदी - अशोक चक्रधर, पृ.211

"मैं गुमटी पर रुक जाता हूँ
रेलगाड़ियाँ तेज़ी से निकल जाती है
सामने एक छोटी-सी बस्ती है
या छोटा सा जंगल
बात एक ही है[1]।"

x x x x x

शब्द दम तोड़ती मछलियों की तरह
उलट कर अर्थ हीन हो जाते हैं[2]।"

x x x x x x

कुआनो नदी उतनी ही उथली है
नाव उतनी ही छोटी कीचड में फँसी हुई[3]।"

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविताओं में प्राप्त इन बिंबों के पीछे बिंबग्राही दृष्टि का शिल्पपरक उन्मेष नहीं है, बल्कि उनकी मूल चेतना या मोटिफ या अंतर प्रेरणा आदि से संबन्धित है। उनकी प्रतिनिधि कविताओं के चयन कर्ता, प्रयाग शुक्ल ने जो संकेत किया है वह सही है एक ठिकाना तो वह गाँव रहा जहाँ वे जन्मे और बड़े हुए, दूसरा परिवार, तीसरा मित्र वर्ग, चौथा वह बृहत्तर समुदाय जिसका मानों स्वयं अपना कोई ठौर-ठिकाना नहीं यानी सताये हुए लोग। पाँचवाँ-प्रकृति की वह बहुत बड़ी दुनिया, जिसमें वह जीवन धर्मों को पाने की एक आकुल चेष्टा करते थे और उस पर यह गहरा भरोसा भी कि जब सब साथ छोड देंगे तो कोई चिड़िया, टहनी, बारिश की बूंद, धारा - व्यथा कथा सुनने से इनकार नहीं करेगी बल्कि एक अनुकम्पा की तरह साथ रहेगी।

---

1. सर्वेश्वर सक्सेना - प्रतिनिधि कवितायें, पृ. 109-110
2. वही, पृ. 111
3. वही, पृ. 113

हम उनकी कविताओं में इन्हीं ठिकानों की ओर एक आवाजाही पाते हैं। कहने की ज़रूरत नहीं कि इन ठिकानों को जीवन और कविता में साथ पाना आसान नहीं होता। सर्वेश्वरजी ने इन सभी ठिकानों को अपना प्रेम देने में कोताही नहीं की।[1]"

अपनी कविताओं के बारे में कुँवर नारायण ने यों लिखा है "कविता मेरे लिए एक अनुभव या भाव की अभिव्यक्ति मात्र नहीं है, वह एक ज्यादा फैले और ज्यादा गहरे "भाषाई जगत (लिंग्विस्टिक स्पेश) की रचना या खोज भी है[2]।" उन्होंने जिस भाषाई जगह का संकेत किया है उसके बहु आयामी काव्यगत स्तरों के संबंध में सविस्तार रोबिन स्केलटन ने अपनी पोयटिक "ट्रूथ" नामक ग्रंथ में विश्लेषण किया है। दृश्य जगत के साथ बालकोचित सात्मीकरण या तथाकथित आदि युगीन मानव का तादात्म्य जो है उसका संबन्ध कवि की आत्मसात्मीकरण प्रक्रिया से है। स्केलटन ने "अपनी त्वचा के भीतर" जैसे शब्दों का प्रयोग इसकेलिए किया है। उनका कथन यह है कि संकल्पित तथ्यों से बढ़कर संकल्पना ही प्रमुख है। हम अपने स्वानुभव जगत के संग हैं[3]। स्केलटन और कुँवर नारायण के कथनों के बीच

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - प्रतिनिधि कवितायें - प्रयाग शुक्ल की भूमिका से उद्धृत, पृ.6

2. पूर्वग्रह (1977 सितंबर-दिसंबर), पृ.11

3. "The poet, at the moment of writing, doesnot only feel that words have 'portmantean meaning' and possess different degrees of focality; but also that each words, as he writes it or says it, is inextricably involved in his own sense of life. He participates in it the same way as a man participates in a friend to whom he is sympathetic, putting himself as much as possible 'inside his skin'. It is an empathetic process. This feeling of participation is similar to the feeling of children and of many so called primitive races, who are unable to conceive of anything as lacking the kind of life which they themselves possess. The stone, the tree, the rain, the hill, all exist, and are therefore alive. They live in a mythopocic universe; there are no objects. This comes close to the belief of some modern thinkers that there is no perceived phenomenon which can exist apart from the action of perceiving. We are all part of what we say we see.
Robin Skelton - The poetic Truth (1978), p.18

समान तत्व यही है कि पहला पूरे काव्यानुभव को स्वानुभव के स्तर पर देखता है तो दूसरा अनुभवों के बीच के शिथिल क्षणों में से उसे प्राप्त करना चाहते है जिसके लिए उन्होंने 'भाषाई जगत' शब्द का प्रयोग किया है । कुंवर नारायण और केदारनाथ सिंह के बिम्बों की तुलना करके मलयज ने लिखा है - "कुंवर नारायण के बिंब उनके कवि व्यक्तित्व में "डाइनेमिक" आशयों की उपज हैं । यद्यपि उनका बाह्य रूपाकार तीव्र ऐन्द्रिय-बोधों का रूप-चित्रण प्रस्तुत करता है, वे मात्र शुद्ध इन्द्रियगम्य अनुभूतियों का ठोस मूर्तिमान रूप नहीं है, न केवल भावक के मन में एक अनुभूति भर जगा देना उनका लक्ष्य है । वे निश्चित रूप से विचार - स्थल पर आघात करते हैं, वस्तुत: उन्हें उनमें निहित बौद्धिक आशय से पृथक् करके देखने से उनकी कोई जीवित सत्ता रह ही नहीं जाती । यदि केदारनाथ सिंह के बिम्ब भावना-तरल बौद्धिकता कर रूप है, तो कुंवर नारायण के बिम्ब बौद्धिक भाव संवेगों का[1] । कुंवर नारायण की "गाय" नामक कविता मिश्रित बिंबों की एक रचना हैजिसमें चित्रों की पारस्परिकता से बिंब रूपायित हुई है ।

"सबसे डरती गाय
घास चरती गाय
दूध देती गाय
दूध पीता बच्चा ।
दूध पीती बिल्ली ।
दूध-पीता सांप
मां, मुझको डर लगता
मेरा घर
कैसे कैसे जीवों का घर लगता[2] ।"

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, मलयज (सं.) - शमशेर, पृ.45

2. कुंवर नारायण

उनकी कविताओं में समय या इतिहास में कैद हो जाने का या वापसी के उपक्रम के "मोटिफ" अनेक बार आया है[1]। कुछ उदाहरण इस प्रकार है -

कभी-कभी लगता है अपने ही किसी दु:स्वप्न में कैद हूं
आज से हज़ारों साल पहले[2]।

{विकल्प}

जिधर घुड़सवारों का रुख हो
उसी ओर घिसटकर जाते हुए
मैं ने उसे कई बार पहले भी देखा है[3]।

{दिल्ली की तरफ}

मेरी हाथों में एक दूरबीन है
मीनार
जिसके एक तरफ से मैं
इतिहास के तमाम सितारों को देख रहा हूं[4]।

{कुतब मीनार}

कोई नहीं।
कुछ नहीं
यह सब
एक गंदा ख्वाब है
यह सब आज का नहीं
आज से बहुत पहले का इतिहास है[5]।

{इब्नेबतूता}

---

1. विष्णु खरे - आलोचना की पहली किताब (1983), पृ.88
2. कुंवर नारायण
3. वही
4. वही
5. वही

हज़ारों साल से उसी एक पिटते हुए आदमी को
उसी एक पिटे हुए सवाल की तरह
उसी से पूछा जा रहा है
तुम कौन हो ?
कहाँ रहते हो ?
तुम्हारा नाम क्या है ?[1]

{फौजी तैयारी}

वही शायद फिर आ गया है लौटकर
मेरे दरवाज़े पर मुझे पुकार-पुकारकर का जगाता हुआ
गुलामों और सुलतानों का जमाना ।[2]"

{आज का जमाना}

आज भी वे
अनेक साम्राज्यों और बियाबानों से होते हुए
भागे चले जा रहे हैं ।[3]"

{भागते हुए}

कुँवर नारायण के यहाँ इतिहास निरंकुशता, अत्याचार, मदांधता, हत्या, षड्यन्त्र, आक्रमण, आगज़नी, मानव मूल्यों का तिरस्कार तथा संहार का एक अनंत सिल सिला है जिसमें मरीचिकायें और इंद्रजाल है, सामान्य जन केलिए या तो जयजयकार है या अत्याचार है या मौन असहमति है । वहाँ हर तथाकथित मुक्ति एक नयी पराधीनता में पतित हो जाती है । कुछ हद तक यह इतिहास का नकारात्मक तथा नैराश्यपूर्ण पठन है लेकिन इतिहास का एक निर्मम सबक ऐसा भी है जिससे इतिहास के साथ साजिश करनेवाले ही इन्कार कर सकते हैं । इतिहास के प्रति यह रवैया

1· कुँवर नारायण

2· वही

3· वही

मानव-विरोधी नहीं है बल्कि बहुत दर्दनाक ढंग से मानव समर्थक है - इतना कि कवि सामान्य जन को किसी भी यूटोपियन या रामराज्य की अफीम नहीं खिलाना चाहता - पुराने चिरागों के बदले कुंवर नारायण कोई नये चिराग नहीं देते - वे चिराग तले अंधेरे की ओर इंगित करते हैं[1]।

रघुवीर सहाय के कविताओं में शब्द विधान की नये स्तर पर नये बिम्ब उभरकर आये हैं। इस दृष्टि से उनका "आत्महत्या के विरुद्ध "संग्रह विशेष उल्लेखनीय है। बिंब विधान की इस प्रक्रिया में सामान्य भाषा की रचनात्मक क्षमता का बिलकुल नया और प्रीतिकर अहसास कवि के संकलन "आत्महत्या के विरुद्ध" की कविताओं में होताहै। वे कवितायें चाहे राजनीति के अनुभव क्षेत्र से संबद्ध हो या कि प्रेम के अनुभव क्षेत्र से, अथवा प्रकृति के मानवीय चित्र हों[2]। उनका एक यथार्थवादी दृश्य बिंब इस प्रकार है -

दूध पिये मुंह पोंछ या बैठे जीवन-दानी गोंद
दानी सदस्य तोंद सम्मुख धर
बोले कविता में देश प्रेम लाना हरियाणी प्रेम लाना
आइस्क्रीम लाना है[3]।

पारिवारिक संदर्भों से भी या जीवन के सामान्य प्रसंगों से भी उनके बिम्बों का संबन्ध है -

---

1. विष्णु खरे - आलोचना की पहली किताब, पृ.90
2. रामस्वरूप चतुर्वेदी - नयी कवितायें एक साक्ष्य, पृ.32
3. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध, पृ.26

सन्नाटा छा गया
चिट्ठी लिखते-लिखते छुटकी ने पूछा
"क्या दो बार लिख सकते हैं कि याद
आती है ?"
"एक बार मामी को एक बार मामा को ?"
"नहीं, दोनों बार मामी को"
"लिख सकती हो ज़रूर बेटी" मैं ने कहा[1]।

xx xx xx

बच्चा गोद में लिए
चलती बस में
चढ़ती स्त्री
और मुझ में कुछ दूर तक घिसटता जाता हुआ
(चढ़ती स्त्री)[2]

प्रेम और प्रकृति को विषय वस्तु के रूप में ग्रहण करके जिस प्रकार रघुवीर सहाय की कविता जीवन के नग्न यथार्थ की अभिव्यक्ति बन गयी उसी प्रकार बीच बीच में प्राप्त उनके बिम्बों में कारीगरी की सूक्ष्मता के नमूने पर भी ऐसी ताज़गी और तीखापन है जो आधुनिक काव्य बिम्बों की विशेषता भी है।

आधुनिक कविता में केदारनाथ सिंह की कविता अपनी ऋजुता और व्यापक अनुभूत्यात्मक समन्वय केलिए प्रसिद्ध है। भावना और बौद्धिकता का समन्वय भी उनकी रचनाओं में देखा जा सकता है। अपनी कविताओं में बिंबों के प्रति जो आग्रह है उसके बारे में स्वयं कवि का

---

1. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध, पृ.29
2. वही, पृ.43

कथन है - "कविता में सब से अधिक ध्यान देता हूं बिम्ब-विधान पर । बिम्ब-विधान का सम्बन्ध जितना काव्य की विषय वस्तु से होता है, उतना ही उस के रूप से भी । विषय को वह मूर्त और ग्राह्य बनाता है; रूप को संक्षिप्त और दीप्त । चित्रों के प्रति मेरे मन में जो आकर्षण है उसके कुछ कारण हैं । प्रकृति बहुत शुरू से मेरे भावों का आलम्बन रही है । मेरा घर गंगा और घाघरा के बीच में है । घर के ठीक सामने एक छोटा सा नाला है जो दोनों को मिलाता है । मेरे भीतर भी कहीं गंगा और घाघरा की लहरें बराबर टकराती रहती हैं । खुले कछार, मक्का के खेत और दूर दूर तक फैली पगडण्डियों की छाप आज भी मेरे मन पर उतनी ही स्पष्ट है जितनी उस दिन थी, जब मैं पहली बार देहात के ठेठ वातावरण के धुले और शतशः खण्डित आकाश के नीचे आया[1] । प्रकृति के विभिन्न चित्रों ने उनके काव्य मानस को गहरे स्तर पर आकर्षित किया है । उनके दो प्राकृतिक बिंब इस प्रकार हैं -

झरने लगे नीम के पत्ते, बढ़ने लगी उदासी मन की
उड़ने लगी बुझे खेतों से
झुर-झुर सरसों की रंगीनी,
धूसर धूप हुई, मन पर ज्यों -
सुधियों की चादर अनबीनी
दिन के इस सुनसान पहर में रुक-सी गयी प्रगति जीवन की ।
साँस रोक कर खड़े हो गये
लुटे-लुटे-से शीशम उन्मन,
चिलबिल की नंगी बाहों में
भरने लगा एक खोयापन,
बड़ी हो गयी कटु कानों को "चुर मुर" ध्वनि बांसों के बन

---

1. अज्ञेय (सं.) तीसरा सप्तक (1984)
- केदारनाथसिंह के वक्तव्य से उद्धृत

थक कर ठहर गयी दुपहरिया
रुककर सहम गयी चौबाई,
आँखों के इस बीराने में -
और चमकने लगी रुखाई,
प्रान, आ गये दर्दीले दिन, बीत गयीं रातें ठिठुरन की ।[1]

×× ×× ××

धूप चिड़चिड़ी, हवा बेहया, दिन मटमैला,
मौसम पर रंग चढ़ा फागुनी, शिशिर टूटते
पत्तों में टूटा, पलाश-वन पर ज्यों फैला
एक उदासी का नभ, शोले चटक छूटते
जिसमें अरमानों से गूँजा हिया - आयेगा
कल वसन्त, मन के भावों के गीतकार-सा
गा जायेगा सब का कुछ-कुछ, मौन छायगा
गन्ध-स्वरों से, गुड़ की गमक हवा को सरसा
जाती जैसे पूस माह में । नदियाँ होंगी
व्यक्त तटों की हरियाली में खिल, उघड़ा-सा
कहीं न दीखेगा जीवन, लगते जो योगी
वे अनुभूति-पके तरु फूटेंगी, जकड़ा-सा
तब भी क्या चुप रह जायेगा प्यार हमारा ?
कुछ न कहेगा क्या वसन्त का सन्ध्या-तारा ?[2]

इन दोनों कविताओं में प्रकृति के विभिन्न भावों से संबन्धित अनेक बिंब है । जिनमें भावबद्ध संवेग के स्थान पर एक निरीक्षण कर्ता का कुतूहल ही प्रकट होता है । यह कुतूहल इसलिए आधुनिक है कि वह अनुभव

---

1. तीसरा सप्तक - केदारनाथ सिंह की कविता - दुपहरिया, पृ. 136
2. वही - पूर्वाभास, पृ. 137

और अनुभूति के समन्वय से सृजित है । प्रकारान्तर से ऐसे ही दो बिम्ब जगदीशगुप्त और नरेश मेहता की सूचित कविताओं में भी प्राप्त होते हैं । जगदीश गुप्त की कविता "वत्सल आकाश" में चित्रों की पारस्परिकता से उभरता हुआ बिम्ब है जिसमें स्थिरता और गतिशीलता का समन्वय हुआ है । नरेश मेहता की "किरण धेनुये" में प्रकृति का एक गतिशील चित्र है

सुब टटकी
ओस से भीगी
ताज़ी बहाती हुई गाय
धुली उजली पावन
कब से रंभाती
बछडे-सा मेरा मन
हुमकता है थनों की ओर ।
वत्सल आकाश से
बह बहकर
होठों तक आती है
दूध की धारें -
ऐसा पेय कभी नहीं पिया ।
ऐसा क्षण कभी नहीं जिया ।"

" उदयाचल से किरन-धेनुएं
हांक ला रहा
वह प्रभात का ग्वाला
पूँछ उठाये चली आ रही

1· जगदीश गुप्त (सं·) कवितान्तर, पृ·248

क्षितिज-जंगलों से टोली
दिखा रहे पथ इस भूमा का
सारस सुना-सुना बोली
गिरता जाता फेन मुखों से
नभ में बादल बन तिरता
किरण-धेनुओं का समूह यह
आया अन्धकार चरता ।
नभ की आम्रछांह में बैठा
बजा रहा वंशी रखवाला ।
ग्वालिन सी ले दूब मधुर
वसुधा हंस-हंसकर गले मिली
चमका अपने स्वर्ण-सींग वे
अब शैलों से उतर चली
बरस रहा आलोक-दूध है
खेतों-खलिहानों में
जीवन की नव किरण फूटती
मकाई के धानों में
सरिताओं में सोम दुह रहा
वह अहीर मतवाला ।[1]"

लक्ष्मीकान्त वर्मा की कविताओं में जैसे शुरू से एक खास प्रकार का असंगत संदर्भ मिलता था, जो उनकी बिंबीकरण प्रवृत्ति में भी शामिल है

---

1. जगदीश गुप्त (सं.) कवितान्तर, पृ. 124

"सिर पर जूता
पैर में टोपी
बीच कमर में उलटी ऐनक
हाथों में उलटे पाजा में
कोट की बाँहें उलटी-सीधी
माथे-पर टाई की पट्टी
बीच गले में गेलिस पेटी[1]।

×× × ×× (1953)

स्टोव आज ठंडा है
हलकी सतरंगी चूड़ियों की छाया
धानिया चूनर में लिपटीत्तुम्हारी काया   लक्ष्मी,सावित्री,
दमयंती ब्रेटर हाफ
केश विच्छिन्न:आर्द्रा के बादल से   नम सीले, और ऊपर आँफ
धुएं से भरी आँखें   स्वाती-सा पलकों में कृपालु: हंस के
पाण्डवों पर साफ-साफ
पसीनों की बूंदों में लिपटा सुहाग-टीका   ऊषा-मंजुषा,
जैसे अरुण हिम गल जाय
माँग की सिंदूरी लकीर   प्रवाल-द्वीप जैसे पिघल जाय[2]।"

श्रीकांत वर्मा की कविताओं में शहरी जीवन की अस्थव्यस्था से संबन्धित अनेक चित्र प्राप्त होते हैं। "दिनारंभ" नामक उनके काव्य संग्रह की एक लघुकविता है "नगर निवासी" जिसकी बिंबात्मक पंक्तियाँ है -

---

1. लक्ष्मीकान्तवर्मा - अतुकान्त (1968), पृ.139
2. वही, पृ.12

"रोज़ शाम
सड़कों पर
फटे
हुए उड़ते
सुबह के
अख़बार ।"[1]

"दिनारंभ" नामक कविता बाह्य असंतुलित लगते हुए भी आन्तरिक बिंब का कसा हुआ रूप प्राप्त होता है ।

शहरों में छत्तों में
ह - ल - च - ल
हुई
मक्खियाँ
बैठ गयीं
मं - ड - रा
अपनी - अपनी
मेज़ों पर[2] ।

उनके "मायादर्पण" नामक संग्रह की "दिनचर्या" नामक कविता उसके चित्रकारी निर्वाह और एक सफल बिंब के लिए उदाहरण है -

---

1. श्रीकान्तवर्मा - दिनारंभ (प्रथम संस्करण) 1967, पृ.11
2. वही, पृ.33

एक अदृश्य टाइपराइटर पर साफ-सुथरे
कागज-सा
चढ़ता हुआ दिन,
तेज़ी से छपते मकान,
घर, मनुष्य
और पूँछ हिला
गली से बाहर आता
कोई कुत्ता ।"[1]

स्पष्टत: श्रीकान्त वर्मा की ये कवितायें बिम्बवादी रुझान से प्रेरित नहीं है । जीवन के नये संदर्भों, नयी परिस्थितियों और नये वातावरण में व्याप्त अर्थहीनता को कुछ गतिशील चित्रों में बाँधने का प्रयास जो उन कविताओं में बिम्बात्मक परिणती के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं ।

नयी कविता के दौर के सभी कवियों में बिंबग्राहिता की प्रवृत्ति अवश्य प्राप्त होती है । लेकिन सभियों में यह प्रवृत्ति समान ढंग से नहीं है । यह स्वाभाविक है । जिन बिंबों का ऊपर विश्लेषण हुआ है उनके अतिरिक्त और भी कई प्रकार के बिम्ब प्राप्त किये जा सकते हैं । इस संदर्भ में दो प्रश्न उठते हैं ।

बिम्बवादी प्रवृत्ति की परिणती आज की कविताओं में किस प्रकार हो रही है ?

1· श्रीकान्त वर्मा - मायादर्पण (प्रथम संस्करण 1967), पृ·8

क्या आज की कविता बिंब ग्राही है ?

निष्कर्ष यही बताया जा सकता है, काव्य बिम्बों के स्वरूप और उसकी सीमाओं में काफी अंतर आ गया है । अत: आधुनिक कविता में बिम्बवादिता को लेकर संदेह उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है । एक उदाहरण यह दिया जा सकता है कि हिन्दी कविताओं के ऊपर जापानी "हाईकू" कविता का प्रभाव रहा था । यह प्रभाव किन किन कवियों में कितनी मात्राओं में रहा, यह अलग बात है । मगर आज "हाईकू" कविता का रचना शिल्प स्वीकृत नहीं है । इस रचना शिल्प ने बिंब ग्राहिता को बढावा दिया था । कहने का सिर्फ यह मतलब है कि नयी कविता के प्रारंभिक दौर और अंतिम दौर की कविताओं में प्राप्त बिंब प्रक्रिया अलग-अलग ढंग की है । इसी से यह समर्पित होता है कि बिंब की सीमायें और उसकी दिशायें समय-समय पर बदलती रही है।

इस प्रकरण में जिन कवियों की रचनाओं का विश्लेषण हुआ है, उनकी ही परवर्ती रचनाओं में बिंबवादिता के स्थान पर भाषा की सपाटता प्रमुख हो उठी है । यह एक ओर उनकी काव्य यात्रा का विकास है । जहाँ तक बिंब यात्रा का विकास है सपट बयानी तक पहूँची हुई रचनाओं में भी आंतरिक बिंबों की अन्विति है । इसके आधार पर ही वस्तुत: नयी कविता की रचनाओं में प्राप्त बिम्बों पर विचार किया गया है । क्योंकि बिम्बों के माध्यम से कविता के सौंदर्य पक्ष पर विचार करने का यही एक मात्र तरीका है ।

अध्याय - पाँच

नई कविता में प्रतीक

अध्याय - पाँच

नई कविता में प्रतीक

सृजनात्मक कार्य में ही नहीं बल्कि जीवन के सभी क्षेत्रों में मनुष्य को प्रतीकों का सहारा लेना पड़ता है[1]। चिन्तन का एक स्तर ही प्रतीकात्मक है। बहुत जल्द हम प्रतीकों के साथ तादात्म्य प्राप्त कर लेते हैं और प्रतीकों के सहारे सोचने लगते हैं। यह एक सनातन सत्य है।

---

1. "Man, it has been said, is a symbolizing animal; it is evident that at no stage in the development of civilization has man been able to dispense with symbols. J.E. Cirlot; A Dictionary of symbols From the forward by Herbert Read, p.x

जहाँ तक सृजनात्मक कर्म का संबन्ध है, प्रतीकों का योगदान हमेशा रहा है[1]। प्राचीन साहित्य में प्रतीकों का प्रचुर प्रयोग किया जाता रहा है। व्यापक अर्थ में समस्त वैदिक साहित्य प्रतीकात्मक ही सिद्ध हो सकता है। तंत्र साधना का पूरा वातावरण प्रतीकों का संसार है। कबीर ने प्रतीकों के सहारे ही अपने योग सिद्धान्त को काव्य का रूप दिया था। सूरदास का भ्रमरगीत प्रसंग भी तो प्रतीकात्मक है। इस तरह भारतीय साहित्य में प्रतीकों का परिचय अवश्य रहा है। लेकिन उसकी अलग चर्चा हुई नहीं है[2]।

आधुनिक युग में, विशेष कर कविता के क्षेत्र में प्रतीकों का ध्वन्यात्मक सृजनाकार्य जो है; वह प्रतीकों को प्राचीन परंपरा से विकसित मानना असंगत ही होगा। इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि साहित्य में प्रतीकों का वातावरण प्राय: सभी युगों में बना रहा है। लेकिन जिस दृष्टि से हम आज प्रतीकों को समझते हैं, आत्मसात करते हैं, उसके पीछे प्रतीकवादी आन्दोलन का बहुत बडा योगदान है। इसका यह मतलब नहीं कि सभी भारतीय भाषाओं में प्रतीकवादी आन्दोलन का गहरा प्रभाव पडा है। जहाँ तक नई कविता का संबन्ध है, प्रतीकवादी आंदोलन से वह अवश्य प्रभावित हुई है[3]। इसमें मतभेद हो सकते हैं। प्रतीकों के सामान्य स्तर ने प्रतिस्थापनवृत्ति के साथ सामान्य अर्थ ही दिया है। लेकिन प्रतीकवादी आन्दोलन ने प्रतीकों के अर्थ स्तर को अधिक व्यापक

---

1. "A symbolic element is present in all art, in so far as its subject to psychological interpretation. But in so far as art has evolved in our time away from the representation of an objective reality towards the expression of subjective states of feeling, to that extent it has become a wholly sybbolic art.
   J.E.Cirlot - A Dictionary of Symbols
   From the forward by Herbert Read,p.x
2. प्रभाकर श्रोत्रिय - कविता की तीसरी आँख (1980) पृष्ठ : 37
3. वही

बना दिया है । आधुनिक प्रतीकों पर विचार करते समय हम इस प्रकार सीमित नहीं होते कि अमुक प्रतीक किस केलिए प्रयुक्त है । एक प्रतीक पूरी रचना के कथ्य एवं शिल्प को बदलने में सक्षम हो सकता है । रचना के आन्तरिक विधान को बदलने में सहायक हो सकता है । आधुनिक कविता में प्रयुक्त प्रतीकों पर विचार करते समय उसकी ध्वनि दक्षता और आधुनिक संवेदनात्मकता पर विचार किया जा सकता है । अर्थात् हर प्रतीक के साथ उसके युगीन संदर्भ को देख लिया जाता है । दरअसल नई कविता में प्रतीक, प्रतीकवत इकाई के रूप में नहीं है, बल्कि सौन्दर्य दर्शन के मूल प्रेरक भाव के रूप में विश्लेषित होते हैं ।

प्रतीक : परिभाषा

प्राचीन तथा आधुनिक कवियों एवं समीक्षकों ने प्रतीकों के संबंध में सोचा विचारा है । अतः हर युग में प्रतीक संबंधी परिभाषायें भी हमें मिलती है । परन्तु आधुनिक युग में प्रतीक को काव्य सत्य के अभिन्न अंग के रूप में देखा जाने लगा है । यहाँ कुछ परिभाषाओं पर विचार करना संगत मालूम होता है ।

कालिरिड्ज ने प्रतीक को विशेष से विशिष्टऔर सामान्य से विशिष्ट या प्रासंगिक को सामान्य के रूप में परिणत कराने की एक अर्ध-पारदर्शक प्रक्रिया माना है[1] ।

एम॰एच॰ अब्रामस ने प्रतीक की परिभाषायें यों दी है : किसी

---

1. 'A symbol' wrote Coleridge' is characterized by a translucence of the special in the particular, or of the general in the special, or of the universal in the general : above all by the translucence of the eternal through and in the temporal".
   Archibald Macheish - Poetry and Experience, p.78

वस्तु के स्थान पर इसके विशिष्ट अर्थद्योतन केलिए प्रयुक्त शब्द प्रतीकवत शब्द है । साहित्य में इस अर्थ में ही प्रतीकों की स्थापना होती हैं । कभी एक शब्द या शब्द समूह किसी वस्तु या घटना के स्थान पर प्रयुक्त होता है जो अर्थ के अनेक आयामों का स्पर्श करनेवाला होता है ।[2]

नोर्थ्रोप फ्रे ने प्रतीकों के विश्लेषण के दौरान कविता के व्यापक स्तर के साथ प्रतीकों को जोडा है । उसके लिए कविता में निमग्न होने की बात पर वे ज़ोर देते हैं । अतः प्रतीकों का काव्यसन्दर्भीय अर्थ ही होता है ।[3]

---

1. A symbol, in the broadest sense of the term, is anything which signifies something else, in this sense all words are symbols. As commonly used, in discussing literature, however symbol is applied only to a word or set of words that signifies an object or event which itself signifies something else, that is, the words refer to something which suggests a range of reference beyond itself.
   M.H. Abrams : A Glossary of Literary Term,p.168

2. "Understanding a poem literally means understanding the whole of it, as a poem, and as it stands. Such understanding begins in a complete surrender of the mind and senses to the impact of the work as a whole, and proceeds through the effort to unite the symbols toward a simultaneous perception of the unity of the structure.
   Northrop Fyre - Anatomy of Criticism
   Second Essay. Ethical Criticism - Theory of symbols, p.77

3. "Symbolism, what does this mean ? should not be pressed in reading poetry, for the poetic symbol means primarily itself in relation to the poem. The unity of a poem, then, is best apprehended as a unity of mood, a mood being a phase of emotion and emotion being the ordinary word for the state of mind directed toward the experiencing of pleasure or the contemplating of beauty.

   Ibid, p.80

प्रतीकवाद को तथ्यों और भावों को परोक्ष ढंग से अभिव्यक्त करनेवाली कला के रूप में देखा गया है जिसमें तारतम्मिक वृत्ति केलिए उतना महत्वपूर्ण स्थान नहीं है। लेकिन अविश्लेषित प्रतीकों के द्वारा उसमें निहित "तथ्यगत एवं भावगत अर्थों को गुम्फित किया जाता है।[1]

गोब्ले दालबिएला (Comte Gobletd, Alviella) का विचार है कि प्रतीक केवल रिप्रोडक्शन नहीं होता है।[2] प्रतीक और "मिथक" की भिन्नता की ओर जार्ज वेले इशारा करते हैं।[3]

---

1. "Symbolism can therefore be defined as the art of expressing ideas and emotions not by describing them directly, nor by defining them through over comparisons with concrete images, but by suggesting what these ideas and emotions are, by re-creating them in the mind of the reader through the use of unexplained symbols".
Charles Chardwick - Symbolism, p.2-3.

2. "A symbol might be defined as a representation which does not aim at being a reproduction".
A. Symons - The symbolist Movement in Literature (1958)
p.1

3. .... Symbol proves to be a special kind of metaphor and the myth proves to be a cluster of symbols brought into resonace in the process of metaphor.
George Whelley - Poetic Process (1953)
p.164

बिलबुर मार्शल अर्बन ने प्रतीक को "अनकहे अभ्युद्देशनों पर आधारित अर्थ का घनीभूत रूप कहा है। अर्बन प्रतीक की सृजनात्मक शक्ति के प्रति सचेत थे। इसलिए उन्होंने लिखा था "चिह्न प्रतीक हो सकते हैं और प्रतीक पतित होकर चिह्नों में परिणत हो सकते हैं
प्रतीक की सबसे बड़ी सही परिभाषा यह है कि वह एक विशेष प्रकार का चिह्न है[1]।

बिल फीडेल्सन अपनी निबंध "द लिटरेरी सिम्बल" में प्रतीक की परिभाषा देते हुए लिखते हैं कि "साहित्यिक प्रतीक एक अनकहे विधान का साम्यानुमान (ऐनालाजी) हैं। इसमें शाब्दिक तत्वों की ऐसी अभिव्यक्ति (आर्टिकुलेशन) होती है, जो कथन की सीमाओं के पार तथा अभ्युद्देशन (रिफरेंस) के परे जाकर भावनाओं तथा विचार के जटिल संमिश्र (कम्पलेक्स) का मूर्तिमान रूप, एक लय, एक सन्निधान (जक्सटापोज़ीशन) एक क्रिया-व्यापार, एक प्रस्थापन (प्रोपोज़ीशन) था कविता का एक संरचनात्मक ढाँचा भी हो सकता है, और प्रतीक स्वयं वही है, जिसका वह प्रतीकीकरण करता है[2]।

---

1. Urban, W.M. - Language and Reality (1939), p.3

2. The literary symbol, an analogy for something unstated, consists of an articulation of verbal elements that, going beyond reference and limits of discourse, embodies and offers a complex of feeling and thought. Not necessarily an image, this analogical embodiment may also be a rhythm, a fuxt position, an action, a proposition, a structure of a poem and the symbol is what it symbolizes.

   Feldelson - Symbolism and American Literature (1953), p.13

विमसाट प्रतीक और रूपक के स्वरूप पर सूक्ष्म विवेचन करते हैं।[1] उसके विवेचन का मूल आधार मार्टिन फोस का ग्रंथ है। यहाँ वे विरुद्धार्थक हैं[2]।

प्रतीक एवं प्रतीकवादी दृष्टि के संबंध में हिन्दी में भी विचार विमर्श हुए हैं। प्रतीक के बारे में हिन्दी साहित्य कोश में परिभाषा यों दी हुई है

"प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य (अथवा गोचर) वस्तु केलिए किया जाता है, जो किसी अदृश्य अगोचर या अप्रस्तुत विषय का प्रतिविधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है। अथवा यों कहा जा सकता है कि किसी अन्य स्तर की समान रूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर की विषय का प्रतिनिधित्व करनेवाली वस्तु प्रतीक है। अमूर्त, अदृश्य, अश्रव्य, अप्रस्तुत विषय का प्रतिविधान प्रतीक मूर्त, दृश्य प्रस्तुत विषय द्वारा करता है जैसे अदृश्य या अश्रव्य ईश्वर, देवता अथवा व्यक्ति का प्रतिनिधित्व उसकी प्रतिभा या अन्य वस्तु कर सकती है[3]।

---

1. Martin Foss - Symbol and Metaphor in Human Experience.
2. Symbol, it may be well to explain at once, does not in Foss' usage enjoy its usual literary and honorific alliance with metaphor, but, carrying rather a logical connotation means what for Foss is the opposite of metaphor, the conceptural.
   W.K. Wim satt - The Verbal Icon - Studies in the meaning of poetry.
   Chapter symbol and Metaphor,p.199
3.

प्रतीकों के बारे में अपनी मौलिक दृष्टि से रामचन्द्रशुक्ल ने विचार प्रस्तुत किए है । उन्होंने कहा है कि प्रतीकों का व्यवहार हमारे यहाँ काव्य में बहुत कुछ अलंकार प्रणाली के भीतर हुआ[1] । लेकिन उन्होंने रहस्यवादी कविता के दौरान प्रतीकवादी प्रवृत्तियों पर व्यंग्य भी किया है, साथ ही साथ यह भी स्वीकार किया है "प्रतीक रूप में वस्तुओं का व्यवहार अच्छी कविता में बराबर होता आया है[2] । आगे उन्होंने लिखा है - "किसी देवता का प्रतीक सामने आने पर जिस प्रकार उसके स्वरूप औरउसकी विभूति की कल्पना चट आ जाती है उसी प्रकार काव्य में आई हुई कुछ वस्तुएं विशेष मनोविज्ञान या भावनाओं को जागृत कर देता है, जैसे "कमल" माधुर्यपूर्ण कोमल सौंदर्य-भावना जागृत करता है, "कुमुदिनी" शुभ्र हास्य की, "चन्द्र" मृदुल आभा की, "समुद्र" प्राचुर्य, विस्तार और गम्भीरता, "आकाश" सूक्ष्मता और अनन्तता की । {जिन प्रतीकों का यहाँ उल्लेख किया गया है} वे सब ऐसे हैं जिनके स्वरूप में कुछ न कुछ व्यंजना है ।

यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि प्रतीकों का व्यवहार हमारे यहाँ के काव्य में बहुत कुछ अलंकार-प्रणाली के भीतर ही हुआ है । पर इसका मतलब यह नहीं है कि उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा इत्यादि के उपमान और प्रतीक एक ही वस्तु है । प्रतीक का आधार साहचर्य या साधर्म्य नहीं, बल्कि भावना जागृत करने की निहित शक्ति है । अलंकार में उपमान का आधार सादृश्य ही माना जाता है[3] ।"

अपने "आत्मने पद" नामक चर्चित ग्रन्थ में अज्ञेय ने "प्रतीकों के महत्व एवं प्रतीक और सत्यान्वेषण में पारस्परिक संबन्ध पर विचार प्रस्तुत किया है । अज्ञेय का मत है : कोई भी स्वस्थ काव्य-साहित्य प्रतीकों की,

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - चिन्तामणि - 2, पृ.117
2. वही, पृ.108-112
3. वही, पृ.110 {काव्य में रहस्यवाद लेख}

नये प्रतीकों की, सृष्टि करता है, और जब वैसा करना बन्द कर देता है तब जड हो जाता है - या जब जड हो जाता है तब वैसा करना बन्द करके पुराने प्रतीकों पर ही निर्भर करने लगता है । और, जहाँ तक जनवाद का प्रश्न है, अगर हम यह स्वीकार करें कि हम-आप पढे-लिखों के, और साहित्य को लेकर चर्चा-चर्चा करनेवाले और दूसरों के साहित्य से बढकर हम ग्राम-साहित्य को जनसाहित्य मानते हैं - और न मान कर जावेंगे कहाँ ? तो हमें लक्ष्य करना होगा कि जन-साहित्य सदा से और सबसे अधिक प्रतीकों और अन्योक्तियों के सहारे ही अपना प्रभाव उत्पन्न करता है । यह चीज़ हम संस्कृत में पाते हैं - वेदों से लेकर वाल्मीकि तक और वाल्मीकि से लेकर कालिदास तक भी, फिर नहीं पाते तो हिन्दी के उस काल में जब उसका काव्य सामन्तों का मुखापेक्षी था । उसके बाद क्या हुआ ? यही कि संस्कृत से वह शक्ति अपभ्रंशों में और फिर लोक-साहित्यों में चली गयी, और सामन्ती साहित्य अधर में रह गया । रीतिकाव्य में प्रतीक सबसे कम है, लोक-काव्य और लोक-गाथा में सबसे अधिक । राजनीतिक मतवाद को लेकर जन के नाम की ओट लेना एक बात है, जन-प्रकृति को समझना, जन-मानस की प्रवृत्तियों को पहचानना दूसरी बात ।[1]" प्रतीकों के माध्यम से काव्य सत्य के अन्वेषण अज्ञेय करते हैं । इसके बारे में उनका मत है किन्तु प्रतीकों के द्वारा ज्ञान की खोज अपने आप में एक बडा कौतूहल प्रद विषय है । क्योंकि वह ज्ञान ही दूसरे प्रकार का है । वैज्ञानिक, सागर की गहराई नापने के लिए रस्सी डालता है, या किरणों की प्रतिध्वनि का समय कूतता है । वह एक प्रकार का ज्ञान है । कवि मछली की दौड से सागर की गहराई भाँपता है - वह दूसरे प्रकार का ज्ञान है । वह प्रतीक द्वारा सत्य को जानता है - सत्य के अथाह सागर में वह प्रतीक रूपी कंकड फेंक कर उसकी थाह का अनुमान करता है । यदि हम सागर को

---

1. अज्ञेय आत्मनेपद - प्रतीक और सत्यान्वेषण शीर्षक निबन्ध से उद्धृत, पृ. 42

हमारे न जाने हुए सब-कुछ का प्रतीक मान लें, तो मछली उस प्रतीक का प्रतीक हो जाती है जिसके द्वारा कवि अज्ञात सत्य का अन्वेषण करता है । यहाँ से अन्वेषण की पद्धति का अन्वेषण करें, तो और भी कई प्रतीक हमें मिलते हैं - सागर और मछली, नदी, सेतु, जल पर पड़ता प्रकाश, परछाँही, परछाँही को भेदनेवाली किरणें और अन्त में वह प्रकाशमान मछली जो परछाही को भेद जाती है - वह प्रतीक, जिसके द्वारा अन्वेषी स्वयं अपने अहंकार से उत्पन्न पूर्वाग्रहों की छाया के पार देख लेता है । वह निस्संगत साक्षात्कार बड़े महत्त्व की बात है ।[1]

"सौंदर्य शास्त्र के तत्व" नामक ग्रंथ में डॉ॰ कुमार विमल ने प्रतीकों और प्रतीकवादी आन्दोलन का विस्तृत अध्ययन किया है । अन्त में उन्होंने प्रतीकवादी दृष्टि को संक्षेप में प्रस्तुत किया है -

§1§ प्रतीकों का सौंदर्यशास्त्रीय अध्ययन प्रतीकों के दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक या समाजशास्त्रीय अध्ययन से भिन्न होता है । दार्शनिक दृष्टिकोण से किये गये अध्ययन में प्रतीक इतने व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है कि उसके अन्तर्गत शब्द, भाषा, मुद्रा एवं सम्पूर्ण वाङ्मय प्रतीक के क्षेत्र में पड़ते हैं । तदनन्तर, समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से किये गये अध्ययन में प्रतीकों को रूढ़ रीति-रिवाज़ों, धर्मपूजा एवं अन्य सामाजिक अनुष्ठानों से इस प्रकार सम्बद्ध कर दिया जाता है कि प्रतीकों का व्यक्तिगत मनोरागों से कोई सम्बन्ध ही नहीं बच पाता है । इसी तरह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से किये गये अध्ययन में प्रतीकों को व्यक्ति के अवचेतन मन दमित इच्छाओं और मानसिक स्वतः चालन से इस प्रकार मुद्रित कर दिया जाता है कि

---

1. अज्ञेय - आत्मनेपद - प्रतीक और सत्यान्वेषण शीर्षक निबन्ध से उद्धृत, पृ॰47

इन आधारों को स्वीकार कर लेने पर कला-जगत् में अनेक प्रकार की भ्रान्तियों का मार्ग प्रशस्त हो जाता है । इस तरह प्रतीकों के सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन का एक स्वतंत्र रूप है, हालांकि सौंदर्यशास्त्र अपने अध्ययन की परिपूर्णता केलिए दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक या समाजशास्त्रीय अध्ययन के ग्राह्य अंशों को निःसंकोच स्वीकार करता है ।

§2§ कला-जगत् के प्रतीकों पर सौन्दर्यशास्त्रीय विचार-विमर्श करते समय प्रतीक सन्दर्भ § Symbolic reference § को पर्याप्त महत्व दिया जाता है ।

§3§ प्रतीक-सृष्टि मनुष्य की चिन्तन-प्रणाली और क्रिया का एक आवश्यक अंग है । अन्य प्राणियों की तुलना में मनुष्य की कुछ श्रेष्ठ पृथकताओं अर्थात् विशिष्ट गुणों के बीच प्रतीक-सृजन की क्षमता प्रमुख है ।

§4§ ललितकला और सौन्दर्यशास्त्र की दृष्टि से प्रतीक के सम्बन्ध में युंग की मान्यताएं अन्य मनोवैज्ञानिकों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है । युंग ने प्रतीक सृजन को एक सांस्कृतिक प्रयास माना है । क्योंकि आद्यबिम्ब और सामूहिक अचेतन से सम्बद्ध भाव सामान्य अभिव्यक्ति-पद्धति की सीमाओं को पार कर उन प्रतीकों के रूप में व्यक्त होना चाहते हैं, जिनके लिए दृश्य और श्रव्य-कलाएं सर्वोत्तम अधिकरण सिद्ध होती है ।

§5§ कला-जगत् के प्रतीकों का सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टि से ही विश्लेषण होना चाहिए, क्योंकि कलात्मक प्रतीकों का निर्माण सामान्य जन के द्वारा नहीं, कलाकारों के द्वारा होता है । कलाकार स्वानुभूति के जिन अंशों को सामान्य अभिव्यक्ति के प्रचलित साँचों में नहीं ढाल पाता है,

उन अंशों की व्यंजना या अभिव्यक्ति के लिए ही वह प्रतीकों का सहारा लेता है । इस तरह कलाकार स्वानुभूति के अकथनीय अंशों को प्रतीक के द्वारा कथनीय और प्रेषणीय बनाता है ।

§6§ कला-जगत् के प्रतीक एवं अन्य प्रतीकों जैसे धर्म, दर्शन या विज्ञान के प्रतीकों में मुख्य अन्तर यह है कि धर्म, दर्शन अथवा विज्ञान के प्रतीक सर्वथा निर्धारित एवं स्वीकृत अर्थ रखते हैं । इन क्षेत्रों में प्रतीकों के निर्दिष्ट अभिप्राय और अर्थ के सम्बन्ध में प्रयोक्ता तथा श्रोता या पाठक अथवा द्रष्टा प्रायः एकमत होते हैं । किन्तु, कला के प्रतीकों में प्रयोक्ता और पाठक द्रष्टा या श्रोता के बीच किसी निर्धारित अर्थ के लिए ऐसा विश्रब्ध ऐकमत्य नहीं रहता है, बल्कि इसके विपरीत कला के प्रतीकों में अर्थ की सम्भावनाओं और नमनीयता का पर्याप्त महत्त्व रहता है । सचमुच कला के प्रतीकों में अर्थ-स्फीति होती रहती है, क्योंकि ये प्रतीक केवल प्रयोक्ता ही नहीं, पाठक के भी कल्पना बोध और उन्नत संवेदन से सापेक्षित सम्बन्ध रखते हैं ।

§7§ धार्मिक प्रतीक कला-जगत के प्रतीक से इस अर्थ में भी भिन्न होते है कि धर्म के प्रतीक लौकिक मनोराग या संवेग पर नहीं, विश्वास भावना पर निर्भर रहते हैं ।

§8§ काव्य एवं कलाजगत् के प्रतीक कवि, कलाकार अथवा आश्रय की अनुभूति या मनोदशा के व्यंजक हुआ करते हैं । इनमें एतावत्त्व के बदले सामान्य सादृश्य के साथ सूक्ष्म सांकेतिक तत्वों को महत्त्व दिया जाता है । इसलिए कला-जगत का एक प्रतीक अनेक स्तरों पर अपना कार्य करता है और अनेक प्रकार की मानसिक छवियां उत्पन्न करने में समर्थ होता है ।

§9§ कला-जगत के प्रतीकों में एक ही साथ गोपन और प्रकाशन की क्षमता रहती है, क्योंकि कला-जगत् के प्रतीकों का लक्ष्य कभी भी किसी वस्तु को ज्यों का त्यों रखना अथवा पुनः प्रत्यक्ष या पुनरुत्पादन नहीं रहता है ।

§10§ प्रतीक प्रयोग की अत्यन्त आवृत्ति के बाद अति सामान्य बन जाने पर अपने संकेत गर्भत्व और व्यंजना की वक्रता खो देते हैं । अतः प्रतीकों के "प्रतीकत्व" को सुरक्षित रखने केलिए यह आवश्यक है कि उनके नये अन्वेषणों के पौनः पुन्य का सचेष्ट निर्वाह किया जाय ।

§11§ काव्य-जगत् के प्रतीक विधान में शब्द प्रतीकों का विशेष महत्त्व है । ये शब्द प्रतीक प्रायः व्युत्पन्न प्रतीक होते हैं । इनका उद्भव शब्द-बिम्बों से होता है अथवा ये किसी पौराणिक आख्यान या किसी धार्मिक सम्प्रदाय की गुह्य साधना से लिये जाते हैं । ऐसे शब्द-प्रतीकों में मूल भाव या मूल वस्तु और व्युत्पत्ति से प्राप्त प्रतीकार्थ के मध्यस्थ सम्बन्ध सूत्र का निराकरण हो जाता है । फलस्वरूप ये प्रतीक आशु ग्राह्य नहीं होते हैं ।

§12§ काव्य एवं कला जगत में सूक्ष्म सौन्दर्य को व्यक्त करने केलिए प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है, क्योंकि प्रतीकों के बिना सूक्ष्म सौन्दर्य की अभिव्यक्ति असम्भव है ।

§13§ बिम्ब और प्रतीक में मुख्य अन्तर यह है कि बिम्ब-विधान में जहाँ सम्मूर्तन और चित्रोपमता को प्रधानता दी जाती है, वहाँ प्रतीक विधान में एक अभिव्यक्ति-लाघव के साथ किसी सूक्ष्म तत्त्व, सौन्दर्य या प्रभाव की संकेत - व्यंजना की जाती है ।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि बिम्ब भी कभी-कभी प्रयोग की आवृत्ति से किसी-विशेष अर्थ में प्रतिम्मित होकर प्रतीक का रूप धारण कर लेते हैं ।

§14§ प्रतीकों का प्रकार निर्धारण अब तक बहुत ही अनिश्चयात्मक और अव्यवस्थित रहा है । अतः प्रतीकों का प्रकार-निर्धारण भी बिम्बों की तरह ज्ञानेन्द्रियों अथवा ऐन्द्रिय प्रतीतियों के आधार पर होना चाहिए[1] ।

प्रतीकों के तात्त्विक विश्लेषण की दिशा में डॉ· प्रभात का "प्रतीक और प्रतीकवादी काव्य मूल्य तथा प्रभाकर श्रोत्रिय का "कविता की तीसरी आँख" नामक ग्रंथ विशेष उल्लेखनीय है अलावा इसके और भी कतिपय ग्रंथ इस दिशा में प्रकाशित है[2] ।

प्रतीक-वर्गीकरण

अनेक विद्वानों ने विभिन्न प्रतीकों पर पर्याप्त विचार किया है एं·एच· अब्रांस के अनुसार मुख्यः दो प्रकार के प्रतीक होते हैं - पारंपरिक और सार्वजनिक । अलावा इसके व्यक्तिगत प्रतीक भी हुआ करते हैं ।

प्रतीकों के सिद्धान्तों का §Theory of symbols § उद्घाटन नोर्थ्रप फ्राई ने किया है । उनके मूल्यांकन साहित्य के अध्ययन पर आधारित

1· डॉ· कुमार विमल - सौन्दर्य शास्त्र के तत्व, पृ·280-282

2· अ· चन्द्रकला - आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रतीकवाद
आ· नित्यानन्द शर्मा - आधुनिक हिन्दी कविता में प्रतीक विधान
इ· परिपूर्णानन्द वर्मा- प्रतीक-शास्त्र
ई· प्रभात - प्रतीकवादी काव्य - दृष्टि §अस्वीकृत उपलब्धियाँ
उ· वीरेन्द्रसिंह - हिन्दी-काव्य में प्रतीकवाद का विकास

बाहरी अनुशासनों में जकड़ी आलोचना का विरोध वे करते हैं । वे व्यवस्थित आलोचना के चार अंग स्वीकार करते हैं - ऐतिहासिक आलोचना (Historical Criticism) नैतिक आलोचना (Ethical Criticism) आद्यरूपात्मक आलोचना (Arche typal criticism) और भाषिक आलोचना (Rhetorical Criticism) नैतिक आलोचना में फ्राई प्रतीकों का सिद्धांत विवेचन करते हैं । फ्राई ने प्रतीकों के निम्नलिखित चार स्तरों का विवेचन किया है[2] -

§1§ अभिधात्मक और विवरणात्मक स्तर - इस स्तर में प्रतीक को अभिप्राय और चिह्न के रूप में समझा जाता है । पढ़ते समय हमारा ध्यान बाह्य और आभ्यन्तर दोनों दिशाओं में समान रहता है । शाब्दिक संरचना बाह्य रूप से समझे जाने पर किसी पदार्थ की बोधक होती है। इस प्रकार समझा गया प्रतीक चिह्न होता है । जब हम शाब्दिक संरचना को आभ्यन्तर रूप से समझते हैं, तब वह समग्र शाब्दिक संरचना के अंग रूप में सामने आती है और समग्र अर्थ की एक अंग होती है । इस रूप में शाब्दिक तत्व या प्रतीक अभिप्राय होता है । प्रत्येक पठन में ये दोनों पद्धतियाँ युगपत घटित होती है । सभी साहित्यिक शाब्दिक संरचनाओं में अर्थ की अन्तिम दिशा आभ्यन्तर होती है । साहित्यिक अर्थ को प्राक्कल्पना कहा जा सकता है । बाह्य विश्व से प्राक्कल्पनात्मक या यादृच्छिक संबंध

---

1. "Some symbols are 'conventional' or 'public, poets like all of us, use such conventional symbols; many poets, however, also use 'private' or 'personal symbols' which they develop themselves. Often they do so by exploiting, pre-existing and widely shared associations with an object or action."
   M.H. Abrams - A Glossary of Literary Terms,p.168-169

2. Ethical Criticism - Theory of symbols Literal and Descriptive phase - symbol as Motif and as sign.
   Formal phase - Symbol as Image
   Mythical phase - Symbol as Archetype
   Anagogic phase - Symbol as Monad
   Northrop Frye - Anatomy of Criticism (1971) pp.71-127

कल्पनात्मक शब्द के निहितार्थ का अंग है । साहित्य में सत्य या तथ्य के प्रश्न शब्दों की संरचना को, उसके अपने प्रयोजन के लिए उत्पादित करने के प्राथमिक साहित्यिक लक्ष्य से शासित होते हैं, और प्रतीकों के चिह्न-मूल्य अन्त: सम्बन्धित अभिप्रायों की संरचना के रूप में अपने महत्व से शासित होते हैं । इस प्रकार की स्वायत्त शाब्दिक संरचना ही साहित्य है ऐसी संरचना के अभाव में हमारे पास ऐसी साहित्यिक भाषा रह जाती है, जो किसी अन्य प्रयोजन की सिद्धि में मानव-चेतना की सहायक होती है । सम्प्रेषण की एक विशिष्ट रूप भाषा है और भाषा का एक विशिष्ट रूप साहित्य है[1] ।

§2§ रूपात्मक स्तर - इस स्तर पर प्रतीक का ग्रहण बिम्ब रूप में होता है । साहित्यिक आलोचना के सन्दर्भ में फ्राइ ने अभिप्रायार्थ को एक नया अर्थ दिया और विवरणात्मक अर्थ को साहित्यिक अर्थ के अधीन माना । रूप में शाब्दिक संरचना के उक्त दोनों पक्षों का समाहार होता है । एक ओर वह अभिप्रायार्थ या संरचना की एकता का द्योतक है तथा दूसरी ओर वह सन्दर्भ और सामग्री का द्योतक है, जो साहित्य में बाह्य प्रकृति के समावेश का बोध कराती है । शाब्दिक संरचना की वे इकाइयाँ जो कविता और अनुकृत प्रकृति के अनुपात को सादृश्य व्यक्त करती हैं, बिम्ब हैं । रूपात्मक समीक्षा कविता की बिम्बमात्विकता के

---

1. "The Criticism as well as the creation of literature reflects the distinction between literal and descriptive aspects of symbolism. 'The New Criticism' studies the symbolism of a poem as an ambiguous structure of interlocking motifs, it sees the poetic pattern of meaning as a self contained texture and it thinks of the external relations of a poem as being with the other arts;

Northrop Frye - An anotomy of Criticism, p.82

विशिष्ट प्रारूपों को उद्घाटित करने का दृष्टिकोण अपना कर चलती है।[1]

§3§ पुराकथात्मक स्तर इस स्तर पर प्रतीक को आद्यरूप की दृष्टि से समझा जाता है। रूपात्मक स्तर पर कविता का अध्ययन उसकी बिम्बमालिकाकी विशिष्ट संरचना का अध्ययन है। पुराकथात्मक स्तर पर कविता का काव्य की एक इकाई के रूप में अध्ययन किया जाता है। रूपात्मक स्तर का केन्द्रीय सिद्धान्त है कि कविता प्रकृति का अनुकरण है। फ्राई के अनुसार, कविता प्रकृति के अनुकरण के रूप में ही परीक्षित नहीं की जा सकती; वह दूसरी कविताओं के अनुकरण के रूप में भी परीक्षित की जा सकती है। विवेच्य कविता के, काव्य की एक इकाई के रूप में दूसरी कविताओं के साथ सम्बन्ध पर विचार करने से हम पाते हैं कि विधाओं का अध्ययन परम्परा के अध्ययन पर आधारित करना होगा। इस तरह के विषयों से सम्बद्ध समीक्षा का आधार प्रतीकवाद का वह पक्ष होगा, जो कविताओं को परस्पर सम्बन्धित करता है। अत: यह आलोचना अपने मुख्य कार्य-क्षेत्र के रूप में कविताओं को परस्पर सम्बद्ध करनेवाले प्रतीकों का चयन करती है। इसका अन्तिम विषय कविता की केवल प्रकृति के अनुकरण के रूप में ही स्वीकृति नहीं, बल्कि शब्दों की समवर्ती व्यावस्था द्वारा अनुकृत समग्र प्रकृति की व्यवस्था की स्वीकृति है।[2]

---

1. Formal criticism begins with an examination of the imagery of a poem, with a view to bringing out its distinctive pattern. The recurring or most frequently repeated images form the totality..... The work of imagination presents us with a vision, not of the personal greatness of the poet, but of something empersonal and for greater : the vision of a descisive act of man.'
Northrop Frye - An anotomy of criticism, p.94

2. "The problem of convention is the problem of how art can b communicable, for literature is clearly as much a techniq of communication as assertive verbal structures are .... The symbol in this phase is the communicable unit, to whic I give the name archetype : that is, a typical or recurri image. I mean by an archetype a symbol which conncets on poem with another and there by helps to unify and integra our literary experience. By the study of conventions and it attempts to fit poems into the body of poetry as a who
North rope Frye - Anatomy of Criticism, Chapter Theory of symbols,p.99

§4§ रहस्यात्मक स्तर आद्यरूपों का अध्ययन समग्र के अंश रूप साहित्यिक प्रतीकों का अध्ययन है । आद्यरूपों के अस्तित्व की स्वीकृति के उपरान्त इस दिशा में अगला कदम एक स्वयंलीन साहित्य-संसार की सम्भावना पर विचार करना है । रहस्यात्मक स्तर पर साहित्य मानव के समग्र स्वप्न का अनुकरण है और इस तरह वह मानव के उस विचार का अनुकरण है जो परिधि पर है; यथार्थ के केंद्र पर नहीं । इस स्तर पर वह कल्पनात्मक क्रान्ति पूर्ण होती है जो प्रतीकवाद के विवरणात्मक स्तर से रूपात्मक स्तर पर आने के बाद प्रारंभ हुई थी । प्रारम्भ में प्रकृति का अनुकरण बाह्य प्रकृति के प्रतिवर्त से एक ऐसे रूपात्मक संगठन में संचरित हुआ, जिसकी प्रकृति भाव थी । लेकिन रूपात्मक स्तर पर कविता अभी भी प्रकृति द्वारा धारित है और आद्यरूपात्मक स्तर पर समग्र काव्य प्रकृति की सीमाओं में धारित है । आद्यरूपात्मक स्तर से रहस्यात्मक स्तर पर आने पर प्रकृति धात्री नहीं बल्कि धारित पदार्थ होती है और आद्यरूपात्मक सार्वभौम प्रतीक प्रकृति में मानव द्वारा निर्मित वांछनीय रूप नहीं रहते, बल्कि स्वयं में प्रकृति के रूप बन जाते हैं । प्रकृति अब अनन्त मानव के चित्र में रहती है ।

साहित्य संसार का केंद्र वह कविता है, जिसे हम पढते हैं । कविता समस्त साहित्य का अणुरूप है; शब्दों की समस्त व्यवस्था की एक वैयक्तिक अभिव्यक्ति है । इस प्रकार रहस्यात्मक रूप में प्रतीक एक एकक है । वह सभी प्रतीकों को समाहित करनेवाला एक अनन्त और शाश्वत शाब्दिक प्रतीक है, जो कथ्य के रूप में प्रज्ञान है और कथा के रूप में समस्त सृजन-कार्य है । समीक्षा का रहस्यात्मक दृष्टिकोण साहित्य-संसार (स्वायत्तता का समर्थक है । उसके अनुसार साहित्य जीवन के यथार्थ की शाब्दिक सम्बन्धों की व्यवस्था में घटित करता है ।

प्रतीकों के उक्त स्तर पूर्ववत पद्धतियों के समानान्तर है । अभिधार्थ कथ्यात्मक व्यंग्यों की प्रविधियों से सम्बन्धित है । विवरणात्मक स्तर का निम्नानुकरणात्मक से और रूपात्मक स्तर का उच्चानुकरणात्मक से घनिष्ठ सम्बन्ध है । पुराकथात्मक स्तर रोमांटिक पद्धति से जुड़ा है । अन्तिम स्वर साहित्य के पुराकथात्मक पक्ष के समान्तर है[1] ।

प्रतीक संबंधी अपने सैद्धान्तिक ग्रन्थ में डॉ॰ प्रभाकर ने प्रतीकों की विपुल सम्पदा को मूल रूप से छह प्रकारों में वर्गीकृत किया है । हर प्रकार के अन्तरगत उन्होंने प्रतीकों की सूक्ष्मतम इकाइयों का विश्लेषण भी प्रस्तुत किया है । उनकी दृष्टि में प्रतीकों के निम्नांकित प्रकार है

(क) मूल मनोव्यापार के आधार पर

प्रतीकवादी कवि येट्स ने दो प्रकार के प्रतीकों की चर्चा की है भावात्मक और बौद्धिक । प्रतीक का मूलाधार भाव है । प्रतीकवादी सौंदर्यशास्त्र के अभिस्वीकृत व्याख्याता मालार्मे ने प्रतीक को सौंदर्यबोध से बांधा है । प्रतीक की आंतरिक ऊर्जा का स्त्रोत है बिम्ब और उसके बोध को जागृत करना है प्रत्यय । एक बिंबीय सरल प्रतीक और सम्मिश्रित जटिल प्रतीक इसके अंतरगत हैं ।

(ख) अभिव्यक्ति की बुनावट के आधार पर

रूपवादियों ने अभिव्यक्ति विधान की प्रकृति के आधार पर प्रतीकों के विभाजन किये हैं ।

---

1. Finally, identification belongs not only to the structure of poetry but to the structure of criticism as well, at least of commentary........... creative word which is all words. North rop Frye- Anatomy of Criticism,p.125

(ग) व्याप्ति के आधार पर वर्गीकरण

भाषिक संरचना जिन चिह्नों के माध्यम से भावानुभूति और विचार संप्रेषित करती है, वे सब व्यक्तिश: तथा सामूहिक रूप से प्रतीक धर्मी हो सकते हैं। आधुनिक कविता में जो लेखन-परंपरा से सामने आती है, विराम चिह्न और प्रश्नवाचक तक प्रतीकों का कार्य करते हैं।

(घ) अर्थ-संकेत के साधनों के आधार पर

प्रतीक अनिवार्यत: अर्थ की अभिव्यक्ति का कार्य अभिधा से प्रारंभ करता है और किसी मनोवैज्ञानिक आधार पर एक नये अर्थ की ओर संकेत करने लगता है।

(ङ) अन्तर्वस्तु के स्त्रोतों के आधार पर

प्रतीक एक ऐसी भाषिक संरचना होती है जिसमें बिंब और संप्रत्ययों की एक योजना द्वारा दूसरी की ओर संकेत किया जाता है। बिम्ब तथा संप्रत्यय किसी तथ्य, वस्तु या व्यापार के संवाहक-संकेतक होते है, जो प्रकृति या समाज से लिये जाते हैं। यही दोनों प्रतीक की अन्तर्वस्तु के मूल स्त्रोत है।

(च) प्रतीकों के तीन विशिष्ट क्षेत्र : धर्म, विज्ञान तथा साहित्य

धर्म, विज्ञान और साहित्य - ये सब विभिन्न मार्गों और अभिगमों से सत्य और उसकी शक्ति को पाने और उससे अपने को औरअपने परिवेश को अपने लक्ष्यों के अनुसार रूपायित करने का साधन है।

प्रतीकों का प्रयोग इन तीनों केलिए अनिवार्य हैं । पर अभिवृत्ति, अन्वेषण और अभिव्यक्ति के साधनों - माध्यमों की भिन्नता के कारण इनके प्रतीकों और प्रतीकीकरण की प्रवृत्तियों में अन्तर आ जाता है । प्रत्येक शब्द एक प्रतीक है । वह एक संप्रत्ययीय चिह्न है जो एक ओर वस्तु सत्ता की ओर संकेत करता है और दूसरी ओर उसके मानसिक बिम्ब, अवधारणा या उनके किसी अन्य तथ्य की ओर । प्रतीक प्रतिनिधिक चिह्न होता है, पर कुछ ऐसे तत्व हैं जो उसे कलात्मक व्यक्तित्व प्रदान करते हैं या कलात्मक अभिव्यक्ति में सक्रिय सार्थक भूमिका निभाने की क्षमता देते हैं ।

प्रतीकवाद

आधुनिक कविता पर प्रतीकवाद का गहरा प्रभाव है । आधुनिकता को "टेक्स" से विमोचन माननेवाले, नये साहित्य का स्रोत प्रतीकवाद मानते हैं[1] । कवि अनुभूति को प्रामाणिक मानने लगे । वे बाहर के किसी सत्ता के अनुशासन के विरुद्ध थे । शब्दों की महिमा पर वे विश्वास रखते थे । प्रतीकवादी कवि पाल वालरी ने उसे व्यक्त किया है[2] ।

---

1. "Those who Modernist literature, as a liberation of the text of the word, will probably point to symbolism as the source of the self-subsistent work that lives among the multiple privacies of its language and side rather with Edmund Wilson who in Axel's castle saw the foundations of modern literature in the development of symbolism and its fusion or comflict with Naturalism. Malcolm Bradbury - Modernism, p.206

2. Ibid, p.207

कुछ समालोचकों के अनुसार प्रतीकवाद का उदय कालरिडज से है । वे ही पहले कवि समालोचक हैं जिन्होंने शब्दशक्ति पर ध्यान दिया । उसके बाद क्रोचे, कोलिंगवुड, एर्नस्ट केस्सिरर, सूसन लांगर, ऐ·ए· रिच्चार्ड आदि समालोचकों ने शब्दों के विभिन्न आयामों के बारे में विचार किया है कालरिडज के बाद प्रतीकवादि विचारों को एडगर अल्लन पो ने प्रमुखता दी[1] ।

प्रतीकवाद का प्रारंभ फ्रांस में हुआ । उसके मसीहा चार्ल्स बाद्लेयर थे । अपने सिद्धान्तों को उन्होंने अपने सोनेट "करेस्पाण्डेन्स" में व्यक्त किया है[2] । उसमें कवि ने कहा है "वस्तुएं केवल वस्तुएं नहीं हैं,

---

1. "A poem ought to reveal 'the precision and rigid consequence of a mathematical problem' This aspect of poets criticism was to prove most attractive to Baudelaire and other French symbolist poets.

   Wimsatt Brooks - Literary Criticism. Ch.26, Symbolism, p.589

2. "Baudelaire expresses his conception in a sonnet entitled 'correspondances' where all nature is viewed as a temple, a natural temple whose living pillars are the trees. As the wind blows through these 'forests of symbols' confused words are now and then breathed forth. The poet, because of his special endowment, is able to apprehend these words, for in all things there is a symbolic sense and every object in nature has its special connection with a spiritual reality.
   Buy Michand - Documents (1947)
   Quoted from Literary criticism - Wimsatt Brooks, p.591

वरन् अपने पीछे छिपे हुए प्रत्ययात्मक रूपों की प्रतीक है । 1857 में उनके काव्य संग्रह Les Fleurs du Mal का प्रकाशन हुआ । उसमें उनकी आत्मा के स्वर गूंजते हैं[2] । इस आंदोलन को आगे बढ़ाने का श्रेय फ्रांस में रिंबो, वेरलेयिन, मल्लारमे एवं वालरी को प्राप्त है । बाद में इसका प्रभाव संपूर्ण यूरोप व अमेरिका में पड़ा, आरतरसिमनस, एनस्ट टौसन, येटस, एलियट, पाउंड, डैलान तोमस, हारट क्रेयन, कम्मिंगस, वालस स्टीवनस आदि कवि इन में प्रमुख हैं ।

---

1. "The double symbolist concept that reality is no more than a facade, concealing either a world of ideas and emotions within the poet, or an ideal world towards which he aspires, is associated in the cam of Bandelaire with the doctrine outlined in his celebrated sonnet correspondences. Sensations, for Bandelaire, are not merely sensations, they can convey thoughts or feelings.

   Charles Chadwick - Symbolism, p.8

2. "He wanted to take himself up, to correct himself as one corrects a picture or a poem. He wanted to be his own poem to himself, and that was the game he played on himself. No one had had a profounder experience of the insoluble contradiction inherent in creative activity.

   Jean - Paul Sartre - Bandelaire (1964) p.151

मलार्मे ने प्रतीकवादी मान्यताओं के निरूपण और व्यावहारिक क्रियान्वयन में एक अग्रदूत का कार्य किया[1]। हर मंगलवार उनके घर पर अनेक कवि व लेखक - जार्ज मूर, येट्स, ओस्कार वेल्ट आदि आया करते थे और उन्हें कविता एक पर्व सा बन गया है[2]।

मलार्मे की दृष्टि में काव्यगत प्रतीक के सही व्यक्तित्व की पहचान पाँच तत्वों द्वारा होती है -

1· रहस्यात्मकता (प्रतीक की प्रकृति रहस्यात्मक है)
2· सांकेतिकता (प्रतीक संकेत की भाषा में बोलता है)
3· अनेकता (एक से अधिक संकेत प्रतीक में निहित रहते हैं)

------------------ -- -- ------------------------

1. "..... In his theory and in his practice he was the conclusion and crown of symbolist movement".

   C.M. Bowra - Heritage of symbolism, p.1

2. "During the 1870's and the 1880's Mallarme came to be regarded as the Saint and Sage of the symbolist movement. His Tuesday receptions at which he talked with his friends about poetry became an institution. With Mallarme, the cultivation of poetry went far toward becoming a ritual and a cult".

   Wimsatt Brooks - Literary Criticism, p.592

भाषिक संरचना -- संकेत --- सामान्य संवेदन बिम्ब ---
संकेत --- दिवा - स्वप्न और विज़न जैसे सूक्ष्मतम संवेदन-बिम्ब ।

4· शब्द तथा शब्देतर [काव्य-प्रतीक शब्दात्मक ही नहीं होता, लय, तुक, छंद सभी प्रतीकात्मक हो सकते हैं]

5· वैयक्तिक अंतरंगता [काव्य-प्रतीक के संकेत के लक्ष्य होते हैं मानवीय मनोभूमि की सूक्ष्म स्वप्नयामी सत्ता" या शून्य के भीतर से झांकता हुआ आकाश जैसा कोई सीमाहीन सत्य]"[1]

बोदलयर व मल्लारमे के बाद प्रतीकवाद में पाल वालरि (Paul Valery) का स्थान है । लेकिन उनपर वरलेन की कविता का प्रभाव अधिक था। उसमें संगीतात्मक तत्व अधिक था[2] । वालमोर व लामार्टिन के गीतितत्व का भी प्रचुर प्रभाव पॉल वालरि में हम देख सकते हैं[3] । लेकिन सच्चे प्रतीकवादी कवियों में वरलेन को स्थान नहीं है ।

1· डॉ· प्रभाकर प्रतीक और प्रतीकवादी काव्य मूल्य, पृ·137

2. .... But verlaine's poetry is 'musical' in a more direct and literal sense. In his poetry, the words tend to be emptied of their intellectual content.
Wimsatt Cleanth Brooks - Literary Criticism, p.593

3. "Raymond says of verlaine that he was born to bring to its perfection the intimate and sentimental lyricism founded by Marceline Desbordes - Valmore and Lamartine.
Richard Wagner - From Baudelaire to Surrealism
Quoted from Literary Criticism, p.593

प्रतीकवादी कवि रिंबो कवि को ऋषि मानते थे[1]। काव्य वृत्ति को वे एक साधक की यात्रा मानते थे[2]। प्रतीकवाद में येट्स का ऐतिहासिक और कलात्मक महत्वहै । येटस के प्रतीक की निम्न लिखित विशेषतायें है

§1§ प्रतीक अस्तित्व के अदृश्य, अगोचर, आध्यात्मिक सार तत्व की व्यंजना करता है । वह आध्यात्मिक ज्योति का पारदर्शी लेम्प है ।

§2§ मानवीय भावावेश जिस वस्तु, व्यापार, चिन्तन के चारों ओर संचित हो जाता है, वह प्रतीक बन जाता है, दूसरे शब्दों में, कला-प्रतीक का प्राण तत्व "मानवीय भावना" में निहित है । वैचारिक प्रतीकों में भी भावना का संस्पर्श रहता है ।

§3§ प्रतीक के केन्द्र में रचनाकार की सृजनात्मक कल्पना कार्य करती है । इसी का दूसरा नाम "विज़न" है । इसलिए विज़न को "प्रतीकात्मक कल्पना" भी कहते हैं ।

§4§ प्रतीक जिसकी अभिव्यक्ति करता है, उसकीअभिव्यक्ति का वही एक मात्र साधन-माध्यम है । इस अर्थ में प्रतीक का कथ्य ही नहीं, स्वरूप भी अद्वितीय होता है ।

---

1. "In Rimband's conception, the poet is essentially a 'voyant', a seer."
   Wimsatt - Cleanth Brooks - Literary Criticism, p.594

2. "The voyant perceives those images that the unconscious reveals only fit fully and accidentally to the ordinary man. Rimband's famous recipe for the poet's activity reads thus : The poet makes himself voyant by a long, va reasoned derangement of all the senses.
   Ibid, p.594

§5§ प्रतीक के तीन आयाम होते हैं - §क§ रचनाकार का विज़न §ख§ विराट स्मृति और उससे सम्बद्ध अदृश्य सारतत्व तथा §ग§ भाषिक संरचना । तीनों मिलकर प्रतीक के अद्वितीय सृजनात्मक तथा व्यंजक व्यक्तित्व की रचना करते हैं -

§6§ प्रतीक रूपक तथा अन्योक्ति की तरह अभिव्यक्ति विधान है, पर दोनों से श्रेष्ठतर है[1] ।

येट्स के लिए कविता की पुर्नरचना व्यक्तित्व की पुर्नरचना है[2] । डेनिस डोनोग ने प्रतीकवादी येट्स का विस्तार से अध्ययन किया है[3] ।

प्रतीकवाद का उदय वैज्ञानिक यथार्थवाद के विरोध में हुआ । शिल्प की दृष्टि से प्रतीकवाद सौन्दर्योन्मुख था । प्रतीकवादी 'आइडियल ब्यूटी'[4] और आदर्श लोक में विश्वास रखते थे । प्रतीकवाद का असर

1· डॉ· प्रभात - प्रतीक और प्रतीकवादी काव्य मूल्य, पृ·140-141

2. Ashok Bhargava - Yeats (The poetry of W.B.Yeats(1979) p.10

3. Denis Donoghue - Yeats (1976) Fontana Modern Masters Editor Frank Kermode

4. "The essence of symbolism is its insistence on a world of ideal beauty and its conviction that this is realised through art.

C.M. Bowra - The Heritage of symbolism.

कविता में ही नहीं उपन्यास व नाटक में भी द्रष्टव्य है । संगीत और लय को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ । बिंबवादी कवि, टी॰ई॰ हूम व एसरा पाउंड, प्रतीकवादियों से प्रभावित थे । प्रतीकवाद ने विश्व भर के साहित्य पर विशेष कर नये साहित्य पर उचित प्रभाव डाला और वह सौन्दर्यवाद का रहस्यात्मक संस्करण बना रहा ।

नयी कविता और प्रतीक विधान

नयी कविता के दौर में अनेक प्रतीकात्मक रचनायें प्रकाशित हुई अत: नयी कविता में प्रतीक शिल्प स्तर तक सीमित एक काव्य संकेत मात्र नहीं है । कविता के आंतरिक शिल्प के रूप में प्रतीक कविताओं में उपस्थित हुए है । ऐसी भी कवितायें है जिनमें प्रतीकों का विन्यास बाहरी उपाधान के रूप में हुआ है । ऐसी कविताओं में भी बाहरी उपादान की परिधि तोड़कर प्रतीक का प्रसार बढ गया है और कविता की पूरी स्थिति को व्यापक बनाने का कार्य भी होता आया है । प्रतीकवादी काव्य दृष्टि में जो कलावादी चेतना है उसी का मात्र अनुसरण हिन्दी की कवियों ने किया नहीं है । प्रतीकों को व्यापक संदर्भ में पहचानने का उद्यम बहुत सारे कवियों में देखा जा सकता है । हिन्दी कविता की प्रतीकवादी दृष्टि ने पुन: हमारी पारम्परिक दृष्टि को पुनरुज्जीवित किया है

---

1. "It may well be in fact that the effects of symbolism have not yet ceased to reverberate and that the strangely real yet unreal world of so many works of literature written at the present day, the way in which they try to create and emotional state rather than to put across an intellectual message, and the unconventional forms which they so often will be seen, to be indebeted in no small measure to the symbolist poetry.
Charles Chadwick - Symbolism, p.59

तथा परंपरा को नये धरातल पर खड़ा करने का कार्य भी किया है। हमारे बहुत सारे सांस्कृतिक, ऐतिहासिक संदर्भ प्रतीकवत् होकर आये हैं। समकालीन वास्तविकता को भी प्रतीकात्मक ढंग से प्रस्तुत करने का कार्य नये कवियों ने किया है।

इसका एक दूसरा पक्ष भी है। मात्र प्रतीकों के प्रयोग से कविता का अनुभूत्यात्मक स्तर विकसित नहीं हो सकता है। प्रतीकों का सामान्य उल्लेख कविता केलिए प्रीतिप्रद बात नहीं है। अत: बहुत सारी कविताओं में प्रतीक प्रतीक-अवस्था तक सीमित रह गया है। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने नयी कविता की इस अवस्था के संबंध में विस्तार से लिखा है "हिन्दी की नयी कविता ने संदर्भों से प्रतीक तो बड़ी संख्या में विकसित किये। पर फिर उन प्रतीकों को गहरे अर्थ से संपृक्त कर सकने में वह बहुत बार असफल रही। इसका एक कारण तो सतत आंतरिक निष्ठा का अभाव अनुमानित किया जा सकता है। पर एक दूसरा कारण यह भी है कि नयी कविता ने आवश्यकता से कहीं अधिक प्रतीकों का प्रयोग करना चाहा। प्रतीकों की इस भारी संख्या को उत्पन्न करना आसान था, पर उनका पोषण करने केलिए जिस शक्ति-सामर्थ्य की अपेक्षा थी वह अधिकांश कवियों में न थी। इसलिए अधिकतर वे इन प्रतीकों से खिलवाड़ करते रहे - सफल कवि भी और असफल कवि भी। अधिकतर तो ऐसा हुआ है कि पूरी की पूरी कविता एक प्रतीक पर आधारित कर दी गयी है। इन बहुसंख्यक प्रतीकों ने नयी कविता का जितना अहित किया है उतना शायद किसी अन्य स्थिति ने नहीं। वास्तविक अर्थ-संपृक्ति के अभाव में इनमें से अधिकांश प्रतीक कथानक रूढ़ियाँ मात्र बनकर रह गये हैं, और ऐसा लगता है कि हिन्दी कविता में ढेर के ढेर बौने, चक्रव्यूह, नारंगी के छिलके, फौजी बूट, हिमालय और न जाने क्या-क्या डूब उतरा रहे हैं।"[1]

---

1. रामस्वरूप चतुर्वेदी - भाषा और संवेदना (तीसरा संस्करण 1981), पृ. 67

रामस्वरूप चतुर्वेदी का कथन उन कविताओं के लिए सही है जिनमें प्रतीकों का रचनात्मक विकास हुआ नहीं है । नयी कविता के दौर में अनेकों ऐसी कवितायें प्रकाशित हुई हैं जिनका रूप-स्तर और भावस्तर प्रतीकात्मक है ।

नयी कविता में प्रतीक विधान के विभिन्न रूप प्राप्त होते हैं। उदाहरण कुछ कविताओं का पूरा रचना शिल्प प्रतीकात्मक प्रतीक होता है । ऐसे कवियों में अज्ञेय और मुक्तिबोध के नाम विशेष उल्लेखनीय है । मुक्तिबोध की अधिकतर कविताओं का आन्तरिक रचना विधान प्रतीकवादी है । यह जरूर है कि सूक्ष्मता से देखा जाय तो कई प्रकार के काव्य बिम्ब और मिथक हमें प्राप्त हो जायेंगे । परन्तु मुक्तिबोध ने अपने आत्मसंघर्ष को तनावग्रस्त भाषा के माध्यम से वैयक्तिक संदर्भ से उभारते हुए एक ओर व्यापक संदर्भ से मिलाया, दूसरी तरफ कविता को प्रतीकात्मक रचना शिल्प बना दिया । उनकी अधिकांश कविताओं के शीर्षक भी इसके लिए उदाहरण है । उन्होंने अपनी "ब्रह्मराक्षस" नामक कविता में ब्रह्मराक्षस की चित्र को यों प्रस्तुत किया है -

शहर के उस ओर खंडहर की तरफ़
परित्यक्त सूनी बावड़ी
के भीतरी
ठण्डे अंधेरे में
बसी गहराइयाँ जल की
सीढ़ियाँ डूबी अनेकों
उस पुराने घिरे पानी में
समझ में आ न सकता हो
कि जैसे बात का आधार
लेकिन बात गहरी हो ।

बावड़ी को घेर
डालें खूब उलझी हैं,
खड़े हैं मौन औदुम्बर ।
व शाखों पर
लटकते घुग्घुओं के घोंसले
परित्यक्त, भूरे, गोल ।
विगत शत पुण्य का आभास
जंगली हरी कच्ची गन्धों में बसकर
हवा में तैर
बनता है गहन सन्देह
अनजानी किसी बीती हुई उस श्रेष्ठता का जो कि
दिल में एक खटके-सी लगी रहती ।
बावडी की इन मुँडेरों पर
मनोहर हरी कुहनी टेक
बैठी है टगर
उसके पास
लाल फूलों का लहकता झौंर -
मेरी वह कन्हेर
वह बुलाती एक खतरे की तरफ जिस ओर
अँधियारा खुला मुँह बावडी का
शून्य अम्बर ताकता है ।
बावडी की उन घनी गहराइयों में शून्य
ब्रह्मराक्षस एक पैठा है
व भीतर से उमडती गूँज की भी गूँज,
हडबडाहट - शब्द पागल से ।

गहन अनुमानिता
तन की मलिनता
दूर करने के लिए, प्रतिपल
पाप-छाया दूर करने के लिए, दिन-रात
स्वच्छ करने
ब्रह्मराक्षस
घिस रहा है देह
हाथ के पंजे, बराबर
बाँह-छाती-मुँह छपा छप
खूब करते साफ
फिर भी मैल।
फिर भी मैल!![1]

प्रस्तुत कविता के ब्रह्मराक्षस की नाना प्रकार की प्रतीकात्मक व्याख्या की गयी है। "ब्रह्मराक्षस मानवीय इतिहास की एक दुर्दमनीय प्रवृत्ति "अन्वीक्षा का प्रतीकीकरण है"[2]। चंचल चौहान के अनुसार ब्रह्मराक्षस मध्यवर्ग के अहंग्रस्त बुद्धिजीवी का प्रतीक है[3]। आज के जीवन के बहिरंग और अंतरंग संघर्ष के बीच में बिखरते हुए मनुष्य के रूप में भी उसे देखा जा सकता है। मुक्तिबोध के तनावग्रस्त व्यक्तित्व के रूप में भी देखा जा सकता है। कहीं वह अनैतिकता के प्रतीक का आभास भी देता है[4-5] जो भी हो उक्त कविता का यह लोक मिथक अनेकानेक प्रतीकार्थ छोड़ देता है। यही कविता की सफलता भी है।

---

1. मुक्तिबोध - चाँद का मुँह टेढा है (1981) पृ.7-8
2.
3. प्रतिबद्धकला के प्रतीक - मुक्तिबोध
4. मुक्तिबोध - चाँद का मुँह टेढा ह
4-5. डॉ.वीरेन्द्रसिंह - मुक्तिबोध काव्य बोध का नया परिप्रेक्ष्य (78), पृ

"दिमागी गुहान्धकार का ओरांगउटांग" नामक कविता का ओरांगउटांग एक ऐसा प्रतीक है जो मानव मन में छिपी हुई हिंसक और पाशविक वृत्तियों का स्वरूप है। ओरांगउटांग शब्द से आदिमता का प्रतीक भी उभरता है। आदिमता की ध्वनि सामयिकता को गहराती भी है।

कक्ष के भीतर
एक गुप्त प्रकोष्ठ और
कोठे के साँवले गुहान्धकार में
मज़बूत सन्दूक
दृढ़, भारी-भरकम
और उस सन्दूक भीतर कोई बन्द है
यक्ष
या कि ओरांगउटांग हाय
अरे ! डर यह है
न ओरांग उटांग कहीं छूट जाय,
कहीं प्रत्यक्ष न यक्ष हो।
करीने से सजे हुए संस्कृत प्रभामय
अध्ययन-गृह में
बहस उठ खड़ी जब होती है -
विवाद में हिस्सा लेता हुआ मैं
सुनता हूँ ध्यान से
अपने ही शब्दों का नाद, प्रवाह और
पाता हूँ अकस्मात
स्वयं के स्वर में
ओरांगउटांग की बौखलाती हुंकृति ध्वनियाँ।[1]

---

1. मुक्तिबोध - चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ. 14-15

"लकडी का बना रावण" नामक कविता में शोषण और जनतांत्रिक विश्वासों के प्रतीकों के रूप में रावण और वानर को प्रस्तुत किया गया है -

बढ़ न जायें
छा न जायें
मेरी इस अद्वितीय
सत्ता के शिखरों पर स्वर्णाभ
हमला न कर बैठें खतरनाक
कुहरे के जनतन्त्री
वानर ये, नर ये !![1]

प्राय: मुक्तिबोध की कविताओं में खण्डहरनुमा महलों और हवेलियों के प्रतीकात्मक चित्र प्राप्त होते ही रहते है । यह मात्र प्रतीकात्मक चित्र नहीं है । "वह हमारे समय की जिसमें अभी भी वर्गीय स्वार्थ सामान्य जन की आवाज घोंटने के प्रयत्न करते हैं और जहाँ बुद्धि-जीवी अभी भी जनसाधारण की तरफदारी करने में हिचक रहा है, आतंकित करती सच्चाई से गहरी संपृक्ति की कविता है । उनकी कविता में रहस्यमय संसार में हमारे समाज की विपन्नता और कष्ट, हिंसा और अमानवीयता सभी ठोस रूप में उजागर होते थे[2] । उनकी एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्म कथन नामक कविता की निम्न सूचित पंक्तियों में आतंक का पूरा वातावरण प्राप्त होता है, जिसे उन्होंने कई प्रतीकों के माध्यम से कभी बिम्बात्मक और कभी मिथकीय बना दिया है ।

1· मुक्तिबोध - चाँद का मुँह टेढा है, पृ·21

2· भारत भूषण अग्रवाल - कवि की दृष्टि §1978§, पृ·124

नक्शीदार कलात्मक कमरे भी ढह पडे,
जहाँ एक जमाने में
चूम गये होठ,
छाती जकडी गयी आवेशालिंगन में ।
पुरानी भीतों की बास मिली हुई
इक महक
तुम्हारे चुम्बन की
और उस कहानी का आँगारी आँग-स्पर्श
गया, मृत हुआ ।
हम एक ढहे हुए
मकान के नीचे दबे पडे हैं ।
हमने पहले कह रखा था महल गिर जाएगा ।
खूबसूरत कमरों में कई बार,
हमारी आँखों के सामने,
हमारे विद्रोह के बावजूद,
बलात्कार किये गये
नक्शीदार कक्षों में
भोले निर्व्याज नयन हिरनी-से
मासूम चेहरे
निर्दोष तन-बदन
दैत्यों की बाँहों के शिकंजों में
इतने अधिक
इतने अधिक जकडे गये
कि जकडे ही जाने के
सिकुडते हुए घेरे में वे तन-मन
दबते-पिचलते हुए एक भाप बन गये ।

एक कुहरे की मेह
एक धूमैला भूत,
एक देहहीन पुकार,
कमरे के भीतर और इर्द-गिर्द
चक्कर लगाने लगी ।
आत्म-चैतन्य के प्रकाश
भूत बन गये ।
भूत-बाधा-ग्रस्त
कमरों की अन्ध-श्याम साँय-साँय
हमने बतायी तो
दण्ड हमीं को मिला
बागी करार दिये गये,
चाँटा हमीं को पड़ा,
बन्द तहखाने में-कुओं में फेंक गये
हमी लोग !!
क्योंकि हमें ज्ञान था;
ज्ञान अपराध बना ।
महल के दूसरे
ओर-ओर कमरों में कई रहस्य-
तकिये के नीचे पिस्तौल
गुप्त ड्रॉअर,
गद्दियों के अन्दर छिपाये-सिये गये
खून-रँग पत्र, महत्वपूर्ण !!
अजीब कुछ फोटो !!

रहस्य-पुरुष छायायें
लिखती है
इतिहास इस महल का।[1]"

इस प्रकार मुक्तिबोध की कविताओं में से ठेठ सारे प्रतीक चुन लिये जा सकते हैं। यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय बात यह है कि उनकी कविताओं की प्रतीक व्यवस्था अर्थ के स्थानापन उपक्रम तक सीमित नहीं है। प्रस्तुत का वह अप्रस्तुत रचना विधान भी नहीं। उनके प्रतीकों में इतिहास और समाज का एक विराट चक्र घूमता ही रहता हैं।

अज्ञेय को एक विशिष्ट अर्थ में प्रतीकवादी कहें तो अनुचित नहीं होगी। लेकिन यह एक अतिरंजित कथन भी है। अज्ञेय ने अपने "आत्मनेपद" नामक ग्रंथ में काव्य प्रतीकों के संबंध में सविस्तार चर्चा की है। उन्होंने प्रतीकों के सनातनत्त्व को भी स्वीकार किया है। उनका कथन है "कुछ विशेष प्रतीक-रूप ऐसे होते हैं जो चिर काल केलिए स्थिर हो जाते है, व्यापक हो जाते हैं। यह इसलिए है कि प्रतीक वास्तव में ज्ञान का एक उपकरण है। जो सीधे-सादे अभिधा में नहीं बंधता, उसे आत्मसात् करने या प्रेषित करने केलिए प्रतीक काम लेते हैं। जो जिज्ञासायें सनातन हैं उनके निराकरण करनेवाले "प्रतीक" भी सनातन हो जाते हैं।[2]" अज्ञेय की कविताओं के आंतरिक शिल्प में, जैसे कि मुक्तिबोध की कविता के संबंध में बताया गया है, एक गहरी प्रतीक व्यवस्था है। लेकिन अज्ञेय के प्रतीक

---

1. मुक्तिबोध - चाँद का मुँह टेढा है, पृ.53-55
2. अज्ञेय - आत्मनेपद, पृ.47

उनकी कवि दृष्टि से परिचालित है । अज्ञेय की बहु चर्चित कवितायें प्रतीकात्मक ही है । व्यक्तित्व की खोज और स्वतंत्रता की कामना उनके जीवन दर्शन के प्रमुख अंग है । अपने व्यक्तित्व को स्वतंत्र रखते हुए वे विस्तृत समष्टि के साथ बाँधना चाहते हैं । यह भाव सत्य उनकी "नदी के द्वीप" नामक कविता की विषय वस्तु है । नदी और द्वीप के प्रतीकों के माध्यम से उन्होंने इसे प्रभावात्मक ढंग से व्यक्त किया । इस कविता का केंद्रीय प्रतीक है "रेत" । बहना रेत होना है, अर्थात् प्रवाह के बीच व्यक्ति सत्ता का कोई मूल्य नहीं है ।

"हम नदी के द्वीप है ।
हम नहीं कहते कि हम को छोड़कर स्त्रोतस्विनी बह जाय ।
वह हमेंआकार देती है
हमारे-कोण, गलियाँ, अन्तरीप, उभार, सैकत-कूल
सब गोलाइयाँ उसकी गढ़ी है ।
मॉं है वह । है इसी से हम बने हैं ।
किन्तु हम हैं द्वीप । हम धारा नहीं है
स्थिर समर्पण है हमारा । हम सदा से द्वीप है स्त्रोतस्विनी के
किन्तु हम बहते है नहीं हैं । क्योंकि बहना रेत होना है
हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं ।
पैर उखड़ेंगे । प्लवन होगा । ढहेंगे x सहेंगे । बह जायेंगे ।
और फिर हम चूर्ण होकर भी कभी क्या धार बन सकते ?
रेत बनकर हम सलिल को तनिक गँदला ही करेंगे
अनुपयोगी ही बनायेंगे ।
द्वीप हैं हम । यह नहीं है शाप । यह अपनी नियति है ।

हम नदी के पुत्र हैं । बैठे नदी की क्रोड में
वह बृहद् भूखंड से हम को मिलाती है ।
और वह भूखंड अपना पितर है[1] ।"

अत: उस क्षण को कवि अधिक महत्व देते हैं जो अपने आलोक से जाज्वल्यमान हो । सागर के साथ बने रहने में बूंद का कोई अस्तित्व नहीं है इसलिए उछलते समय अपना विमोचन अनुभव करती है ।

"मैं ने देखा
एक बूंद सहसा
उछली सागर के झाग से -
रंगी गयी क्षण-भर
ढलते सूरज की आग से ।
- मुझको दीख गया
हर आलोक-छुआ अपनापन
है उन्मोचन
नश्वरता के दाग से[2] ।"

अपनी प्रारंभिक कविताओं में हारिल पक्षी अज्ञेय का प्रिय प्रतीक रहा । वह भी अस्तित्व का प्रतीक है । बाद की कविताओंमें मछली उनका प्रिय प्रतीक बन गया है । "अज्ञेय की कविता का अर्थ शायद उ मछली में ही है, जिसे सभी दिशाओं में सागर घेर रहा है[3] ।"

1· अज्ञेय - पूर्वा {1965} पृ·1951-1952

2· अज्ञेय - अरी ओ करुणा प्रभामय {प्रथम संस्करण, 1959}, पृ·140

3· विश्वनाथ प्रसाद तिवारी {सं·} - अज्ञेय {1978}, पृ·59

"अर्थ हमारा
जितना है, सागर में नहीं
हमारी मछली में है
सभी दिशा में सागर जिसको घेर रहा है[1] ।"

जिजीविषा के प्रतीक के रूप में सोन मछली का चित्रण भी उन्होंने किया है ।

"हम निहारते रूप,
काँच के पीछे
हाँप रही है मछली
रूप-तृषा भी रूप-तृषा भी
(और काँच के पीछे)
है जिजीविषा[2] ।"

अज्ञेय की चर्चित कविता "असाध्य वीणा" सृजन के रहस्य को ढूँढ पाने की कविता है, इसमें जो कथा आयी है, वह मात्र कथा नहीं है बल्कि उस कविता की प्रतीक व्यवस्था भी है । "असाध्य वीणा" की विशेषता यही है कि उसमें प्रतीक, बिम्ब एवं मिथकों का समुचित समन्वय हुआ है । वीणा का स्वर अलग-अलग श्रोता अलग-अलग ढंग से सुनता है । इस प्रकरण में कविता का प्रतीकात्मक वातावरण और अधिक विकसित दीखता है ।

1· अज्ञेय अरी ओ करुणा प्रभामय, पृ·168

2· वही

"सबने भी अलग अलग संगीत सुना ।
इसको
वह कृपा-वाक्य था प्रभुओं का -
उसको
आतंक-मुक्ति का आश्वासन
इसको
वह भरी तिजोरी में सोने की खनक -
उसे
बटुली में बहुत दिनों के बाद अन्न की सोंधी खुदबुद ।
किसी एक को नयी वधू की सहमी-सी पायल-ध्वनि ।
किसी दूसरे को शिशु की किलकारी ।
एक किसी को जाल फँसी मछली की तड़पन -
एक अपर को चहक मुक्त नभ में उड़ती चिड़िया की ।
एक तीसरे को मंडी की ठेलमठेल, ग्राहकों की अस्पर्द्धा भरी बोलि
चौथे को मन्दिर की तालयुक्त घंटा-ध्वनि
और पाँचवें को लोहे पर सधे हथौड़े की सम चोटें
और छठे को लंगर पर कसमसा रही नौका पर लहरों की
अविराम थपक
बढ़िया पर चमरौधे की रूंधी चाप सातवें के लिए -
और आठवें को कुलिया की कटी मेड़ से बहते जल की छुल छुल ।
इसे गमक नट्टिन की एड़ी के घुँघरू की -
उसे युद्ध का ढोल
इसे संझा गोधूली की लघु टुन-टुन-
~~उसे प्रलय का डमरू-नाद~~ ।
उसे प्रलय का डमरू-नाद ।
इस को जीवन की पहली अँगड़ाई
पर उस को महाजृम्भ विकराल काल ।"[1]

---

1. अज्ञेय - आँगन के पार द्वार, पृ.73-74

सूर्य के मिथकीय प्रतीक को उन्होंने तो अलग-अलग प्रतीकों के रूप में लिया है । "बावरा अहेरी" में सूर्य प्रज्ञा का मिथकीय प्रतीक है ।

"बावरे अहेरी रे
कुछ भी अवध्य नहीं तुझे, सब आखेट हैं
एक बस मेरे मन-विवर में दुबकी कलौंस को
दुबकी ही छोड़कर क्या तू चला जाएगा ?
ले, मैं खोल देता हूं कपाट सारे
मेरे इस खंडहर की शिरा-शिरा छेड दे
आलोक की अनी से अपनी,
गढ़ सारा ढाह कर ढूह भर कर दे
विफल दिनों की तू कलौंस पर माँज जा
मेरी आँखें आँज जा
कि तुझे देखूं
देखूं और मन में कृतज्ञता उमड आय
पहनूं सिरोपे - से ये कनक तार तेरे
बावरे अहेरी रे ।"[1]

"हिरोशिमा" नामक कविता में वह एक समकालीन प्रतीक है -

"एक दिन सहसा
सूरज निकला
अरे क्षितिज पर नहीं
नगर के चौक
धूप बरसी
पर अन्तरिक्ष से नहीं
फटी मिट्टी से

---

1. अज्ञेय - बावरा अहेरी (प्रथम संस्करण 1954), पृ. 16-17

छायाएँ मानव-जन से
दिशाहीन ।"

परवर्ती कविताओं में भी अज्ञेय की प्रतीकन-प्रणाली विकसित दीखता है । "आँगन की पार द्वार" की कविताओंमें ईसाई दर्शन के सूक्ष्म प्रतीक प्राप्त होते हैं, जो "अरी ओ करुणा प्रभामय" में बौद्ध दर्शन के अनेक प्रतीक उपलब्ध होते हैं । करुणा और नम्रता के प्रतीक इन संग्रहों में उपलब्ध होता है ।

भारतीयता की सूक्ष्म संवेदना का प्रतीक "कितनी नावों में कितनी बार" नामक कविता में प्राप्त किया जा सकता है । उसमें दो प्रकार के ज्योतिपुंजों की प्रतीक व्यवस्था है ।

"कितनी दूरियों से कितनी बार
कितनी डगमग नावों में बैठकर
मैं तुम्हारी ओर आया हूँ
ओ मेरी छोटी-सी ज्योति !
कभी कुहासे में तुम्हें न देखता भी
पर कुहासे की ही छोटी-सी रुपहली झलमल में
पहचानता हुआ तुम्हारा ही प्रभामण्डल ।
कितनी बार मैं
धीर, आश्वस्त, अक्लान्त-
ओ मेरे अनबुझे सत्य ! कितनी बार
और कितनी बार कितने जगमग जहाज़

---

1. अज्ञेय - अरी ओ करुणाप्रभामय (प्रथम संस्करण) 1959, पृ. 154

मुझे खींचकर ले गए हैं कितनी दूर
किन पराये देशों की बेदर्द हवाओं में
जहाँ नंगी अँधेरों को
और भी उघाड़ता रहता है
एक नंगा, तीखा, निर्मम प्रकाश-
जिसमें कोई प्रभामण्डल नहीं बनते
केवल चौंधियाते हैं तथ्य, तथ्य-तथ्य -
सत्य नहीं, अन्तहीन सच्चाइयाँ
कितनी बार मुझे
खिन्न, विकल, संत्रस्त -
कितनी बार।[1]"

शमशेर बहादुर सिंह की सररियलिस्ट कवितायें प्रतीकात्मक ही हैं। विघटित प्रतीकों एवं बिम्बों से जिस प्रकार एक सररियलिस्ट चित्र बन जाता है उसी प्रकार शमशेर भी सररियलिस्टिक प्रतीकों के माध्यम से कविता रचते हैं।

"शिला का खून पीती थी
वह जड़
जो कि पत्थर थी स्वयं
सीढ़ियाँ थी बादलों की झूलती,
टहनियों-सी।
और वह पक्का चबूतरा,
ढाल में चिकना

---

1. अज्ञेय - कितनी नावों में कितनी बार (चतुर्थ संस्करण 1983), पृ.20

मुतल था
आत्मा के कल्पतरु का ?"[1]

प्रेम भावना के सररियलिस्ट प्रतीक "टूटी हुई बिखरी हुई" नामक कविता में प्राप्त होता है । प्रस्तुत कविता के संबंध में रघुवीर सहाय की प्रतिक्रिया इस प्रकार है इस कविता से एक बार गुज़र जाने पर एक अद्वितीय अनुभव हुआ । जैसे प्रेम है - पूरे शरीर और मन की कार्य वाही - वैसे ही प्रेम की कविता भी है । पूरे अनुभव यंत्र की सर्जनात्मक क्रिया जिसमें यह असंभव है कि रचयिता कला की किसी एक विधा को ही पकडे रहे । हर कलाकार दूसरी विधाओं को बरतता है पर कितना अधिक और कितना अच्छा संपुजन उनका हो पाता है, यही उसकी रचना की विशेषता की पहचान होती है[2] ।

"दोपहर-बाद की धूप-छाँह में खड़ी इन्तज़ार की ठेले गाडियाँ
जैसे मेरी पसलियाँ
खाली बोरे सूजों से रफू किये जा रहे हैं जो
मेरी आँखों का सूनापन हैं
ठंड भी एक मुस्कराहट लिये हुए है
जो कि मेरी दोस्त है ।
कबूतरों ने एक गज़ल गुनगुनायी
मैं समझ न सका, रदीफ-काफिये क्या थे
इतना खफीफ, इतना हलका, इतना मीठा
उनका दर्द था ।

---

1. शमशेर - कुछ कविताएँ व कुछ और कविताएँ (1984), पृ.155
2. मलयज, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना (सं) - शमशेर - रघुवीर सहाय का लेख "टूटी हुई बिखरी हुई एक प्रतिक्रिया, पृ.125

आसमान में गंगा की रेत आईने की तरह हिल रही है ।
मैं उसी में कीचड़ की तरह सो रहा हूं
और चमक रहा हूं कहीं
न जाने कहां
मेरी बांसुरी है एक नाव की पतवार -
जिसके स्वर गीले हो गये हैं,
छप्-छप्-छप् मेरा हृदय कर रहा है
छप्-छप्-छप् ।[1]

नयी कविता के प्रतीकों पर विचार करते समय यह एक दिलचस्प पक्ष है कि बहुत सारे नये कवियों ने महाभारत के कथा संदर्भों को अपनी प्रतीकात्मक अवधारणा में परिवर्तित किया है । यहां कथासंदर्भों का पुनराख्यान नहीं है । आधुनिक इतिहास के समान्तर ये प्रतीक विकसित होते रहते है, इनमें परिवेश का ताप मिला हुआ रहता है । यह सिर्फ प्रतीकात्मक संदर्भ की ही बात नहीं है बल्कि नयी कविता की भीतरी स्थिति को भी द्योतित करता है, जैसे मुक्तिबोध ने लिखा है - रचना-प्रक्रिया के भीतर, न केवल भावना, कल्पना, बुद्धि और संवेदनात्मक उद्देश्य होते हैं, वरन् वह जीवनानुभव होता है, जो लेखक के अन्तर्जगत का अंग है, वह व्यक्तित्व होता है, जो लेखक का अन्तर्व्यक्तित्व है, वह इतिहास होता है, जो लेखक का अपना संवेदनात्मक इतिहास है[2]।" संवेदनात्मक इतिहास कविता के समस्त पक्षों में कवि दृष्टि का बोध भी कराता है । जैसे महाभारत से गृहीत प्रतीकों का संबन्ध है, उनका महाभारत के कथा संदर्भों तथा संवेदनात्मक इतिहास से भी संबंध है । कुंवरनारायण की "चक्रव्यूह" की विरासत नामक उद्धरणीय है ।

---

1. मलयज, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना (सं): शमशेर
   रघुवीर सहाय का लेख - टूटी हुई बिखरी हुई - एक प्रतिक्रिया, पृ. 109
2. गजानन माधव मुक्तिबोध - नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र (1971), पृ. 82

कौन कल तक बन सकेगा कवच मेरा ?
युद्ध मेरा मुझे लड़ना
इस महाजीवन सफर में अन्त तककटिबद्ध
सिर्फ मेरे ही लिए यह व्यूह मेरा
मुझे हर आघात सहना
गर्भ-निश्चल में नया अभिमन्यु, पैतृक युद्ध ।[1]

इन पंक्तियों के अंत में प्रयुक्त "पैतृक युद्ध" शब्द में कविता का पूरा प्रतीकात्मक विन्यास उभरता है ।

दुष्यन्तकुमार ने भी "चक्रव्यूह" और "अभिमन्यु" के प्रतीक लिये हैं । संघर्ष करते हुए व्यक्ति के प्रतीक के रूप में इसमें अभिमन्यु का प्रतीकात्मक चित्रण हुआ है ।

वह चक्रव्यूह भी बिखर गया
जिसमें घिरकर
अभिमन्यु समझता था खुद को ।
सारे आक्रामक चले गए,
आक्रमण कहीं से नहीं हुआ,
बस मैं ही दुर्निवार तम की चादर जैसा
अपने निष्क्रिय जीवन के ऊपर फैला हुआ पड़ा हूँ
बस मैं ही एकाकी इस युद्ध स्थल के बीच खड़ा हूँ ।
यह अभिमन्यु न बन पाने का क्लेश,

---

1. कुँवर नारायण - चक्रव्यूह (प्रथम संस्करण 1956), पृ. 103

यह उससे भी कहीं अधिक क्षत-विक्षत मन का देश;
उस युद्धस्थल से भी ज्यादा भयप्रद रौरव
मेरा हृदय-प्रदेश;
इतिहासों में नहीं लिखा जाएगा ।
और इस तम में छिपी हुई कौरव सेनाओ ।
आओ !
हर धोखे से मुझे लील लो,
मेरे जीवन को दृष्टान्त बनाओ ।
नए महाभारत का व्यूह रचूँ मैं ।
कुण्ठित शस्त्र भले हो हाथों में
लेकिन
लड़ता हुआ मरूँ मैं[1] ।"

धर्मवीर भारती ने भी चक्रव्यूह और अभिमन्यु के प्रतीक अपनाये हैं

मैं "रथ का टूटा पहिया हूँ"
लेकिन मुझे फेंको मत ।
क्या जाने कब
इस दुरूह चक्रव्यूह में
अक्षौहिणी सेनाओं को चुनौती देता हुआ
कोई दुस्साहसी अभिमन्यु आकर घिर जाये[2] ।"

---

1. दुष्यन्तकुमार - दृष्टांत नयी कविता, अंक चार, पृ. 13।
2. धर्मवीर भारती - सात गीत वर्ष पृ. 92-93

कुंती और कर्ण के कथा संदर्भ को दुष्यंत कुमार ने प्रतीक के रूप में लिया है जहाँ कुंती व्यक्ति मन की कुण्ठा के रूप में आया है -

"गर्भवती हैं -
मेरी कुंठा क्वारी कुन्ती
बाहर आने दूँ तो लोक लाज मर्यादा
भीतर रहने दूँ तो घुटन साहस से ज्यादा ।"[1]

अजित कुमार की कविता में कर्ण के प्रतीक को लेकर महाभारत के कर्ण के विरुद्ध आचरण करते दिखाया गया है ।

"धर्मयुद्ध को हम धर्मयुद्ध नहीं मानते
हम तो है "वीर कर्ण"
धीर कर्ण । मूर्ख नहीं
दान नहीं देंगे हम
कवच और कुण्डल हम कभी नहीं त्यागेंगे[2] ।

हरिनारायण व्यास ने चीरहरण प्रसंग को प्रतीकत्व किया है, जो समकालीन सच्चाई के साथ मिलकर एक व्यापक संदर्भ को द्योतित करता है ।

द्रौपदी-सी चीखती है नारियाँ निर्वस्त्र
जिनके चीर "दु:शासन" कहीं पर
फेंक आया खींच कर[3] ।

---

1. दुष्यन्तकुमार - सूर्य का स्वागत, पृ.11
2. अजितकुमार - अकेले कंठ की पुकार, पृ.55
3. हरिनारायण व्यास - दूसरा सप्तक, पृ.71

लक्ष्मीकान्त वर्मा ने धृतराष्ट्र और अभिमन्यु के प्रतीकों के माध्यम से संघर्ष के आह्वान को बुलन्द किया है ।

तुमने माँगा है आज रक्त
ओ "धृतराष्ट्र" की सन्तानों
मैं दूँगा
मैं दूँगा अपना भविष्य अभिमन्यु
किन्तु कहो उस अन्धे धृतराष्ट्र से
उस माँ प्रसूता करुणा से
यह बनावटी पट्टियाँ आँखों से उतारे[1] ।"

औपनिषदिक कथासंदर्भ का प्रतीकीकरण कुँवर नारायण द्वारा रचित आत्मजयी में हुआ है । नचिकेता के प्रसंग का ग्रहण कवि और युग की विशेष मन:स्थिति का परिचायक है । क्योंकि औपनिषदिक नचिकेता यहाँ आधुनिक चिंतन का प्रतीक बनकर आया है । कवि ने ऐसा प्रतीक चुना है, जो वर्तमान स्थितियों-संदर्भों में उसे उचित ज्ञात हुआ । स्पष्ट ही आत्मजयी में "कठोपनिषद" के आख्यान की पुनरावृत्ति नहीं है[2] ।" नचिकेता की पीडा संकटों से घिरे हुए युग में छटपटाते हुए मनुष्य की पीडा है

मेरी नींद-मेरा आस-पास है,
मेरी जागृति-एक व्यथा का आभास है ।
संसार आग्रह किसी स्वप्न का -
जो मुझ पर ही आश्रित है
छूते ही चीज़ें मुझमें से छन जाती
और मैं विपर्यस्त हवाओं की तरह
सर्वत्र बिखर जाता हूँ[3] ....

1· लक्ष्मीकान्त वर्मा - नयी कविता, अंक 7, पृ·156
2· विजया शर्मा - आत्मजयी - चेतना और शिल्प, पृ·11
3· कुँवरनारायण - आत्मजयी, पृ·37

दुष्यन्तकुमार का काव्य नाटक "एक कण्ठ विषपायी" भी पौराणिक कथा का पुनर्सृजन होने के कारण प्रतीकात्मक सिद्ध होता है। अपने इस काव्य नाटक के संबंध में दुष्यन्त कुमार ने यों लिखा है - "एक कंठ विषपायी" मेरा पहला काव्य नाटक है। इसकी कथा के सूत्र एक दिन यों ही बातचीत के दौरान श्री अनन्त मराल शास्त्री ने मेरे हाथों में थमा दिए थे। उसी दिन मुझे लगा था कि जर्जर रूढ़ियों और परम्परा के शव से चिपटे हुए लोगों के संदर्भ में प्रतीकात्मक रूप से आधुनिक पृष्ठभूमि और नये मूल्यों को संकेतित करने केलिए इस कथा में पर्याप्त सामर्थ्य है तथा इस पर एक खण्डकाव्य लिखा जा सकता है। इसके बाद, मैं ने इस विषय में जितना सोचा कथा मेरे ऊपर उतनी ही हावी होती गई। और कुछ दिन बाद मैं ने पाया कि मैं एक काव्य नाटक के पहले अंक का पटाक्षेप कर रहा हूँ।[1] प्रस्तुत काव्य नाटक में सत्ता की अनैतिकता को दक्ष के माध्यम से प्रतीकबद्ध किया गया है। वारिणी के शब्दों में उस सत्ता के प्रति विरोध प्रकट है।

शिथिल व्यवस्था नहीं
हृदय की सहज-जात दुर्बलता है यह
जैसे हर मनुष्य
अपनी सामर्थ्य और सीमा के भीतर
जीवित
किसी सत्य के सहसा कट जाने पर
व्याकुल हो उठता है

---

1. दुष्यन्तकुमार - एक कंठ विषपायी (1979) आभार कथा, पृ.7

या क्रोधित हो उठता है
वैसे ही आप भी दुखी है
अपने घर की
सोनचिरैया उड जाने पर[1]।"

"नरेश मेहता के दो काव्य "संशय की एक रात" और "महाप्रस्थान" भी प्रतीकात्मक वातावरणों से युक्त है। "संशय की एक रात" में नरेश मेहता ने युद्ध की विभिषिका को रेखांकित किया है। राम कथा के विन्यास में उन्होंने प्रतीकात्मक तत्वों को अपनाया है। विभीषण के प्रश्न के सामने राम का मौन हो जाना उसी विभीषिका की प्रतीकवत् अवस्था को सूचित कर रहा है -

रावण ! या तो हम काम किया करते हैं
लेकिन जब काम नहीं होता
तो संशय किया करते हैं
काम सामूहिक अन्धता है
और संशय वैयक्तिक अन्धता
मित्र !
इस अन्धता से कोई भी मुक्त नहीं[2]।"

राम विभीषण को प्रकट में कोई उत्तर नहीं देते। किन्तु स्पष्ट ही विभीषण की मानसिक स्थिति का यह तीखा अनुभव उन्हें कहीं

---

1. दुष्यन्तकुमार - एक कंठ विषपायी, पृ. ९
2. नरेश मेहता - संशय की एक रात

अन्तर्मन में बिद्ध कर गया है । युद्ध की अनिवार्यता के अनेकानेक तर्क उन्होंने पितात्मा और जटायु और हनुमान और लक्ष्मणादि के मुख से सुने और झेले थे, किन्तु इस अतर्कित तर्क केलिए संभवत: वे प्रस्तुत नहीं थे । यह तर्क विषण्णता का, अपने ही आत्म-निर्णय से अकेले हो गये व्यक्ति का तर्क है ।[1]"

"महाप्रस्थान" का युधिष्ठिर मानव मुक्ति का प्रतीक मनुष्य है । प्रस्तुत काव्य के यात्रा पर्व में जिस हिम प्रदेश का वर्णन है, वह मात्र वर्णन नहीं है, बल्कि वहाँ नरेश मेहता ने काल पुरुष के प्रतीक को उपस्थित करके जीवन के आत्यंतिक सत्य की ओर इशारा किया है ।

धर्म चक्र यह -
झरते जिससे अहोरात्र
निशि-पल-घट-घड़ियाँ
युद्धों की दुर्दम्य तुमुलता,
इतिहासों के रक्त-स्नान
उत्थान-पतन,
जयघोषों - चीत्कारों के हर्ष-शोक,
ऋतुओं की लालित्य-रौद्रता,
सागर की चान्द्रिक आकुलता ।
सूर्य-चन्द्र, नक्षत्र, अपर ब्रह्माण्ड
सभी चक्रायित
प्रति-चक्रायित इस काल चक्र में ।

---

1. रमेश चन्द्र शाह - समानान्तर (1977), पृ. 129

एक सनातन प्रश्न
यज्ञ की धूमाग्नि सा शाश्वत उठता-
है कौन नियन्ता
कार्य और कारण जिससे उद्भूत हो रहे ?
जो अनन्त आकाशों में व्यापी है
वह काल पुरुष -
जो पूर्णविरूप
धूमाग्नि पी रहा ?
नक्षत्रों की वहन राशियाँ
अवधूत-भाव से
घटनाओं का बाडम्बर धारे
है घूमा रहा
कोटि नभ गंगाओं की, धुरियों पर
इस धर्म चक्र को ?"[1]

जब कविता समाज के साथ द्वंद्व की स्थिति में रहती है, तो गहरी सच्चाइयों के साथ प्रतिकृत होने की स्थिति बढ़ती रहती है। मुक्तिबोध ने ठीक ही लिखा है "नयी कविता, वैविध्यमय जीवन के प्रति आत्मचेतस व्यक्ति की संवेदनात्मक प्रतिक्रिया है चूँकि आज का वैविध्यमय जीवन विषम है, आज की सभ्यता ह्रास-ग्रस्त है, इसलिए आज की कविता में तनाव होना स्वाभाविक ही है। किसी भी युग का काव्य अपने परिवेश से या तो द्वन्द्वरूप में स्थित होता है या सामंजस्य के रूप में। नयी कविता अधिकतर द्वंद्वरूप में स्थित है[2]। नयी कविता के स्वर अनेक हैं, कहीं आत्मपरी का स्वर तो, तो और कहीं आत्मालोचन का स्वर भी प्राप्त है। कहीं

---

1. नरेश मेहता - महा प्रस्थान 1981, पृ. 39-40
2. गिरिजाकुमार माथुर - पृथ्वी कल्प

दहशत भरा स्वर सुनाई पड़ता है तो कहीं ऐकान्तिकता का । प्रश्न यह है कि नयी कविता के इस विषय वैविध्य के साथ प्रतीकीकरण प्रवृत्ति का क्या संबन्ध है । समकालीन जीवन को लेकर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते समय नये कवियों ने समकालीन यथार्थ को भी प्रतीक बना लिया है । अत: जीवन से जुड़े हुए अनेक प्रतीक नयी कविता में प्राप्त होते हैं ।

गिरिजाकुमार माथुर ने "पृथ्वीकल्प" में युद्ध की अभिलाषा में निहित विनाशोन्मुखता तथा अर्थहीनता को कुछ प्राचीन धार्मिक अनुष्ठानात्मक प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया है -

"किन्तु आज लगता है जैसे
इस अन्तिम आहुति पर आकर
यज्ञ-कुन्ड उड़ गया गगन में
और उलटता आता है, वह
भस्मासुर-सा होताओं पर ।"[1]

प्रस्तुत कविता में आस्था के नष्ट होने से प्राप्त शिथिलता है ।

भारतभूषण अग्रवाल की कविता है "विलायती स्पंज" जिसमें खोखले मध्यवर्गीय व्यक्ति को प्रतीकवद् किया गया है -

मैं निरा "विलायती स्पंज" हूँ
मेरे प्राण रिक्त और छिद्रमय
उनमें कहाँ है रस
उनमें कहाँ है स्रोत ?
मैं तो मात्र बाहर के जीवन को सोखकर

---

1. गिरिजाकुमार माथुर - पृथ्वी कल्प

फिर उगल देता हूँ
सो भी तब जब कोई आके निचोड़े मुझे ।"[1]

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविताओं में ऐसे अनेक प्रतीक प्राप्त होते हैं जिनमें समकालीन सच्चाइयों के अनेक दृश्य चित्र जरे जुए हैं । उनकी "भेड़िया"- 1, "भेड़िया-2", "भेड़िया-3" कवितायें इसके लिए उदाहरण है । एक प्रगतिशील आह्वान को उन्होंने सफल प्रतीकों में बाँधा है । भेड़िया - 2 की पंक्तियाँ विशेष उल्लेखनीय है ।

भेड़िया गुर्राता है
तुम मशाल जलाओ
उसमें और तुम में
यही बुनियादी फर्क है
भेड़िया मशाल नहीं जला सकता ।
अब तुम मशाल उठा
भेड़िए के करीब जाओ
भेड़िया भागेगा
करोड़ों हाथों में मशाल लेकर
एक-एक झाड़ी की ओर बढ़ो
सब भेड़िए भागेंगे ।
फिर उन्हें जंगल के बाहर निकाल
बर्फ में छोड़ दो

---

1. भारतभूषण अग्रवाल - ओ अप्रस्तुत मन, पृ.59-60

भूखे भेड़िए आपस में गुर्रायेंगे
एक दूसरे को चीथ खायेंगे
भेड़िए मर चुके होंगे
और तुम ?[1]

रघुवीर सहाय ने जीवन के प्रति उनकी जो आत्मलीन इच्छा है उसको वैयक्तिक संदर्भ में प्रतीकवत् किया है -

सारे संसार में फैल जायेगा एक दिन मेरा संसार
सभी मुझे करेंगे - दो चार को छोड़ - कभी न कभी प्यार
मेरे सृजन, कर्म-कर्तव्य, मेरे आश्वासन, मेरी स्थापनाएँ
और मेरे उपार्जन, दान-व्यय, मेरे उधार
एक दिन मेरे जीवन को छा लेंगे - ये मेरे महत्व ।
डूब जायेगा तन्त्रीनाद-रस में, राग में, रंग में, मेरा वह महत्व
जिससे मैं जीवित हूँ ।
मुझ परितृप्त को तब आकर वरेगी मृत्यु-मैं प्रतिकृत हूँ[2] ।

जीवन के प्रति यह कृतज्ञता और सार्थकता का बुनियादी भाव रघुवीर सहाय के कृतित्व में अंतर्धारा की तरह व्याप्त है, जो खीज, ऊब, निराशा के बीच मुरझाता नहीं । सीढ़ियों पर धूप में बैठा व्यक्ति आत्महत्या के विरुद्ध हो, वह सहज स्वाभाविक है । संदर्भित कविता पर उस व्यक्ति की संपूर्ण आत्मकथा है, यह निहित विश्वास के साथ कि "सारे संसार में फैल जायेगा एक दिन मेरा संसार" । यह कवि का अहंकार नहीं,

---

1· सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - प्रतिनिधि कविताएं (1986), पृ·79

2· रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध

आत्मविश्वास है, अहं को डुबो कर उसने आत्म की व्यापक अनुभूति उपलब्ध की है[1]।

साही की "अलविदा" नामक कविता जीवन के भयावह क्षणों को हमारे सामने प्रस्तुत करती है। इस कविता का अटूट अंधेरा मोहभंग की अवस्था को उजागर करता है।

लेकिन कानों का क्या करोगे
उनमें तो यह दिलकश रागिनी
और पास, और पास आती हुई गूंजेगी
फिर तुम अपने को कैसे रोकोगे ?
या शायद तन कर खड़े होने से काम चले
वह नहीं जो भविष्य के नाम पर
चुनौतियां देने से उपजता है
बल्कि वह जो आखिरी निर्णय के बाद सहसा
बिलकुल अकिंचन हो जाने से
उत्पन्न होता है
तब शायद तुम्हारी आंखें
न सिर्फ शीशे के पार
बल्कि शीशे के पार दिखती हुई छवि के भी आर पार
देखने लगें
तब तुम देखोगे कि यहां से वहां तक
अटूट अंधेरा है

---

1. डॉ॰ रामस्वरूप चतुर्वेदी - नयी कविताएं एक साक्ष्य, पृ॰35

जो माटी में मरते हुए जानवर की तरह
सांस लेता है ।[1]"

सौंदर्यबोध के नये प्रतिमानों को उपस्थित करने की इच्छा के कारण तथा रूमानी भावावेग के स्थान पर कर्कशता को प्रस्तुत करने केलिए कवियों ने विविध प्रकार के प्रतीक प्रयुक्त किये हैं । हरिनारायण व्यास की एक कविता में यौन आग्रह का प्रतीक व्यंजित हुआ है ।

सात वर्ष पूर्व
फागुन की एक सिहरन भरी रात में
मैं ने और तुमने
"चांदनी की खेती उरेही थी
"चांदनी" के विश्वासी हम दोनों
नहीं जानते थे तब
एक दिन "काला भैंसा" अमावस की रात सा
आएगा और इस अंकुराई चांदनी को
देखते ही देखते
चर जायगा ।[2]"

नयी कविता के प्रतीकवादी प्रवृत्ति पर विचार करते समय ऐसे अनेकों प्रतीकों पर हमारा ध्यान टिक जाता है जो प्रकृति से संबंधित है । प्रकारान्तर से सभी कवियों में एक विशिष्ट प्रकार की आंचलिक इच्छा प्रकट

1· विजयदेवनारायण साही - मछली घर [प्रथम संस्करण 1966], पृ·120-121
2· हरिनारायण व्यास - दूसरा सप्तक, पृ·77

होती रहती है । इस कारण से या तो ग्रामीण जीवन में से लिये गये प्रतीक या स्वत: स्फूर्त प्राकृतिक प्रतीक इन कवियों में उपलब्ध होते रहते हैं । ऐसे प्रतीक बहुत सारे कवियों में एक सहज प्रवृत्ति के रूप में आये है, अत: नदियों, बादलों, पेड-पौधों, फूल-पत्तियों, टीलों, पहाडियों, खेत-खलिहानों से संबन्धित प्रतीक मात्र प्राकृतिक चित्र के नहीं है, अपितु कवियों की ग्रामीण इच्छा से संबन्धित प्रतीक हैं । इस प्रकार के प्रतीक नयी कविता की भावभूमि को काफी हद तक परिवर्तित करने में सफल हुए हैं ।

विभिन्न प्रकार के प्रतीकों के विवेचन के पश्चात् यह प्रश्न रह जाता है कि इन से काव्य सौन्दर्य में किस प्रकार का गुणात्मक अन्तर आया है यह तो सूचित किया जा चुका है कि प्रतीक काव्य शिल्प का कोई बाहरी अलंकरण नहीं । प्रतीक भाववस्तु और भावस्थिति के बीच बने रहकर भी पाठक के मन के विभिन्न स्तरों से संबन्ध जोडता रहता है । प्रतीक अनेक काल खण्डों के साथ जुडे रहकर अर्थ के अनेक आयामों को ढूंढता भी है । पुन: एक उदाहरण लिया जाय तो वह अधिक स्पष्ट होगा । मुक्ति बोध ने अपनी कविताओं में जिस बियाबान, सन्नाटे से भरे वातावरण को, या खण्डहरनुमा मकानों का प्रतीकात्मक वर्णन किया है, उनका सम्बन्ध मुक्तिबोध की सारी अनुभूत जटिल एवं कठिन प्रतिक्रियाओं से होते हुए भी, मुक्तिबोध द्वारा दर्शित ऐसे कुछ पुराने मकानों से होते हुए भी आतंक का एक व्यापक इतिहास, ऐसे प्रतीक हमारे सामने खोलते हैं । ये प्रतीक स्वयं इतिहास बन जाता है । अत: प्रतीक विभिन्न काल खंडों के जुडे रहकर कविता की परिणतियों को बृहत्तर सन्दर्भों तक लिए ले चलते हैं । इस कारण से प्रतीक बाह्यालंकरण नहीं रहते । स्वयं कविता भी एक प्रतीक की अवस्था हासिल कर लेती है । विशेष रूप से इस बात पर ज़ोर दिया जाना चाहिए । आधुनिक युग में ऐसी अनेक कविताएं लिखी गई हैं ।

कविता की यह स्वत: सिद्ध प्रतीकावस्था ही प्रतीक का सौन्दर्य शास्त्र है ।

एक और उदाहरण दिया जा सकता है । महाभारत से लिए गए प्रतीकों का विवेचन ऊपर हुआ है । उन प्रतीकों ने मात्र महाभारत के सन्दर्भों और समकालीन अवस्था के बीच विचारों या अनुभूतियों का एक रिश्ता ही कायम नहीं किया है बल्कि वे प्रतीक कविता की स्वयं पूर्ण प्रतीक अवस्था को ही द्योतित करते हैं ।

कविता की सौन्दर्यशास्त्रीय विवेचना के दौरान प्रतीकों का ऐसा ही विवेचन सुसंगत लगता है ।

अध्याय - छह

नयी कविता का मिथकीय आयाम

अध्याय - छह

नई कविता का मिथकीय आयाम

आधुनिकता और नवलेखन पर विचार करते हुए सुप्रसिद्ध नृतत्वशास्त्री जी॰एस॰ फ्रेसर ने लिखा है कि साहित्य में अभिव्यक्त आधुनिकता की सबसे उल्लेखनीय प्रवृत्तियों में से एक अतीत या परंपरा के प्रति एक बढ़ती हुई जीवन्त अभिरुचि है।[1] यह मात्र पश्चिमी नवलेखन की ही बात नहीं है, भारतीय भाषा साहित्यों के नवलेखन के संदर्भ में भी यह बात पूर्णतया चरितार्थ निकलती है। प्राचीन लोकसाहित्य एवं सांस्कृतिक परम्पराओं से लेकर इतिहास, पुराण आदि तक से विरासत में प्राप्त परंपराओं को काव्य विषय बनाकर उनके माध्यम से आधुनिक युग

1. "Paradoxically enough, one of the main marks of Modernism in literature is often a lively interest in the past for its own sake.
   C.S. Frazer - Modern writer and his world, p.3

जीवन तथा उसकी बहुमुखी समस्याओं, सांस्कृतिक विघटन, मूल्य संक्रमण, वैयक्तिक एवं सामाजिक स्तर की बहु आयामी कुंठाओं, पीड़ाओं, तनावों, बेचैनियों, निषेधों और आक्रोशों को संतुलन के बिंदु पर खड़ा करना और इस तरह परंपरा को नूतन आयामों में प्रस्तुत करते हुए अपनी रचना को एक नयी प्रामाणिकता प्रदान करना नयी कविता की सबसे उल्लेखनीय नवीनताओं में एक मानी जानी चाहिए। विरासत में प्राप्त इन परंपरा व मिथकों के सहयोग से कविता को एक नयी अर्थवत्ता और आत्मवत्ता प्रदान करते हुए काव्यगत नये प्रतिमानों और अवधारणाओं को रूपायित करने के साथ ही साथ भाषा में संदर्भ गूढ़ शब्दों व नूतन अर्थ-छटाओं का सन्निवेश एवं प्रसार करने में भी आज के नये कवि समर्थ निकले हैं।

विश्व साहित्य के समान ही हमारे साहित्य में भी परंपरा के प्रति एक नयी जागरूकता एवं इनपर आधारित नये प्रयोग करने की बढ़ती हुई प्रवृत्ति पनपती आयी है। नवलेखकों के हाथों हमारे पूर्ववर्तियों की लंबी परंपरायें नयी अर्थवत्ता तथा आत्मवत्ता के साथ पुनः जो रही हैं और मुखर हो रही हैं। हिन्दी की नयी कविता में अभिव्यक्त परंपरा एवं मिथकीय प्रयोगों के विविध आयामों के आकलन और मूल्यांकन के पहले उनके स्वरूप और प्रकृति पर एक नज़र डालना अत्यन्त आवश्यक है।

परंपरा का स्वरूप

परंपरा शब्द का व्यवहार हमारे यहाँ, पाश्चात्य साहित्य में प्रचलित ट्रेडीशन (tradition) शब्द के पर्यायवाची और समान अर्थ में ही प्रायः किया जाता है। परंपरा मूलतः एक अतीतोन्मुखी एवं अतीत से संबद्ध व उसी से उद्भूत चेतना है। अतीत वस्तुतः एक ऐसा तत्व है जो वर्तमान और भविष्य से अनुस्यूत होकर काल की अटूट श्रृंखला का निर्माण करता है। अतएव इन तीनों का महत्व वस्तुतः सापेक्ष भी है।

1. Sc' anlucy, T.S. Eliot and the idea of Tradition (London) 1960, p.14

आज का जो वर्तमान है, वही कल अतीत बन जाता है । गति का यह क्रम शाश्वत है, वह हमेशा से ही इसी तरह जारी रहा है । अपने इस व्यापकत्व के कारण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को स्वयं समाहित करने में परंपरा हमेशा ही समर्थ रही है ।

साहित्य-क्षेत्र में परंपरा अपने अभीष्ट अर्थ में लोक-सम्मतियों, साहित्यिक प्रयोग-विधियों तथा अभिव्यक्ति के साधनों को व्यक्त करती है जो लेखक को विरासत के रूप में मिलते हैं । परंपरा को और अधिक सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो साहित्य क्षेत्र की वे समस्त साहित्य प्रयोग विधियाँ जो लेखकों को अपने पूर्व प्रतिष्ठित लेखकों से उत्तराधिकार के रूप में मिलती है, परंपरा कहलाती है । एक लेखक का अपने से पूर्व प्रचलित शिल्प और टेकनिक का पूर्व-ज्ञान और दक्षता प्राप्त कर लेना और भविष्य में उसे विकसित करना ही उसका परंपरा का पूर्ण-ज्ञान कहलाता है ।

परंपरा का जीवन्त रूप किसी भी दृष्टि से त्याज्य नहीं है, किंतु जब परंपरा समय की गति के साथ चलने में असमर्थ होकर रूढि का रूप ग्रहण कर लेती है, तब वह गर्हित हो जाती है । रूढि साहित्य के विकास में अपने अवगुणों के कारण बाधा होती है और इसी कारण निन्दनीय और त्याज्य ठहरती है।जनरुचि और लोकप्रियता की प्रतीक सजीव व समर्थ परंपरा ही साहित्य के लिए वांछनीय है । साहित्य गतानुगतिकता या पिष्टपेषण का सूचक नहीं होता, इसलिए परंपरा का उतना ही अंश उसकेलिए महत्वपूर्ण होता है जो हमें संस्कार दे, और संस्कार भी वह जिसमें विस्तार हो, उदारता हो और जो हमारे व्यक्तित्व की निजता को बनाये रखें । नवलेखन के संदर्भ में "परंपरा" इसी अर्थ में महत्वपूर्ण ठहरती है ।

और इसी अर्थ में नवलेखन पर लगाये जानेवाला यह आरोप निर्मूल सिद्ध होता है कि वह परंपरा से एकदम विच्छिन्न होकर आगे बढ़ता है । नये प्रयोग परंपरा से ही विकास पाते हैं । परंपरा हमारा दायित्व है, प्रगति विकास की प्रवृत्ति है और प्रयोग भविष्य की दृष्टि-संभावनाओं तक पहुँचने का माध्यम है । आज का प्रयोग आनेवाले युग की परंपरा निर्धारित करेगा, ऐसा परंपरा जिसमें ठहराव नहीं, गति होगी । यदि परंपरा से रूढ़िवाला निर्जीव अंश निकल दिया जाय तो कवि केलिए उसका बड़ा महत्व है । अतः साहित्य में जीवन्त या सजीव परंपरा का ही महत्व होता है क्योंकि परंपरा की रक्षा के साथ उसका विकास भी आवश्यक है[1] । परंपरा के इस पक्ष के महत्व पर प्रकाश डालते हुए अज्ञेय ने लिखा है कि जो लोग प्रयोग की निंदा करने के लिए परंपरा की दुहाई देते हैं वे यह भूल जाते हैं कि परंपरा कम से कम कवि के लिए कोई ऐसी पोटली बाँधकर रखी हुई चीज़ नहीं है जिसे वह उठाकर सिर पर लाद ले और चल निकले । परंपरा का कवि के लिए कोई अर्थ नहीं है, जब तक वह उसे ठोक बजाकर, तोड़-मरोड़कर आत्मसात् नहीं कर लेता, जब तक वह इतना गहन संस्कार बन जाती कि उसका चेष्टापूर्वक ध्यान रखकर निर्वाह अवश्य हो जाय[2] ।

संक्षेप में, परंपरा लेखक के लिए सुविधापूर्वक मिलनेवाली कोई "लीक" नहीं है । वह तो स्वयं परंपरा का सृजन करता है । कोई भी लेखक परंपरा की उपेक्षा नहीं कर सकता । उसका साहित्य अतीत की उन परंपराओं से तटस्थ नहीं रह सकता जो अतीत के अनुभवों और ज्ञान पर आधारित होती है और अतीत से प्रेरित होने के कारण सशक्त और जीवन्त

---

1. डॉ. हरिचरण शर्मा - नयी कविता का मूल्यांकन परंपरा और प्रगति की भूमिका पर, पृ.107

2. दूसरा सप्तक - भूमिका, पृ.6

रहती है । अतीत की स्मृति भी एक तरह से परंपरा की ही सूचक होती है । यह विरासत से संप्रेषित और उपलब्ध अनुभवों का जीवित और क्रियाशील तत्व है । किसी सीमा तक परंपरा अपने आप उद्भूत होती है । हम इससे मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकते । यह हममें विद्यमान रहती है और हमारे चारों ओर से हमारे भीतर समाहित होती रहती है । प्रत्येक लेखक अपनी रचना द्वारा परंपरा को स्वीकार कर उसका विकास करता रहता है । इसी कारण उसका युगवत् अस्तित्व ठहरता है ।

पाश्चात्य साहित्य जगत में टी.एस. इलियट परंपरा को स्वीकार करनेवाले कवि-आलोचक रहे हैं । उनके अनुसार साहित्यिक परंपरा शाश्वत होती है, क्योंकि साहित्य मानवीय मूल्यों पर आधृत होता है और मानव मूल्यों का निर्माण एक दिन में न होकर परंपरागत होता है । मूल्यवान व जीवन्त परम्परायें साहित्य केलिए परम आवश्यक है । वे साहित्यकार की वर्षों की साधना का परिणाम ही नहीं साहित्य की प्रौढता की सूचक भी है । पुरातन में प्रयोग के माध्यम से नवीनता का सन्निवेश करना ही साहित्यकार का काम होता है । उसके विवेक और प्रतिभा की सार्थकता, पूर्णता तथा प्रौढता इसी में है कि वह परंपरा के जीवित अंश को ग्रहण करे, उसके प्रयोग प्रौढता को पहुँचे और वह अपने साहित्य के साथ, एक साथ एक ही परिप्रेक्ष्य में तत्कालिक सीमाओं से परे एक युग में जी सके । साहित्य के संदर्भ में "परंपरा" इसी अर्थ में महत्वपूर्ण ठहरती है और इसी को हम साहित्य का पारंपरिक परिपार्श्व मान सकते हैं ।

मिथक : स्वरूप, उपादान और महत्व

सूक्ष्म रूप से मिथक और साहित्य एक ही है । हिन्दी में प्रयुक्त मिथक वस्तुत: अंग्रेज़ी मिथ(Myth) का पर्याय माना गया है ।

मिथक शब्द संस्कृत मिथ से बनता है । मिथ का संस्कृत में अर्थ है रहस्य {जिससे रहस्य बनता है} अर्थात् एकान्त, निर्जनता । मिथक पुराण है भी और सम्भवत: वह अर्थ की दृष्टि से मिथक से कहीं अधिक मुखर भी है[1] ।

मिथक का सम्बन्ध मानव के आदिम एवं प्रागैतिहासिक काल से है और वे किसी भी जातीय संस्कार में इतने गहरे पैठे रहते हैं कि उन्हें मानव अस्तित्व से नकारा नहीं जा सकता है । मनोवैज्ञानिकों, समाजशास्त्रियों, भाषाशास्त्रियों तथा दार्शनिकों ने मिथक के इसी रूपको विभिन्न दृष्टिकोणों से विवेचित एवं परिभाषित करने का प्रयत्न किया है और मिथकों के स्वरूप को समझने में इन समस्त दृष्टिकोणों का अपना-अपना महत्व है ।

मिथक की व्यापकता और साथ ही उसके महत्त्व के कारण आधुनिक युग की व्याख्या के द्वारा मिथक के उस रूप का स्पष्टीकरण होता है जो यथार्थ और कल्पना की द्वन्द्वात्मकता को प्रकट करता है और यह सिद्ध करता है कि मिथक की संरचना में इन दोनों तत्वों का समावेश न्यूनाधिक रूप में प्राप्त होता है । इससे एक बात यह भी उभर कर सामने आती है कि मिथक में सबकुछ कल्पनात्मक और वायवी नहीं है, पर यह भी सच है कि मिथक की अवधारणा के पीछे सत्य और यथार्थ का एक गहरा स्पन्दन प्राप्त होता है[2] ।

---

1. मिथक और भाषा - सम्पादक डॉ॰ शंभुनाथ
{भागवतशरण उपाध्याय का लेख मिथक}, पृ॰17-18
2. D.D. Kosambi - Myth and Reality, Introduction, p.6

छठी और सातवीं शताब्दी ई॰पू॰ के लगभग मिथक की व्याख्या का आरंभ माना गया है क्योंकि इस समय के लगभग भारत तथा ग्रीक में मिथक के रूपकात्मक अर्थ के द्वारा विवेचित करने का प्रयत्न किया गया। भारत में सबसे प्रथम यास्क ने निरुक्त के आधार पर वैदिक कथाओं और देवी देवताओं की व्याख्या प्रस्तुत की । इस व्याख्या में भाषा-विज्ञान का भी सहारा लिया गया जिसे जर्मन विचारक मैक्समूलर ने भी अपनी विवेचना का आधार बनाया । यास्क ने वैदिक कथाओं (देवी देवताओं) की प्राकृतिक घटनाओं और आध्यात्मिक अभिप्रायों का स्वरूप स्वीकार किया इन्द्र, वरुण, सोम, पूषा, सूर्य आदि को प्राकृतिक व्यापारों एवं शक्तियों के रूप में मानवीकृत करने का जो प्रयत्न प्राप्त होता है, यह प्रवृत्ति ग्रीक, ईसाई और सभी प्राचीन संस्कृतियों में न्यूनाधिक रूप से द्रष्टव्य है । ग्रीक विचारकों ने (एपीकारमस और हीराक्लिट्स) मिथकों की व्याख्या भी इसी दृष्टि से की जब उन्होंने होमर द्वारा प्रयुक्त घटनाओं और देवी-देवताओं को प्राकृतिक घटनाओं और शक्तियों का प्रतीक माना और उनमें निहित गुप्त अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया । ग्रीक विचारकों ने देवताओं की भौतिक और नैतिक अभिप्रायों तक ही परिसीमित कर दिया, पर आगे चलकर प्रथम शताब्दी ई॰ से हीराक्लिट्स ने मिथकों की रूपात्मक व्याख्या का एक लम्बा क्रम प्रारंभ कर दिया जिसने पाश्चात्य मिथकों का एक अर्थ प्रदान किया । मिथक एक प्रकार से इन प्राचीन राजाओं (या आदिम राजाओं)[1] के कार्य व्यापारों की भ्रमात्मक स्मृति थी, कल्पनात रूपान्तरण था ।

---

1. Edmund Leech - The study of Myth and totamixm,p.26

इटालियन दार्शनिक विको ने व्यक्त किया था कि विज्ञान की प्रगति मिथ व कविता के लिए बाधक है । विको के इस कथन का असर कई समीक्षकों पर पडा है । उनमें प्रमुख है रानसम, एनस्ट कैसिरस, सूसन लांगर, चेयस आदि । इन्होंने मिथक व कविता के सादृश्य को भिन्न भिन्न पहलुओं पर विचार किया है ।

प्रो. टॉमसन मिथक के भिन्न स्रोतों एवं उनके भिन्न भिन्न आयामों पर विचार करते हैं और फिलिफ वीर रैड मिथक को मानव के समग्र अनुभवों की अभिव्यक्ति के रूप में देखना चाहते हैं, जबकि ब्लाक मूर मिथक को मानवीय ज्ञानकोश का प्रतीकात्मक उल्लेख समझना चाहते हैं । मिथक में स्थित विरोध और वास्तविकता की पारस्परिकता को स्टॉफर (Stauffer) ने "द मोडेन मिथ आफ द मोडेन मिथ" में सुंदर ढंग से परिभाषित किया है ।

एरिक फ्रॉम (Erich Frommn) मिथक को आंतरिकता का एक प्रक्षेपण मानना चाहते हैं ।[1] इन परिभाषाओं में मिथक को परिकल्पित करने की प्रवृत्ति ज़ोरदार है । लेकिन अप्रत्यक्षत: साहित्य के साथ इसका संबंध भी व्यंजित होता है । सभी प्रकार की वास्तविकताओं की अपरिमेयता जो अब भी अपरिभाष्य है, का बोध भी इनमें से स्पष्ट हो जाता है ।

मिथकीय आलोचना पर प्राप्त सामग्रियों का संकलन करते समय डेविड लॉज जैसे समीक्षक को[2] बलजिम के नृतत्वशास्त्रवेत्ता क्लाड

---

1. Myth is a message from ourselves to ourselves, a secret language, which enable us to treat inner as if outer event.
   Erich Frommn - Sane Society, p.48

2. 20th Century Literary Criticism - Edited David Lodge
   Longman, 1981.

लेविस्ट्रास (Claude Levi Strauss) के और मनोवैज्ञानिक युंग के लेखों को आकलन करना पडा । यह इसी का सूचक है कि मिथकीय समीक्षा में साहित्य के समानान्तर ही समाजशास्त्र, नृतत्वशास्त्र, मनोविज्ञान और भाषा विज्ञान का संतुलित समावेश हो पाया है और इस समावेश के माध्यम से अध्ययन को वैज्ञानिक ढंग प्रदान करना संभव हुआ है । भाषा के साथ जिस प्रकार हमारी सामूहिक अस्मिता जुडी हुई है, तदर्थ वह जिस ढंग से हमारी चेतना को उजागर करती है, इन सूक्ष्मतम परिपार्श्व केलिए मिथक अध्ययन में महत्वपूर्ण स्थान है ।

पंचेंद्रियों केलिए अनुभूत और मनस्तत्व केलिए ज्ञात वस्तुगत यथार्थ ही सत्य है । मानवीय सत्ता इन दोनों तथ्यों पर आधारित है । इस तथ्य के प्रवक्ता देकार्त रहे हैं । इसके बारे में हेगल का कथन है कि देकार्त ने सत्य को दो खंडों में विभाजित किया । इसी कारण युक्ति पर अधिष्ठित दर्शन को भी पीछे रहना पडा और अयुक्तिक संदर्भ अध्ययन की सीमाओं के अंतर्गत आने लगे । दूसरे शब्दों में मिथकीय चिंतन का उत्स यही से है ।

मिथक की चर्चा हम चाहें तो साहित्य को बिलकुल छोडकर, व्यापकतर सांस्कृतिक सन्दर्भों में भी कर सकते हैं । सांस्कृतिक दृष्टि से मिथक की चर्चा करें तो उसका कुछ और रूप हमारे सामने आयेगा । समाजशास्त्र और नृतत्व की दृष्टि से उसकी चर्चा करें तो हम एक दूसरे ही क्षेत्र में चले जायेंगे, धर्म के संदर्भ में उसकी चर्चा करें तो और एक क्षेत्र में चले जायेंगे । साहित्य में मिथक का विचार करते समय हम इनमें से किसी को छोड नहीं सकते, क्योंकि ऐसा नहीं है कि साहित्य में धर्म या समाज या संस्कृति का कोई स्थान नहीं होता । मिथक एक तरफ अपनी पहचान का और दूसरी तरफ अपनी रक्षा का भी एक साधन होता है । क्योंकि मिथकों में अपनी अस्मिता की पहचान और उसकी रक्षा की दोहरी प्रवृि

होती है, इसलिए वे हमेशा एक रहस्य में भी रहते हैं और एक भविष्य का स्त्रोत भी बने रहते हैं । आधुनिक साहित्य में बार बार इन आद्यबिंबों (आर्किटाइप) की चर्चा हुई है, उनका उपयोग करने का भी प्रयत्न हुआ है, लेकिन महत्व की बात हमेशा यही है कि इनमें जो सत्ता है - सत्ता इस तिहरे अर्थ में - बीइंग के, रिएलिटी के और पावर के अर्थ में सत्ता-उसका नये सिरे से उपयोग करने की प्रवृत्ति वहाँ रही है । सत्ता की पहचान और साहित्य में उसका प्रयोग, ये प्रयत्न बार-बार हमें अनेक दिशाओं से अनेक रूपों में मिथक की ओर ही ले जाते रहे हैं । यही साहित्य में उस सत्ता का और मिथक का महत्व है[1] ।

मिथकीय अध्ययन से संबंधित तीन प्रमुख आधार ग्रंथ है, एक:सर[2] एडवॉरड टॅयलर की प्रिमिटीव कलचर दो[3] सर जेम्स फ्रेजर की गोल्डन बो और तीन युंग की रचना-ऑन द रिलेशन आफ अनलेटिक मेथॉलजी टु पोयटिक ऑरट आनॅड मेथालजी आनॅड लिट्रेचर[4] गिलबरट मुरे, जेगन हारिसन, एफ.एम. कोर्नफोरड जैसे विद्वान के अध्ययन भी इस दिशा में सराहनीय हैं । युंग की कुछ प्रमुख रचनायें मिथक संबन्धी बुनियादी ग्रंथ हैं उन ग्रन्थों में जिस सामूहिक अवचेतन की अवधारणा को उन्होंने अवतरित किया है, वहाँ वर्गगत प्रतीकों पर विचार किया गया है । सामान्य अर्थ में

---

1. अज्ञेय साहित्य में मिथक, पृ.40
   मिथक और भाषा - संपादक - डॉ. शंभुनाथ
2. Sir Edward Tylor - Primitive culture.
3. Sir James Frazer - The Golden Bough.
4. Carl Jung - On the relation of Analytic Psychology to poetic art and psychology and Literature in Modern man in search of a soul.

मिथक और प्रतीक एक नहीं है कुछ प्रतीक बिंबीकृत होकर हमारे अवचेतन पर आघात करते रहते हैं और सृजन की वेला में रचनाकार की संवेदना की ध्वनिक्षमता को प्रोज्वलित करने में सक्षम सिद्ध होते हैं ।

मिथक किसी जाती या जनसमुदाय की रागात्मक चेष्टाओं की कथा के माध्यम से प्रतीकात्मक अभिव्यंजन है[1] अत: वह काव्य का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण उपादान ठहरता है । प्रत्येक देश और युग का काव्य, मिथक का आश्रय लेकर अपना स्वरूप-संवर्द्धन करता है । काव्य सामग्री की खोज में कवि-कल्पना कवि के जाने ही, मिथक के क्षेत्र में पहुँच जाता है । कवि अपने कथ्य को मिथक के माध्यम से ऐसा प्रभावी बना लेता है कि पाठक का उससे सहज और स्वाभाविक रूप से तादात्म्य स्थापन की यह प्रक्रिया स्वत: स्फूर्त-सी होती है[2] । यही नहीं मिथक चूंकि जाति की भावनाओं, संवेदनाओं एवं सांस्कृतिक मूल्यों का संवाहक होता है । अत: उसमें एक साथ परंपरा और युग चित्रण का अवसर रहता है । मिथकों की यह एक निजी विशेषता है कि वह परंपरा से जुडा हुआ भी आधुनिकता व समसामयिकता से संपृक्त रहता है । नयी कविता के संदर्भ में प्रयुक्त मिथकों की आधुनिक अवधारणा इसी अर्थ बिंदु पर चरितार्थ होती है ।

पूर्वी एवं पाश्चात्य देशों के अपने अपने मिथकीय प्रतीक प्राप्त होते हैं । मानवीय अवधारणा के पीछे इन सहजावबोधों का असर सामान्य नहीं है । संपूर्ण को व्यंजित करनेवाले प्रतीक है, वृत्त, गोल, अण्ड आदि । भारतीयों की ब्रह्मांड की संकल्पना एक ऐसा मिथकीय प्रतीक है । सृजन के अवसर पर इन प्रतीकों की कई संभावनायें विवृत होती हैं । उसी प्रकार रात दिन, स्वर्ग-नरक स्त्री-पुरुष आदि द्वंद्वात्मक बिंबों को आत्मसात करनेवा

1· पुष्पपाल सिंह - काव्य मिथक, पृ·32

2· वही, दो शब्द से, पृ·8

मिथकीय प्रतीक है । चीनियों को "ताय-चि" संकल्पना अलावा इसके मातृ प्रतीक - उसके ही द्वित्व रूप करुणामयी व ध्वंसरूपी है - मिश्र से भारत तक, ग्रीस से एशिया मैनर तक इस माँ ने जग यात्रा की है । सिर्फ कविता में ही नहीं, अन्य साहित्यिक विधाओं में भी ये ही प्रतीक भिन्न रूपों में प्रकट हो जाते हैं । एक अन्य उदाहरण पुनरवतरण की संकल्पना है । ब्राह्मणों का द्विजत्व, ईसाई धर्म का ज्ञान स्नान और हिन्दुओं का तीर्थ स्नान आदि पुनरवतरण से जुड़कर काफी अर्थवान हो जाते हैं । इसी प्रकार नायक संकल्पना भी मिथकीय प्रतीक का एक सशक्त उदाहरण है, विशेषकर ग्रीक मित्तोलजी में । ऐसी नायक-संकल्पना भारतीय साहित्य में भी उपलब्ध है, और उन दोनों संकल्पनाओं का आधुनिक साहित्य में आपसी प्रभाव भी हो रहा है । अमूर्त संकल्पों का भी मिथकीय प्रतीकों के रूप में प्रयोग संभव है । अभिशाप की अवधारणा के मिथकीय संकल्प ने पूर्व एवं पश्चिम के देशों की कलात्मक ऊर्जा केलिए काफी अर्थव्याप्ति दी है । मिथकीय संकल्पना की सूची आगे भी बढाई जा सकती

आज मिथक का काव्य क्षेत्र में ही नहीं, अपितु धर्म, लोकसाहित्य, नृतत्वशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविश्लेषण और अन्य ललित कलाओं के अध्ययन में भी महत्वपूर्ण स्थान है । देव कथा, पुराण कथा, पुराख्यान, कल्प-कथा, पुरा-कथा, धर्म गाथा आदि मिथक केलिए हमारे यहाँ प्रचलित सभी पुराने शब्द उस अर्थ-गौरव को व्यक्त करने में बिलकुल सक्षम नहीं हैं, जिस रूप में आज उसका प्रयोग पाश्चात्य आलोचना में या आधुनिक अर्थों में किया जाता है । जागृत अवस्था में मनुष्य का यह आदिम रूप ढका या छिपा ही रहता है, किन्तु स्वप्न एवं कला आदि में मानव का यही आदिम मन प्रतीकात्मक रूप में अभिव्यक्त होता रहता है । इस भाँति मिथक आदिम युग से ही आधुनिक मानव से संबद्ध रहा है, हालांकि यह संबंध

मानव मस्तिष्क के बौद्धिक विचारों से नहीं, अपितु उसके हृदय की भावनाओं से है ।

साहित्यिक रचनाओं में इन संकल्पनाओं के विविध रूप प्राप्त होते हैं, युग युग के युगांतरकारी कवि-मनीषाओं की अनुभूति को गहराने में इनका योगदान महत्वपूर्ण है, उनकी अपनी समकालीन गुंजाइश भी है, साथ ही साथ रचनात्मक त्वरा एवं शिल्प बोध की अन्विति भी है ।

आधुनिक कविता का मिथकीय पक्ष

आधुनिक कविता जीवन के कई सवालों से जूझती अवश्य है । लेकिन जवाब की खोज में लगती नहीं है । पर इसका यह मतलब नहीं है कि वह पलायनवादी है । सवालों से जूझने का अर्थ ही अंतर्विरोधों और विडंबनाओं को स्वर देना है । इस अर्थ में वह रचनात्मक है । अत: एक आधुनिक कवि कभी-कभी अपनी भाषाई सीमाओं तक का उल्लंघन करता है और कभी कभी अपने ही अतीत को कुरेदने लगता है । अतीत और वर्तमान की खाई को पाटकर वह अपना इतिहास दर्शन प्रस्तुत करता है । इसलिए आधुनिक कविता के अर्थ संकेत काफी संश्लिष्ट हैं । टी॰एस॰ एलियट ने आधुनिकता को विश्लेषित करने के लिए परंपरा का इसी अर्थ में सहारा लिया । यहाँ तक कि उनकी चर्चित कृति "वेस्ट लेंड" की रचना के दौरान उन्होंने भारतीय संकल्पनाओं में से बहुत कुछ आत्मसात किया है । परंपरा प्रसार को तथा उसकी गहराइयों को आधुनिक कविता के संदर्भ में और अधिक प्रासंगिक बनाने का वह एक रचनात्मक उपक्रम था । अत: इलियट के उस परंपरा व आधुनिकता के सिद्धांत का मूल अब भी बना हुआ है ।

टी.एस. इलियट के इस सिद्धांत का समर्थन रोसेन्थाल ने भी किया है। उन्होंने कवि की उस क्षमता की सराहना की है जहाँ वह अपनी परंपरा का सही उपयोग करता है। उसकी मौलिकता का मापदण्ड यही है।[1] परंपरा के प्रति इस विशिष्ट मोह के पीछे इन कवियों और आलोचकों की यही अवधारणा निहित है कि आधुनिक कविता की रचनात्मक पृष्ठभूमि व्यापक है। इसी अर्थ में आधुनिक कविता भाषाई सीमाओं को पारकर जाती है।

यह एक स्वीकृत तथ्य है कि आधुनिक कविता सूक्ष्म है। इसका कारण यही है कि कई प्रकार के कविता संकेत एक दूसरे के निकट आ खड़े होते हैं और कई परस्पर विरोधी स्थिति में प्राप्त होते हैं। ऐसा ही एक संकेत है मिथक। लेकिन कभी-कभी बहुत सारे प्रतीक मिथकीय आयाम के साथ प्रतीत होते हैं। इसलिए ऐसे संकेतों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्गीकरण संभव होते हुए भी संवेदनात्मक स्थिति को निर्णीत करने में बाधक सिद्ध होते हैं। ये सभी तत्व समग्र संवेदना के अविभाज्य पक्ष हैं, जो काल और देश सीमा के विभिन्न कोनों से प्रदीप्त होकर अभिव्यक्त होते हैं।

आधुनिक कविता के मिथकीय पक्ष को इसी संदर्भ में विश्लेषित करना है। मिथकीय प्रवृत्ति प्राय: विश्लेषणात्मक होती है। अत: सूक्ष्मता बरतने की प्रवृत्ति भी विद्यमान है। इस प्रवृत्ति ने कविता के सौंदर्य पक्ष को गुणात्मक ढंग से विकसित किया है। यह कविता की एक आधुनिक प्रवृत्ति भी है। संदर्भवश टी.एस. इलियट का यह कथन उद्धृत करना उचित लगता है। जब रिचर्ड एलडिंगटन ने जोयिस की उपन्यास "यूलिसिस" की आलोचना की तो, उसके विरोध में "यूलिसिस ओडर एन्ड मिथ" शीर्षक निबंध में टी.एस. इलियट ने लिखा कि अब मिथकीय प्रणाली अधिक प्रासंगिक है। उनके अनुसार आधुनिक कला के लिए यह

---

1. Not only the uniqueness of a poet's work, but also his ability to make use of his heritage, is the mark of his originality.
M.L. Rosenthal - The Modern poets - A Critical Introduction (1975), p.11

आवश्यक भी है[1]। यह कथन यही सूचित करता है कि साहित्य की सभी विधाओं में मिथकीय प्रवृत्ति का विकास हुआ है। इसे एक प्रवृत्तिगत विकास के रूप ही नहीं देखा गया है, बल्कि सौंदर्य के एक नये परिप्रेक्ष्य के रूप में ही अनुभव किया गया है।

भारतीय कविता

भारतीय भाषाओं में आधुनिक कविता का समारंभ प्राय: एक ही समय होता है[2]। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद की भारतीय सामाजिक और सांस्कृतिक अवस्था आधुनिकता को दिशा निर्देश देने में सहायक सिद्ध हुई है। इसलिए आधुनिकता से संबन्धित कविता के सौंदर्य प्रतिमानों की चर्चा भी स्वातंत्र्योत्तर काल में ही हुई है। सभी भारतीय भाषाओं की कविताओं में भारतीय परंपरा के विविध पौराणिक प्रसंग उभरे हैं। इनमें एक सशक्त प्रवृत्ति पौराणिक प्रसंगों की पुनरावृत्ति है। यहाँ इस बात पर विशेष बल देने की आवश्यकता है कि नवजागरण कालीन काव्यों में भी ऐसी प्रवृत्ति रही है। नवजागरणकालीन काव्यों में पाये जानेवाले

---

1. **Instead of narrative method, we may now use the mythical method. It is, I seriously believe a step towards making the modern world possible for art.**
   (The era of Modernism)
   Malcom Bradbury (Ed.) - Modernism (1976), p.17

2. **Comparative Indian Literature (1984) Vol. I Kerala Sahitya Akademi Publication Chief Editor Dr.K.M. George Quoated from the introductory article on Modern poetry by Prof. V.K. Gokak, p.322**

परंपरा मोह का प्रसंग ही कुछ अलग है । आधुनिक कविता में पौराणिक प्रसंग मिथकीय आयाम में प्रस्तुत हुए हैं । इसलिए पुनराख्यान की सामान्य प्रवृत्ति के रूप में उसे समझा नहीं जा सकता । आधुनिक युग में जहाँ एक पूरे काव्य में पुनराख्यान की संभावना के होते हुए भी समूचा काव्य आधुनिक मानवीय जीवन की अनिवार्य विडंबना के रूप में प्रस्तुत होता है । इसलिए ऐसे काव्यों में भी मिथक तत्व ने काव्य के सौंदर्य को समग्र एवं व्यापक बना दिया है । इस दौर में लिखी गयी अनेक कविताओं में उसके अपने मिथकीय पक्ष के कारण विशेष प्रकार की समानता प्राप्त की जा सकती है । अपने विशिष्ट परिवेश में और अपनी विशिष्ट भाषिक इकाइयों के साथ रचनारत होने के उपरान्त भी इनमें समानता मिलती है । समान प्रसंगों की समानता रेखांकित करना यहाँ अभीष्ट नहीं है । अलग अलग प्रसंगों में भी मिथकीयता की समानता देखी जा सकती है । उदाहरण केलिए मुक्तिबोध की "ब्रह्मराक्षस" शीर्षक कविता पढने के उपरान्त मलयालम के एन·एन· कक्काट की "कद्रू" [1963] चेरियान की "भस्मासुर", सच्चिदानन्दन की "मेरी तपस्या" शीर्षक कविताओं के पढने पर यह तथ्य स्पष्ट होता है कि आधुनिक कविता में मिथकों की एक व्यापक श्रृंखला है जो उसके सौंदर्य तत्व के अनिवार्य पक्ष हैं । इसके अलावा भारतीय भाषाओं की कविताओं में अवधारणात्मक स्तर पर भी मिथकीय सन्निवेश हुआ है । मलयालम के अय्यप्पपणिक्कर की कविता "कुरुक्षेत्रम" तथा अज्ञेय की कविता असाध्य वीणा इस प्रकरण में तुलनीय रचनायें हैं। यह प्रवृत्ति प्राय: सभी भारतीय भाषाओं की कविताओं में है ।

हिन्दी कविता का मिथकीय आयाम

"तारसप्तक" के प्रकाशन के पश्चात् तथा छठे व सातवें दशक व हिन्दी कविता में मिथकीय कथा प्रसंगों, पात्रों व संदर्भों के आधार पर र कविताओं की भरमार है । नये कवियों में शायद ही कोई ऐसा हो जिस कि मिथकों का आश्रय न लिया हो । प्राय: सभी कवि अपनी अपनी दृ

अनुसार मिथकों को प्रयुक्त करने में संलग्न रहे हैं । स्वातन्त्र्योत्तर काल में पौराणिक आख्यानों का आधार ग्रहण करते हुए पचास से अधिक प्रबन्ध काव्य और अनगिनत मुक्तक कवितायें प्रकाशित है । इन सब में पौराणिक संदर्भों, प्रसंगों व पात्रों का ग्रहण विभिन्न रूपों में हुआ है । ज्यादातर कवितायें युगानुकूल नयी दृष्टि और नया मूल्य बोध उपस्थित करनेवाली है । नयी कविता के अन्तर्गत आनेवाली पौराणिक आख्यानों या प्रसंगों के आधार पर लिखे गये काव्यों तथा मुक्तक रचनाओं को हम मोटे तौर पर दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं - "1§ कथात्मक रूप में गृहीत §2§ संदर्भ रूप में गृहीत पौराणिक आख्यानों के क्षेत्र में ही नहीं, लोक आख्यानों व लोक मिथकों के संबंध में भी यह बात सही है । समाज और युग जीवन में व्याप्त विकृतियों और विसंगतियों पर व्यांग्याघात करने केलिए भी नए कवियों ने मिथक-कथाओं और पात्रों का काफी उपयोग किया है । जनमानस में चिरकाल से संचित इन घटनाओं प्रसंगों और पात्रों के द्वारा युगीन वास्तविकता का चित्रण नयी कविता की महत्तम उपलब्धि है जो परंपरा के सहारे विकसित हुई है । अतः यह कहना उचित ही हैकि नये कवि परंपरा के ही वाहक है।[1] नयी कविता युग में जितने भी नाट्य काव्य §काव्य नाटक§ लिखे गये है, उनमें मिथकों को विशेष स्थान दिया गया है । इन्हें भी दो कोटियों में विभाजित कर सकते हैं । प्रथम कोटी का सम्बन्ध पौराणिक वृत्तों, चरित्रों अथवा लोकधारणाओं से सम्बद्ध मिथकों से है - इसमें अज्ञेय, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, कुँवर नारायण तथा दुष्यन्त कुमार इत्यादि कवियों का नाम विशेष उल्लेख्य है । द्वितीय वर्ग में उन कवियों का समावेश किया जा सकता है जिन्होंने कविताओं मे मिथक की संश्लिष्ट अवस्थिति तक अपने को सीमित रखना चाहा है । यही कारण है इनके मिथक कही कही अस्पष्ट भी है । इनमें मुक्तिबोध का नाम लिया जाना चाहिए ।[2]

1· अज्ञेय - दूसरा सप्तक - भूमिका, पृ·3।

2· डॉ· हुकुमचन्द राजपाल - लम्बी कविता में मिथक §मिथक और भाषा पृ·170

मिथकों का आधुनिक उपयोग यह प्रयास करता है कि वह मिथकों में निहित मानव सत्य को उद्घाटित करे और आधुनिक जीवन द्वारा प्रस्तुत की गयी चुनौतियों को मिथकों के परिप्रेक्ष्य में या उनके पुनर्कथन के माध्यम से झेलने का प्रयास करे । नचिकेता के प्रसंग पर आधारित कुंवरनारायण कृत आत्मजयी §1965§ इसके लिए उदाहरण है । 'आत्मजयी' का संक्षिप्त कथा सूत्र इस प्रकार है - वाजश्रवा ने स्वर्ग की लालसा से, यज्ञोपरांत, ब्राह्मणों को दान देना चाहा था । किंतु क्या यह दान सात्विक मन से और "देने के लिए दिया गया था ? वे अधमरी गायें क्या सचमुच दान के योग्य थी ? यह दान है या "अज्ञात शक्तियों मे कोई अशुभ समझौता ? पिता के अनुष्ठान के बीच एक टेढे सवाल सा नचिकेता उठ खडा होता है । गद्गद श्रद्धाओं के इस मेल में वह एक शंकित जिज्ञासु है । नचिकेता के प्रश्न पिता की मान्यताओं का उल्लंघन करते हैं - इसलिए वह पिता की दृष्टि में विद्रोही है, विधर्मी है । जिन परिस्थितियों में वह जिंदा है, उन्हें समझना चाहता है और पिता से कहता है

"···· मुझे भी त्याग कर
मुझसे श्रेष्ठतर कुछ मांगो"[1] ।

नचिकेता का बार बार आग्रह करना वाजश्रवा के क्रोध को भड़का देता है । विषाद के चरम क्षण में नचिकेता वह वज्रवाक्य सुनता है "मृत्यवे त्वा ददामि" ।

1· कुंवर नारायण - आत्मजयी §1965§, पृ·13

निराशा के इस एकाकी क्षण में नचिकेता आत्मा को व्यय करके रीत जाने के बोझिल एहसास से त्रस्त हो उठता है । विश्वासी आँखों के मिथ्या सपनों के बिखर जाने के बाद नचिकेता को भान होता है जैसे "रिक्त राहों की बाहें बुलाती हो । नचिकेता उस दुविधा के सहारे नहीं रह सकता, जो न मृत्यु है, न जीवन, बल्कि एक बड़ा छल है । कहाँ जाऊँ ? किसे पाऊँ ? प्रश्न है नचिकेता के पास, उत्तर नहीं है ।

निराशा की चरम अवस्था उसे आत्मघात की ओर ले जाती है वह स्वयं को जल में डुबा देता है । किंतु "वह वास्तव में मरता नहीं, मरने से पहले ही, पानी से बाहर निकाल लिया जाता है, लेकिन अचेतावस्था में । इसी अचेतावस्था में वह स्वप्न देखता है - यम से साक्षात्कार ।

जिज्ञासु नचिकेता का यमराज से आग्रह है कि "वही विमूढ़ व्यर्थ जीवन फिर ?" उसे नहीं चाहिए । इस "छीनाझपटी" "दुनियादारी" में उसे विश्वास नहीं है । और वह चाहता है

मिल सके अगर तो
एक दृष्टि चाहिए मुझे -
जीवन बच सके
अँधेरा हो जाने से, - बस[1] ।"

अंतत: नचिकेता ने "अडिग ज्ञान का वरण किया" और जाना कि "केवल शरीर के भोगों को दोहराने से पूर्णता नहीं मिलती", "केवल भौतिक शर्तों पर ही । जीवन कोई सान्त्वना नहीं है ।

---

1. कुँवरनारायण - आत्मजयी, पृ.68

नचिकेता की आँखों में "अक्षय जीवन की ललक देखकर उसे "आत्मशक्ति" और "आत्मा की स्वायत्तता" का बोध देकर यमराज उसे मृत्यु मुख से "प्रमुक्त कर देते हैं

मैं तुझको जीवन फिर से वापस देता हूँ
तू यही समझ कर जी
तुझको फिर मुझ तक वापस आना है ।
तू मेरा है ।[1]

"मृत्युमुखात्प्रमुक्त" नचिकेता स्वप्न से जागने पर "आत्मविद्" होता है फिरक्रमश: सृष्टिबोध, सौंदर्यबोध, शांतिबोध और मुक्तिबोध का अधिकारी बनता है।[2]

"आत्मजयी" का नचिकेता, उपनिषदीय नचिकेता का नाम मात्र ही है, वह पूर्ण रूप से आज के बिखरे बदहवास जीवन का प्रतीक है । क्योंकि आज मृत्यु का जो संत्रास है, वह उपनिषद् कालीन भारत का नहीं हो सकता । यम सत्-असत् कर्मों के आधार पर दण्ड का विधान करने के कारण सत्कर्म का नियामक है । "आज का मृत्यु-संत्रास यान्त्रिक परिस्थितियों और युद्ध जनित आकांक्षाओं के कारण क्षणवादी जीवन दर्शन को प्रश्रय देता है । जो अवसरवादिता को जन्म देता है और अवसरवादिता मृत्यु को । इन परिस्थितियों में आदमी मर रहा है क्योंकि मूल्य मरते जा रहे हैं । मृत्यु का गहन बोध ही हमें अमरता की ओर ले जाता है अर्थात् वह हमें ऐसी मूल्य सर्जना की ओर ले जाता है जो मृत्यु को अतिक्रमित कर जाए ।

1· कुंवरनारायण - आत्मजयी, पृ·8।
2· विजया शर्मा - आत्मजयी चेतना और शिल्प (1979), पृ·12

"आत्मजयी" में इसी मूल्यबोध और अनासक्त जीवनावस्था को संकेतित किया गया है[1]। परम्परागत मृत्यु दर्शन को नये संदर्भों से समन्वित कर उसको विकसित करने का काम ही "आत्मजयी" में संपन्न हुआ है। "आत्मजयी" का नचिकेता मृत्यु का साक्षात्कार करके जीवन की ओर लौटता है। यम के वरदान स्वरूप वह मरता नहीं है, अपितु मृत्यु का अनुभव करता है। वह जीता है, उस सत्य के लिए जहाँ उसे पहुँचना है, और वह सत्य मृत्यु से भी बड़ा है। नचिकेता मरता नहीं, वह तो मृत्यु से भी बड़े मर्म का साक्षात्कार कर लेता है।

"आत्मजयी" के अंतिम खंड के "मुक्तिबोध" में कवि ने गंभीर विवेक का परिचय दिया है। वह जीवन से संबद्ध प्रश्नों का कोई बना-बनाया समाधान नहीं देना चाहता। अपने अनंत विस्तार में जीवन असंख्य संभावनाओं से युक्त रहता है - जैसे - नचिकेता केलिए, ठीक उसी तरह किसी भी व्यक्ति केलिए[2]। उदा -

" यह भी संभव है
कि अपने और दूसरों के बीच
अनिवार्य अंतरों को दूर तक सोचूँ
यहाँ तक कि सारा संसार
मेरी दृष्टि में
सिकुड़ कर तिल बराबर रह जाए,
और इसे जब चाहूँ मूँद कर
अंधेरे में घोल दूँ[3]।"

---

1. डॉ. बच्चनसिंह - धर्मयुग - 7, जनवरी 1978, पृ 52
2. विजया शर्मा - आत्मजयी चेतना और शिल्प, पृ.25
3. कुंवर नारायण - आत्मजयी, पृ.99

दूसरा विकल्प यह भी है कि -

"एक कलाकार ईश्वर की तरह अनुपस्थित
अथाह समय में जियूं -
केवल आत्मा अमरत्व और आश्चर्य[1]।"

"आत्मजयी" में मृत्यु बोध का विकास नये अर्थों में हुआ है। यदि एक ओर मृत्यु को अनिवार्य माना गया है तो इसके साथ ही बहुत कुछ अस्तित्ववादी दर्शन के प्रभाववश मृत्यु के नव्यार्थ को बतानेवाले आयामों का भी विकास इसमें हुआ है। सुखी-जीवन जीने से बढ़कर सार्थक जीवन जीने की ज़रूरत पर भी इस में बल दिया गया है[2]। मृत्यु का साक्षात्कार करके उससे बातें करते हुए नचिकेता ने इसी सत्य को पा लिया। यह सत्य सनातन भारतीय चिंतन परंपरा से संबद्ध और उसीसे उद्भूत भी है। इस तरह यह मिथक काव्य परंपरा से जुड़ा हुआ भी आधुनिकता से संयुक्त है और यही "आत्मजयी" के मिथक की सार्थकता का प्रमाण है।

यह केवल नचिकेता की ही कथा नहीं, बल्कि जितनी उसकी, उतनी ही बुद्ध की, अर्जुन की, सत्यवान की, अहिल्या की, या आज के संकटग्रस्त युवामन की कथा है। अभिप्राय यह है कि इसके पूरे आयाम को समझने केलिए हमें इसका ऊर्ध्वात्मक (वर्टिकल) और अधरात्मक (हारिज़ेंडल) दोनों प्रकार का अध्ययन करना होगा[3]।

---

1. कुंवर नारायण - आत्मजयी, पृ.११
2. जो केवल तन से जिया / मृत वह इत्यादि पंक्तियाँ
   वही, पृ.78
3. विजया शर्मा - आत्मजयी चेतना और शिल्प
   अध्याय रचना की प्रकृति और परिणति, पृ.29

आधुनिक युग की अनेक रचनायें इस कथा में अंतर्निहित जीवनसत्य को सर्जनात्मक धरातल पर वाणी देती है ।

उदा । मलयज ने अपनी "नचिकेता" शीर्षक कविता में यह मुद्रा दी है कि वह अपने ही प्रियजनों और स्गों द्वारा निष्कासित किया जाकर यम से उन्हीं प्रियजनों को प्रबुद्ध करने का वर मांगता है -

"मेरा श्रेय
जुड़ा है उनसे जो मेरे हैं
जिन्होंने भेजा है मुझे तुम्हारे पास
अत: दो
ओ कालदेव
इस भूत से, वर्तमान से महत्
उस भविष्य का तीसरा वरदान मुझे दो
कि वे - मुझको नहीं
मेरी निष्ठा नहीं, मेरी पीडा नहीं -
अपने आपको देखें
उन निर्वीर्य नपुंसक मूर्तियों को तोडें
जिनके आराधन में नेत्र उनके मूंदे हैं
तोडने को जिन्हें ही
मैं ने बांह उठाई थी[1] ।

आधुनिक युग के अनिश्चय, अनास्था, कुण्ठा और अतिवैयक्तिकता के वातावरण ने जीवन-मूल्यों को विघटित एवं खण्डित कर दिया है ।

---

1. "नयी कविता" [सं. जगदीश गुप्त, विजयदेव नारायण साही],
अंक चार 1969, पृ.52

ज़िन्दगी के अनिश्चय की भावना ने क्षणवादी दर्शन और भोगवादी उष्मा को बढ़ावा दिया । तृतीय विश्व युद्ध की आशंका, विध्वंसक अणु-शस्त्रों के निर्माण परीक्षण की होड़, विश्व स्तर पर पारस्परिक तनावपूर्ण वातावरण में आस्था और मूल्यों का विघटन और बिखराव की समस्या सामने आयी जिसे धर्मवीर भारती ने "अंधायुग" के माध्यम से प्रस्तुत किया । वर्तमान युद्धसंस्कृति की विकृतियों और असंगतियों पर ध्यान केंद्रित करनेवाली इस कृति में महाभारत के मिथक को बड़े उपयुक्त ढंग से चुना गया है कुरुक्षेत्र के धर्मयुद्ध के पश्चात् की स्थिति और विश्व युद्ध के बाद की स्थिति में काफी समानता पायी जाती है । दोनों युग अन्धा रहे । कुरुक्षेत्र के युद्ध के बाद जो अन्धकार और अनिश्चितता का वातावरण रहा, विश्वयुद्धोत्तर वैश्विक स्थिति उससे भिन्न नहीं रही । महाभारत का मिथक ह्लासोन्मुखी भारतीय संस्कृति की ओर इशारा करता है । इसलिए विश्व युद्धोत्तर ह्लासोन्मुख मूल्यहीन संस्कृति को सार्थक ढंग से संदर्भित करने में "अन्धायुग" सफलता हासिल कर सकी है । महाभारत की कथा भारतीय जनमानस में एक सशक्त "आद्यबिंब (आर्किटाइप)" के रूप में विद्यमान है । धृतराष्ट्र के अन्धेपन और स्वार्थ-पिपासा के फलस्वरूप ही यह भयंकर युद्ध हुआ था । आज भी हमारे बीच धृतराष्ट्रों की कमी नहीं है और इनके कारण एक न एक तरह से "महाभारत" अब भी जारी रहता है । भारती ने इसी समस्या को "अंधा युग" में उजागर किया है । अपनी कृति के संबंध में भारती ने खुद कहा है कि "यह कथा ज्योति की है, अन्धों के माध्यम से"[1] । बिखराव, टूटन और अन्धेपन के बीच भी मानवीय मूल्यों से संपन्न होने के कारण निश्चय ही यह कथा ज्योति की है । पौराणिक मिथकीय अध्ययन को लेकर कवि ने अपने युग के व्यापक विक्षोभ को अन्तर्मन्थन द्वारा गहरी दृष्टि से उभारने की कोशिश की है और यही इस कृति को महत्वपूर्ण

---

1. धर्मवीर भारती - अन्धायुग, पृ. 5

बना देती है । "अन्धायुग" के धृतराष्ट्र अश्वत्थामा संजय, युयुत्सु आदि सभी पात्र अपने नाम और काम दोनों से मिथकीय हैं । उदाहरणार्थ युयुत्सु अनादिकाल से चली आनेवाली मानवीय पीडा और यातना का प्रतीक है । साथ ही वह आधुनिक आचरण के विभ्रमों को भी सूचित करता है अश्वत्थामा प्रतिहिंसक पशुत्व और युद्ध लिप्सा का प्रतीक है । इसतरह महाभारत के पात्रों का प्रतीकात्मक महत्व है और इसी कारण आजकी ह्लासोन्मुखी मूल्यहीन संस्कृति से सार्थक ढंग से संदर्भित करने में कवि समर्थ निकले हैं ।

श्री दुष्यन्तकुमार ने भी "एक कंठ विषपायी" में पुराणों पर आधारित कथावस्तु को आधुनिक संदर्भ में अपनाने का प्रयास किया है । श्रीमद् भागवत में वर्णित दक्ष प्रजापति के यज्ञ से संबन्धित कथा प्रसंग को प्रतीकात्मक ढंग से प्रस्तुत करते हुए उसे आधुनिक प्रश्नानुकूल युग की समस्याओं से समन्वित करने का प्रयास ही इस कृति को मिथकीय बना देता है । कवि के ही शब्दों में "जर्जर रूढियों और परंपरा के शव से चिपटे हुए लोगों के संदर्भ में प्रतीकात्मक रूप से आधुनिक पृष्टभूमि और नये मूल्यों को संकेतित करने केलिए इस कथा में पर्याप्त सामर्थ्य है
उसमें राज-लिप्सा तथा युद्ध मनोवृत्ति का मारा हुआ, सर्वहत नाम का एक नया पात्र समाविष्ट हुआ जो अनायास उभरकर आधुनिक प्रजा का प्रतीक बन गया ।[1] आज की ह्रासोन्मुखी सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था पर सटीक कटाक्ष करनेवाला यह पात्र निश्चय ही एक सशक्त मिथक प्रतीक के रूप में उभरा है । वह पौराणिक होते हुए भी आधुनिक हैं, आधुनिक प्रजा का प्रतिनिधि है । स्वयं उसके शब्दों में -

---

1. दुष्यन्तकुमार - एक कंठ विषपायी की आभार कथा में

"शासक की भूलों का उत्तरदायित्व
प्रजा को वहन करना पड़ता है
उसे गलित मूल्यों का दण्ड भरना पड़ता है
और मैं मनुष्य ही नहीं हूं
मैं प्रजा भी हूं ।"[1]

सर्वहत के द्वारा कवि ने यहाँ तक कहलवाया है कि यहाँ न जाने कितने महल है, कंगूरे हैं जिन्हें खाकर भूख मिटानी पड़ेगी क्योंकि खाने केलिए रोटी नहीं मिलेगी और,[2]

विष्णु के मुंह से इतना और -

"यह तो युद्धोपरान्त उग आयी
संस्कृति के हृासमान मूल्यों का
एक स्तूप है - भग्नप्राय
पथ हारा ।"[3]

श्री नरेश मेहता की "संशय की एक रात" में युगीन निराशा, संभ्रम एवं विषमता का सटीक चित्रण मिलता है । यहाँ भी कथा पौराणिक एवं मिथकीय है, फिर भी उसका प्रयोग आधुनिक संदर्भों के अनुकूल किया गया है । "आधुनिक विसंगतियों का राम में आरोप तथा उसके माध्यम से अपने युग की समस्याओं के समाधान के रूप में विपरीत मूल्यों,

---

1· दुष्यन्तकुमार - एक कंठ विषपायी, पृ·49
2· वही, पृ·52
3· वही, पृ·58

बोधों और मान्यताओं के बीच एक सही दृष्टि अपनाने की प्रेरणा ही मूल अभीष्ट है । यह समस्या अपने में कोई नयी चीज़ नहीं है । इस प्रकार की स्थितियाँ मानव समाज तथा इतिहास के बराबर उठती रही है । लेकिन प्रत्येक युग का "संशय" अपने ऐतिहासिक दाय और मजबूरी से अद्वितीय हो जाता है[1] । ऐकान्तिक एवं सामूहिक संघर्ष के कारण हुए विघटन को तथा आधुनिक युग के खण्डित व्यक्तित्व को योजना और सारी मानवता के लिए सार्थक मूल्यों का अन्वेषण करना, यही इस मिथकीय आख्यान में हुआ है । विभीषण के मुँह से कवि ने यह संशय प्रकट करवायया है

"कल
जब केवल हम नहीं
वृद्ध उठी शिला सा
इतिहास होगा
जब हमारे तर्क मर जायेंगे
तब
हमें क्या कहकर पुकारा जाय[2] ।"

राम का संशय यह है कि युद्ध से कितनी आपदायें जन्म लेंगी ? वह सोचता है -

"व्यक्ति का वनवास
परिजन और पुरजन केलिए
अभिशाप क्यों बन जाय ?

1· डॉ· लक्ष्मीकान्त वर्मा - संशय की एक रात की भूमिका, पृ·5
2· नरेश मेहता - संशय की एक रात, पृ·75

व्यक्तिगत मेरी समस्यायें
ऐतिहासिक कारणों को क्यों जन्म दे ?[1]"

कवि ने इस काव्य में स्वयं अपने युग के विघटित ~~मूल्यों~~ मूल्यों पर आशंका प्रकट की है । हनुमान के अनुसार सीता हमारी अपहृता स्वतंत्रता है । यहाँ घटनायें, पात्र आदि केवल पौराणिक नहीं है । वे आधुनिक युग के संशय व अनिश्चय से ग्रस्त मानसिकता को प्रतीकात्मक ढंग से अभिव्यंजित करनेवाले हैं । अतएव यह काव्य पौराणिक होते हुए भी आधुनिकता से युक्त है ।

मिथकीय इतिवृत्त को लेकर रचित और भी अनेक काव्य हिन्दी के नये कवियों ने प्रस्तुत किए है जिनमें भारती के "कनुप्रिया" और नरेश मेहता का "महाप्रस्थान" विशेष उल्लेखनीय है । "महाप्रस्थान" में नरेश मेहता ने राज्य और व्यक्ति के संतुलित संबन्धों को उद्घाटित करने की चेष्टा की है । मिथक के स्वरूप पर विचार करते हुए नरेश मेहता ने लिखा है - "मुझसे पूर्व भी अनेक सार्थक कवियों ने इन आकर-स्त्रोतों तक रचनात्मक-यात्राएं की है । इस सन्दर्भ में सबसे बडी कठिनाई यह होती है कि इन महाग्रन्थों में जो घटनाएं है यदि उन्हें यथातथ्य रूप में ही ग्रहण किया जाए तो वह रचना, मात्र इतिवृत्तात्मक तो हो ही जाएगी, लेकिन इससे भी अधिक संकट की स्थिति यह होगी कि जैसे स्फटिक प्रसन्न-जल अपनी संपूर्ण स्पष्टता में भी यह नहीं अभिव्यक्त होने देता है कि उसका जलीय व्यक्तित्व कितने "पुरुस" का है । हम साधारणतः इस प्रकार के जलीय व्यक्तित्व में इतिवृत्तात्मकता समझकर ही प्रविष्टते हैं और वह स्फटिक स्पष्टता वास्तविकता में असाधारण अथाह निकलती है ।

---

1. नरेश मेहता - संशय की एक रात, पृ.54

वैसे इससे बचने केलिए नवीन उद्भावनाओं वाला मार्ग तभी मुकर हो सकता है जब रचनाकार के पास भी उतनी ही बड़ी नयी लोकदृष्टि एवं आधुनिक सृजनात्मक क्षमता उपलब्ध हो, अन्यथा पौराणिकता के जलों को नहीं छूना चाहिए । ये ऐसी एकान्त बावड़ियाँ है जो अपने प्रशान्त जलों पर काई के आवरण डाले मौन हैं । इनमें अवगाहन आसान नहीं होता । तुलसी ने मात्र प्रसंग सम्बन्धी नवीन उद्भावनाएँ ही नहीं की बल्कि अपनी लोक दृष्टि एवं सृजनात्मक क्षमता के बल पर राम-कथा को अन्तिम रूप से धर्म-वेदी प्रदान की । इसी प्रकार कालिदास ने भी "अभिज्ञान शाकुन्तलम" में नागरिकता और आरण्यकता को प्रति-सम्मुख खड़ा करके महाभारत के एक साधारण प्रसंग को अप्रतिम बना दिया । वैसे एक और मार्ग भी है - "प्रसाद" का । "कामायनी" का अतीत, आतिरिक्त ग्रन्थिवाला या पौराणिक ग्रन्थिवाला अतीत नहीं है । "कामायनी" का वर्ण्य-विषय उस अर्थ में पौराणिक नहीं है जिस अर्थ में पौराणिकता से भय लगता है अथवा जिसकी उपेक्षा की जाती है । "प्रसाद" ने पौराणिकता हीन इस अतीत का संपूर्ण लाभ उठाया है । फिर भी यह प्रश्न तो है ही कि क्या पौराणिकता के व्यूह का भेदन करके उसमें निहित या अभिव्यक्त जीवन दृष्टि को पुन: आधुनिक सन्दर्भ दिया जा सकता है ? मुझे लगता है कि यह सर्वथा संभव है क्योंकि वे मात्र चरित्र नहीं है बल्कि मिथक है । आधुनिक कविता मे दो प्रमाण तो दिये ही जा सकते हैं कि ऐसा संभव है - "अन्धायुग" और आत्मजयी । मुख्य बात है स्वतंत्र काव्य-दृष्टि । यदि कवि के पास यह प्रज्ञात्मकता है तो वह असिन्दिग्ध रूप से सभी प्रकार के जलों में सन्तरण कर सकता है ।[1] महाभारत के मिथक पर आधारित "महा प्रस्थान" में भी आधुनिक समस्याओं का प्रतीकात्मक निरूपण ही हम देख सकते हैं । साथ ही ये मिथकीय काव्य, कवियों की सांस्कृतिक आस्था एवं परम्परा बोध के भी सूचक है । युधिष्ठिर अर्जुन से कहते हैं -

---

1. नरेश मेहता - महाप्रस्थान - भूमिका, पृ॰17-18

"व्यक्ति होगा
मानवीय वानस्पतिकता होगी और
उदात्त करुणा, प्रज्ञा होगी पार्थ !
व्यक्ति और व्यक्ति के बीच
केवल राज्य ही सूत्र है -
यह विचार ही
सब से बडा छल है ।
राज्य को शस्त्र सौंप दिये पार्थ ।
पर अब धर्म और विचार
मत सौंपो ।
राज्य-व्यवस्था की नींव में
कराहते मनुष्य का होना
एक अनिवार्यता है अर्जुन ।
कोई आश्चर्य नहीं
यदि इसी प्रकार
लूट, खसोट, युद्ध, षड्यन्त्र होते रहे
तो एक दिन
यह राज्य-व्यवस्था
सम्पूर्ण मानवता के विरुद्ध
सबसे बडा
संघबद्ध षड्यन्त्र सिद्ध हो[1] ।"

कवि की स्वीकारोक्ति है - "इन जातीय-मिथकों तथा जातीय कथाओं की सार्थकता हमारे आज के जीवन संघर्ष के संदर्भ में भी है

---

1. नरेश मेहता - महाप्रस्थान स्वाहा-पर्व-2, पृ॰111-112

"संशय की एक रात" में युद्ध की अनुपादेयता को केन्द्र बनाकर राम के प्रज्ञा-व्यक्तित्व को प्रस्तुत करने की चेष्टा की थी । प्रस्तुत काव्य में राज्य, राज्य-व्यवस्था और उस व्यवस्था के दर्शन की अमानवीय प्रकृति एवं प्रवृत्ति को स्पष्ट करना चाहा है । इसलिए मैं ने कथा और कथा-पुरुषों की निर्वेद स्थिति एवं मन-स्थिति को ही अपने दोनों काव्यों में चुना क्योंकि निर्वेद की स्थिति में ही मानवीय प्रज्ञात्मकता अपने विवेक रूप में होती है । यह अनासक्त मन:स्थिति होती है । अत: अत्यन्त स्पष्ट रूप में समस्याओं के उलझे सूत्रों को, विरोधी गतिविधियों को देख सकती है । बिना ऐसी समग्र स्थिति एवं मन:स्थिति के हम जीवन को परिभाषित नहीं कर सकते[1] ।

असाध्यवीणा अज्ञेय की सब से चर्चित कविता है । यह लंबी और समग्रत: संघटित कविता । निराला की राम शक्ति पूजा" के जोड की है । "अज्ञेय की असाध्यवीणा सर्जनात्मकता के माध्यम से आत्मबोध केलिए अपने को सबकुछ को सौंप देने से सधती है[2] ।" उक्त कविता का समस्त रचनात्मक परिवेश मिथकीय है । अज्ञेय ने मिथकीय परिवेश के सहारे कवित्य के इस वैशिष्ट्य का एक सशक्त साक्ष्य प्रस्तुत किया है[3] । इस कविता में प्रापंचिक सत्ता का प्रतीकीकरण वृक्ष की उपस्थिति से संपन्न हुआ है । वीणा उसी वृक्ष से घटी गयी है ।

"यह वीणा उत्तराखण्ड के गिरि-प्रान्तर से
-घने वनों में जहाँ तपस्या करते हैं व्रतचारी-
बहुत समय पहले आयी थी ।

1· नरेश मेहता - महाप्रस्थान - प्रस्थान पूर्व, पृ·24

2· रामस्वरूप चतुर्वेदी - अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्यायें, पृ·29

3· अज्ञेय [सं·] विश्वनाथ प्रसाद तिवारी - जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव के मि परिवेश शीर्षक लेख से उद्धृत, पृ·267

पूरा तो इतिहास न जान सके हम
किंतु सुना है
वज्रकीर्ति ने मन्त्रपूत जिस
अति प्राचीन किरीटी तरु से इसे गढा था -
उसके कानों में हिम-शिखर रहस्य कहा करते थे अपने
कन्धों पर बादल सोते थे,
उस की करि-शुण्डों-सी डालें
हिम-वर्ष से पूरे वन-यूथों का कर लेती थी परित्राण
कोटर में भालू बसते थे,
केहरी उसके वल्कल के कन्धे खुजलाते आते थे।
और सुना है - जस उसकी जा पहुँची थी पाताल लोक,
उसकी गन्ध-प्रवण शीतलता से फण टिका नाग वासुकि सोता
उसी किरीटी तरु से वज्रकीर्ति ने
सारा जीवन इसे गढा
हठ-साधना यही थी उस साधक की -
वीणा पूरी हुई, साथ साधना, साथ ही जीवन-लीला[1]।"

किरीटी तरु के इस असीम प्रस्तुतीकरण में दिक् और काल का मिथक विवृत होता है। प्रस्तुत कविता के दूसरे खंड में वीणा को पहचानने केलिए कलाकार को (प्रियंवद को) उसके मूल तक पहुँचना पडता है यहाँ भी मिथकीय वातावरण सृजित किया गया है। साधना और अनुष्ठान का मिथक यहाँ प्रस्तुत होता है।

---

1. अज्ञेय - आँगन के पार द्वार, पृ.68

"पर उस स्पन्दित सन्नाटे में
मौन प्रियंवद साध रहा था वीणा -
नहीं, स्वयं अपने को शोध रहा था ।
सघन निबिड में वह अपने को
सौंप रहा था उसी किरीटी-तरु को ![1]"

xx xx xx

ओ रे तरु ! ओ वन !
ओ स्वर-सम्भार ?
नादमय संसृति ।
ओ रस प्लावन ।
मुझे क्षमाकर - भूल अकिंचनता को मेरी -
मुझे ओट दे - ढँक ले - छा ले -
ओ शरण्य ।
मेरे गूँगेपन को तेरे सोये स्वर-सागर का ज्वार डुबा ले ।
आ, मुझे भुला,
तू उतर बीन के तारों में
अपने से गा
अपने को गा -
अपने खग-कुल को मुखरित कर
अपनी छाया में पले मृगों की चौकड़ियों को ताल बाँध,
अपनी छायातप, वृष्टि-पवन, पल्लव-कुसुमन की लय पर
अपने जीवन-संचय को कर छन्दयुक्त
अपनी प्रज्ञा को वाणी दे ![2]"

---

1. अज्ञेय - आँगन के पार द्वार, पृ.69
2. वही, पृ.71।

इस प्रसंग में यह बता देना संगत लगता है कि अज्ञेय की अन्य कविताओं में भी स्वयं प्रकृति मिथक का रूप धारण कर लेती है । प्रकृति में सर्जनात्मक संबंध को प्राप्त करने की इच्छा के कारण प्रकृति मिथक के परिवेश में परिकल्पित है । उनकी "हमने पौधे से कहा" नामक कविता में पौधे को "सृष्टि शक्ति की आध्यमात्का" कहकर संबोधित किया है । बावरा अहेरी नामक कविता में आत्मबोध और आत्मदान की आवश्यकता से प्रेरित होकर उन्होंने प्रकृति को माध्यम के रूप में स्वीकार किया है । बावरा अहेरी उक्त कविता में मात्र सूर्य का प्रतीक नहीं बल्कि सूर्य - संकल्पना का मिथक भी है । सौंदर्य की अकृत्रिमता से वशीभूत होकर कवि स्वच्छ प्रकृति के सन्मुख नमन कर रहा है । इन पंक्तियों में गायत्री मंत्र का सा ध्वनि-संकेत मिथकीय वातावरण उत्पन्न करता है ।

बावरे अहेरी रे
कुछ भी अवध्य नहीं तुझे, सब आखेट है
एक बस मेरे मन-विवर में दुबकी कलौंस को
दुबकी ही छोड कर क्या तू चला जाएगा ?
ले, मैं खोल देता हूं कपाट सारे
मेरे इस खंडहर की शिरा-शिरा छेड दे
आलोक की अनी से अपनी
गढ़ सारा ढाह कर ढूह भर कर दे
विफल दिनों की तू कलौंस पर मांज जा
मेरी आंखें आंज जा कि तुझे देखूं
देखूं, और मन में कृतज्ञता उमर आय
पहनूं सिरोपे से यह कनक-तार-तेरे बावरे अहेरी रे ।[2]

1· अज्ञेय - सदानीरा (भाग - 1)

2· वही

मिथकीय इतिवृत्त को लेकर लिखी गयी मुक्तक कविताओं की हिन्दी में भरमार ही हम देख सकते हैं। धर्मवीर भारती की "बृहन्नला" "संपाती", "रथ का टूटा पहिया" आदि, कुंवर नारायण की चक्रव्यूह, बरसात आदि अज्ञेय की "इतिहास की हवा आदि व सी कवितायें, दुष्यन्त कुमार की "कुंती", "चक्रव्यूह" आदि कीर्ति चौधरी की "एकलव्य" "केदारनाथ सिंह की "दिग्विजय का अश्व", "दिग्वि... आदि प्रभाकर माचवे की "नितांत वेणु", डॉ॰ जगदीश गुप्त की "काव्य सत्य", "कौन भूमि" होगी जहाँ" आदि विपिनकुमार अग्रवाल की "एक संस्कृति की मौत" जैसी अनेकानेक कवितायें इस संदर्भ में उद्धृत करने योग्य हैं। इन सभी कविता में पारस्परिक पौराणिक कथा के होते हुए कवियों का लक्ष्य आधुनिक युगजीवन की विसंगतियों, विकृतियों, भ्रष्टाचारों तथा वैयक्तिक एवं सामाजिक स्तर की बहुमुखी समस्याओं का निरूपण ही रहा है । इसलिए ये सभी कवितायें परंपरा से अनुप्राणित होते हुए भी आधुनिक और नयी है ।

मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं में लोकमानस से गृहीत अनेक लोक-मिथकों और आद्यबिंबों का उपयोग किया है । मुक्तिबोध का "ब्रह्मराक्षस" नयी कविता के लोकमिथकीय प्रयोग का एक अच्छा उदाहरण है वह 'टेरर' का प्रतीक है जो युगीन 'ट्रेजेडी' का बोध देता है और मूल्यों के संघर्ष को उभारता है । एक तरह से वह हमारे अतृप्त अवचेतन का प्रतीक है जो हमें अपनी परंपरा से जोडने के लिए बेचैन है । ब्रह्मराक्षस जो इतिहास-मन में कैद है, वहाँ बैठकर पागल जैसा बडबडाता रहता है और अपना मैल धो डालने की कोशिश करता है ।

बावडी की उन घनी गहराइयों में शून्य
ब्रह्मराक्षस एक पैठा है
व भीतर से उमडती गूँजें की भी गूँज
हडबडाहट - शब्द पागल से ।
गहन अनुमानितता
तन की मलिनता
दूर करने के लिए प्रतिपल
पाप-छाया दूर करने केलिए, दिन-रात
स्वच्छ करने -
ब्रह्मराक्षस
घिस रहा है देह
हाथ के पंजे, बराबर,
बाँह-छाती-मुँह छपाछप
खूब करते साफ
फिर भी मैल
फिर भी मैल !![1]

यह ब्रह्मराक्षस हमारे सामूहिक अवचेतन से गृहीत एक आदिम बिम्ब है जिसके समुचित प्रयोग द्वारा कवि यह साबित करना चाहते हैं कि सांस्कृतिक परंपराओं के समान ही हमारी परंपरायें भी हैं, जिनसे छुटकारा पाना किसी के लिए भी आसान नहीं है । कारण कि ये हर व्यक्ति अचेतन से स्वत: ही विद्यमान हैं । कवि इससे अवगत है, इसलिए आधुनिकता से उसे संबद्ध करने केलिए कवि आतुर रहता है ।

1· मुक्तिबोध - ब्रह्मराक्षस चाँद का मुँह टेढा है, 1981, पृ·7

मुक्तिबोध की "दिमागी गुहान्धकार का ओरांग उटांग" और एक उदाहरण है -

एक गुप्त प्रकोष्ठ और
कोठे के साँवले गुहान्धकार में
मज़बूत सन्दूक
दृढ़, भारी-भरकम
और उस सन्दूक भीतर कोई बन्द है
यक्ष
या कि ओरांगउटांग हाय
अरे! डर यह है
न ओरांग उटांग कहीं छूट जाय,
कहीं प्रत्यक्ष न यक्ष हो ।
करीने से सजे हुए संस्कृत प्रभामय
अध्ययन-गृह में
बहस उठ खड़ी जब होती है -
विवाद में हिस्सा लेता हुआ मैं
सुनता हूँ ध्यान से
अपने ही शब्दों का नाद, प्रवाह और
पाता हूँ अकस्मात्
स्वयं के स्वर में
ओरंगउटांग की बौखलाती हुंकृति ध्वनियाँ
एकाएक भयभीत
पाता हूँ पसीने से सिंचित
अपना यह नग्न मन ।[1]

---

1 मुक्तिबोध - दिमागी गुहान्धकार का ओरांगउटांग चाँद का मुँह
पृ. 14

अशोक वाजपेयी के अनुसार "मुक्तिबोध के जटिल अनुभव को कोई अकेली मिथ-चरितार्थ करने में शायद समर्थ नहीं हो सकती थी। इसलिए उन्होंने कई मिथों के टुकडों को फैंटेसी में संयोजित किया है। अनुभव और यथार्थ का अनथक विश्लेषण मुक्तिबोध की कविता का एक बुनियादी सरोकार है।"[1]

मुक्तिबोध अंदर के जानवर को भी छिपाते नहीं बल्कि उसका साक्षात्कार करते हैं -

स्वयं की ग्रीवा पर
फेरता हूँ हाथ कि
करता हूँ महसूस
एकाएक गरदन पर उगी हुई
सघन अयाल और
शब्दों पर उगे हुए बाल तथा
वाक्यों में ओरांग उटांग के
बढे हुए नाखून !![2]

ओरांग-उटांग आज का वह मानव है, जिसने सभ्यता का आवरण पहन रखा है फिर भी अन्दर से असभ्य या जंगली है। उनके नाखून आज के इसी खोखली मानव की हीन-हिंसक वृत्तियों एवं अचेतन में दबी पाशविक के प्रतीक है। इस ओरांग-उटांग को कैद रखकर विवेक पैदा करने में ही संस्कृति की विजय होगी। मन की भीतरी परतों में बैठकर खलबली मचा रहनेवाले इस ओरांग-उटांग की आवाज़ सुनकर कवि डरता है और अन्त मे

---

1. अशोक वाजपेयी - फिल हाल, पृ. 115
2. मुक्तिबोध - दिमागी गुहान्धकार का ओरांगउटांग चाँद का मुँह टे पृ. 16

इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जब तक मनुष्य अपने अंदर की पराशक्तियों से छुटकारा नहीं पायेगा, तब तक उसकी वास्तविक मुक्ति संभव नहीं है ।

मुक्तिबोध की और एक मिथकीय कविता है "लकड़ी का बना रावण" । यह मिथक कविता है आज के व्यक्ति का वह मन है, जो सभ्यता के आवरण में रहने पर भी अन्दर से जड़ और खोखला है । उसे जला देना व्यक्तित्व की वास्तविक उन्नति के लिए अनिवार्य है ।

सब तरफ अकेला,
शिखर पर खड़ा हूँ
लक्ष-मुख दानव-सा, लक्ष-हस्त देव-सा ।
परन्तु, यह क्या
आत्म-प्रतीति भी धोखा ही दे रही !!
स्वयं को ही लगता हूँ
बाँस के व कागज़ के पुट्ठे के बने हुए
महाकाय रावण-सा हास्यप्रद
भयंकर !!
हाय, हाय,
उग्रतर हो रहा चेहरों का समुदाय
और कि भाग नहीं पाता मैं
हिल नहीं पाता हूँ
मैं मन्त्र-कीलित सा, भूमि में गड़ा-सा,
जड़ खड़ा हूँ
अब गिरा, तब गिरा
इसी पल कि उस पल ....! ।

---

1. मुक्तिबोध -लकड़ी का बना रावण (चाँद का मुँह टेढ़ा है) पृ.22

मुक्तिबोध ने जनसामान्य के बीच प्रचलित "रामलीला" के संदर्भ से चुराकर ही इस मिथक-बिंब को प्रस्तुत किया है । रामलीला में रावण की "मूर्ति" जलायी जाती है । इस लोक-परंपरा को प्रतीकात्मक ढंग से अपनाकर इस तरह की जडता को जला देने की और इसतरह मानसिक संशोधन की ज़रूरत की ओर इशारा किया गया है । इस कविता में लकडी का बना रावण हमारी लोक परंपरा से गृहीत एक आद्यबिंब के रूप में उभारा गया है । प्रगति के मार्ग पर अवरोध लगानेवाले, परंपरा के जड तत्वों को मिटा देने की ज़रूरत भी इसमें संकेतित है ।

उपरोक्त प्रकारों के अतिरिक्त नयी कविता में मिथकों का प्रयोग और भी दिशाओं में संपन्न हुआ है । कहीं मूलक के रूप में, कहीं प्रतीक रूप में, कहीं उपमानों के रूप में और कहीं वातावरण सृष्टि केलिए नये कवियों ने मिथकों का प्रयोग किया है । मिथक प्रयोगों के ये प्रकार मुख्यत: मुक्तक कविताओं में ही देखने को मिलते हैं । ऐसी मुक्तक कविताओं की समकालीन हिन्दी कविता में कोई कमी नहीं है । कहीं इनका प्रयोग कवि अपनी गहरी सांस्कृतिक आस्था को व्यक्त करने केलिए करता है तो कहीं परंपरा के जड पक्षों से छुटकारा दिलवाकर समाज के प्रगति-पथ पर अग्रसर कराने केलिए भी । मिथक चाहे सांस्कृतिक हो, या प्रगतिशील, परंपरा से उसका संबंध तो असंदिग्ध है ही और यही परंपरा बोध नयी कविता की सबसे उल्लेखनीय नवीनताओं में एक मानी जाती है । यदि नया कवि प्राचीन सांस्कृतिक तत्वों अथवा उपादानों से नये भाव बोध को वाणी देता है, तो इससे उसका प्राचीन संस्कृति-प्रेम ही प्रकट होता है । नया कवि अपनी अभिव्यक्ति में इस प्रकार नवीन और पुरातन का समन्वय भी कर रहा है । और परंपरा को पिष्ट-पेषण के अर्थ में ग्रहण न कर विकसित और स्वस्थ रूप में देख रहा है ।

उसके इन प्रयासों से नयी कविता परंपरा से संपृक्त होकर भी प्रगति की ओर उन्मुख है। नयी कविता के अन्तर्गत आनेवाली अनगिनत मिथकीय कवितायें इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं।

अब हम नयी कविता में प्रयुक्त मिथकीय प्रतीकों और उपमानों के स्वरूप पर भी एक नज़र डालेंगे। ये प्रतीक और उपमान प्रमुखत: हमारे प्राचीन सांस्कृतिक स्रोत, जैसे इतिहास-पुराण आदि से लिये गये हैं। विदेशी साहित्य और संस्कृति से लिए गए प्रतीक और उपमान भी नयी कविता में यत्र तत्र पाये जाते हैं। किंतु ज्यादातर प्रतीक और उपमान महाभारत, रामायण, भागवत् आदि के कथा विस्तार से चुने गए हैं। महाभारत से गृहीत प्रतीकों में चक्रव्यूह, द्रौपदी, चीरहरन आदि प्रसंगों को अधिक लिया गया है। वैसे अर्जुन, सुभद्रा, अभिमन्यू, कुन्ती, गांधारी, संजय, विदुर आदि भी प्रतीक के रूप में आये हैं जो विभिन्न भावनाओं और मनस्थितियों की सांकेतिक अभिव्यक्ति करते चलते हैं। इसी प्रकार मनोदशाओं की अभिव्यक्ति के लिए अनेक प्राचीन साहित्यकारों को प्रतीकत्व दिया गया है जैसे बाबा तुलसीदास, बाणभट्ट, हर्ष, विद्यापति, कालिदास आदि। इनके अतिरिक्त प्रामोथियस, सिसिफस, रोमियो और जूलियट जैसे विदेशी-प्रतीक पात्रों का भी नये कवियों ने काफी इस्तेमाल किया है। पौराणिक प्रतीकों के क्षेत्र में अधिकतर महाभारत से गृहीत है। उदाहरण के लिए चक्रव्यूह के प्रतीक। धर्मवीरभारती, कुंवर नारायण, दुष्यन्तकुमार आदि अनेक कवियों ने इस प्रतीक का सफल प्रयोग किया है। कुंवर नारायण ने आधुनिक संघर्ष कालीन व्यक्ति केलिए अभिमन्यू का प्रतीक अपनाया है -

---

1. डॉ. हरिचरण शर्मा - नयी कविता का मूल्यांकन परंपरा और प्रगति भूमिका पर, पृ.254

कौन कल तक बन सकेगा कवच मेरा
युद्ध मेरा मुझे लड़ना
इस महाजीवन सफर में अन्त तक कटिबद्ध
सिर्फ मेरे ही लिए यह व्यूह मेरा
मुझे हर आघात सहना
गर्भ निश्चल में नया अभिमन्यु, पैतृक युद्ध ।[1]"

एक अन्य स्थान पर भी कुंवर जी ने "व्यूह" और "अभिमन्यू" के प्रतीक अपनाये है जहाँ व्यूह रूढियों का और अभिमन्यु उस साहसी व्यक्ति का प्रतीक है जो परंपरा और रूढि की निर्जीविता को निर्भय होकर तोडने केलिए तत्पर है -

जहाँ सदियाँ पुराना "व्यूह" ज्यों दुर्भेद्य था टूटा,
जहाँ अभिमन्यू कई भयों के आतंक से छूटा ।[2]"

धर्मवीर भारती ने भी "चक्रव्यूह" और अभिमन्यू के प्रतीकों का प्रयोग किया है -

"मैं रथ का टूटा पहिया हूँ
लेकिन मुझे फेंको मत
क्या जाने कब
इस दुरूह चक्रव्यूह में
अक्षौहिणी सेनाओं को चुनौती देता हुआ
कोई दुस्साहसी अभिमन्यू आकर घिर जाये ।[3]"

1· कुंवर नारायण - नयी कविता अंक 3, पृ·42
2· वही, पृ·42
3· धर्मवीर भारती - सात गीत वर्ष, पृ·92-93

दुष्यन्तकुमार ने भी इन प्रतीकों का उपयोग किया है[1]। अभिमन्यु को संघर्षशील व्यक्तित्ववाले पुरुष और चक्रव्यूह को जटिल संघर्ष के रूप में लक्ष्मीकान्त वर्मा ने भी धृतराष्ट्र और अभिमन्यु को प्रतीक रूप में अपनाया है। उनकी कविता में धृतराष्ट्र आज के अन्धे और उस अविवेकी व्यक्ति का प्रतीक है जो सब कुछ समझता है, फिर भी मौन रहता है और अभिमन्यु संघर्ष रत आज की युवा पीढी का प्रतीक -

तुमने मांगा है आज रक्त
ओ धृतराष्ट्र की संतानों!
मैं दूंगा
मैं दूंगा अपना भविष्य अभिमन्यु
किंतु कहो उस अन्धे धृतराष्ट्र से
उस माँ प्रसूता करुणा से
यह बनावटी पट्टियाँ आंखों से आरे[2]।"

श्रीराम वर्मा ने अपनी चीन-भारत युद्ध के संदर्भ में लिखी कविता में वास्तविक स्थिति को विज्ञापित करने केलिए "युधिष्ठर" का प्रतीक प्रस्तुत किया है[3]। डॉ॰ जगदीश गुप्त ने भी युधिष्टर का प्रतीक इसी अर्थ संदर्भ में प्रयुक्त किया है[4]। महाभारत से गृहीत अन्य प्रतीकों में अर्जुन, सुभद्रा, कुन्ती, कर्ण, अश्वत्थामा आदि पात्र भी नयी कविता में आधुनिक मानव की विभिन्न भाव-दशाओं और मन:स्थितियों के प्रतीक बनकर आये हैं। "सामाजिक मूल्यों के विघटन की स्थिति में आज मनुष्य

---

1. दुष्यंतकुमार - नयी कविता अंक 4, पृ॰131-132
2. लक्ष्मीकान्त वर्मा - नयी कविता अंक 7, पृ॰156
3. श्रीराम वर्मा - नयी कविता अंक 7, पृ॰162
4. डॉ॰ जगदीश गुप्त - हिमविद्ध, पृ॰24

अपने आप को शून्यवत् और खाली-खाली-सा अनुभव करने लगा है । वह अपने को नचिकेता-सा उपेक्षित, एकलव्य-सा प्रवंचित और निशस्त्र, अभिमन्यु-सा असहाय अनुभव करता है । नयी कविता में प्रयुक्त अन्य अनगिनत मिथक-प्रतीकों में द्रौपदी और दुश्शासन §हरिनारायण व्यास§ कवच और कुण्डल §गिरिजाकुमार§ राम, रावण और स्वर्ण-लंका §भारत भूषण§ जटायु §दुष्यन्त§ संपाती §नरेश मेहता§ भरत दुष्यन्त और शकुंतला §लक्ष्मीकान्तवर्मा एवं नलिन विलोचन शर्मा§ एकलव्य और द्रोण §अज्ञेय§ तक्षक और परीक्षित §लक्ष्मीकान्त§, दधीची §कुंवर, लक्ष्मीकान्त§ प्रोमिथियस या प्रमथ्यु §भारती§ हर्षवर्धन और बाणभट्ट §भारती§ आदि विशेष उल्लेखनीय है । ये प्रतीक प्राय: दो मनोवृत्तियों की व्यंजना को प्रेषित करने केलिए अपनाये गए हैं - एक तो आधुनिक संकट और मूल्यों के विघटन से उत्पन्न मन:स्थिति और भावना को स्थापित करने केलिए और दूसरे व्यंग्य को तीक्ष्णता से उभारने केलिए । इन प्रतीकों के अपनाव से नये कवियों का ऐतिहासिक बोध प्रमाणित होता है । सांस्कृतिक प्रतीकों के माध्यम से ये कवि नयी भाव भूमि पर उतरते दिखाई देते हैं ।

प्रतीकों के समान ही उपमानों के क्षेत्र में भी नये कवियों ने पौराणिक आख्यानों से काफी सहायता ली है । ये उपमान भी नयी कविता के सांस्कृतिक पहलू को पुष्ट करनेवाले हैं, कवियों का परंपरा-बोध भी इनसे उजागर होता है । पौराणिक या मिथकीय उपमानों के प्रयोग प्राय: सभी नये कवियों ने मिलते हैं, फिर भी भारती, लक्ष्मीकान्त वर्मा, कुंवरनारायण, गिरिजाकुमार, श्रीरामवर्मा, नरेश मेहता, मदन वात्स्यायन आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । धर्मवीर भारती ने "परछाई" के निमित्त जो पौराणिक उपमान प्रस्तुत किया है, वह बडा सटीक है -

वनी बर्फ पर
इस उबड़-खाबड़ घाटी में
पाण्डवराज युधिष्ठिर के काले कुत्ते-सी
पीछे-पीछे पूँछ दबाये
आखिर कब तक संग निभायेगी तू मेरा
ओ मेरी परछाई मेरा साथ छोड दे[1] ।"

इसी प्रकार "जाडे की शाम" शीर्षक कविता में भारती ने जाडे की मनहूस संध्या को "यम की चिडिया" से उपमित किया है[2] । एक अन्य स्थान पर "गंगावतरण" के रूप में कविता का चित्रण किया गया है[3] । मदन वात्स्यायन ने दांतों की शुभ्रता केलिए "सप्तर्षि" का उपमान चुना है[4] । इसी प्रकार सरकारी कारखाने में आए नये कर्मचारी की भावनाओं के चित्रण केलिए उन्होंनें "कामधेनु" "पांचजन्य" और "अलका" के उपमान दिये हैं[5] । इतना ही नहीं "पॉवर प्लाट" के लिए उन्होंने जटा से जोगिनी निकालनेवाले शिव का उपमान दिया है । मिट्टी काटनेवाली मशीन उसे नन्दी बैल और वेजन उलटनेवाला यन्त्र "हनुमान-सा प्रतीत होता है[6]

पौराणिक उपमानों के प्रयोग के क्षेत्र में लक्ष्मीकान्त वर्मा और गिरिजाकुमार माथुर के अपने अलग अलग स्थान है । वर्माजी के पौराणिक उपमान अधिकांशतः लाक्षणिकता और प्रतीकात्मकता लिए हुए हैं । प्राचीन पात्रों और कथा-प्रसंगों को उपमान का बाना पहनाकर लिखी गई ये पंक्तियाँ देखिए -

---

1. धर्मवीर भारती - ठंडा लोहा, पृ.82
2. धर्मवीर भारती - दूसरा सप्तक, पृ.196
3. वही, पृ.200
4. वही, तीसरा सप्तक, पृ.154
5. वही, पृ.176
6. वही, तीसरा सप्तक, पृ.176

"मैं मर्यादा युक्त पुरुषोत्तम नहीं हूं
इसलिए कहता हूं
पकड़ो मेरे अश्वमेधी यज्ञ के घोड़ों को
तुम्हारे बाबा ने जो लक्ष्मण - रेखायें बनायी थीं
मिटा दो उन्हें
क्योंकि तुम ज्योति-पुत्र हो[1] ।"

इसी प्रकार "मैं अपने भविष्य अभिमन्यु को तथा परीक्षित को भी तक्षकों को सौंप दूंगा[2] ।" जैसे प्रयोगों में पौराणिक उपमानों को प्रतीकवत् प्रस्तुत किया गया है । एक अन्य स्थान पर उन्होंने "दधीची अस्थियों का उपमान दिया है[3] । कुंवर नारायण ने भी "ये दधीची अस्थियों पर दाव में तप ले[4] । कहकर उत्सर्ग और त्याग की भावना को व्यक्त किया है । गिरिजाकुमार माथुर ने भी अनेक पौराणिक प्रसंगों और पात्रों के उल्लेख द्वारा पौराणिक उपमानों को प्रश्रय दिया है । इनके उपमान सहज और नैसर्गिक आभा से मंडित हैं ।

उदाहरणार्थ -

"लगता है आज भी वह तेज़ चिनगारी
गिरी थी ज्यों उदास अशोक वन में
मुद्रिका प्यारी
वही है मेघदूत नये ज़माने का
वही है हंस
दमयन्ती मिलन को पास लाने का[5] ।

---

1. लक्ष्मीकान्त वर्मा - नयीकविता अंक 7, पृ.159
2. वही, पृ.156
3. वही, पृ.157
4. कुंवर नारायण - चक्रव्यूह, पृ.107
5. गिरिजाकुमार माथुर - शिला पंख चमकीले, पृ.25

एक अन्य स्थान पर उन्होंने दुःख के लिए "यम" का उपमान दिया है[1]। इनकी "पृथ्वी प्रियतम" शीर्षक कविता भी पौराणिक उपमानों के भव्य प्रयोग की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय बन गयी है। इसमें कवि का कहना है -

"यह मदन धनुष-सा बक चंद्र
है पंच कुसुम पंचमी कला
रति के गोरे रोचन तन-सी
खिल रही कपूरी चन्द्र प्रभा[2]।"

इसी प्रकार "युग की पूजित गति-सी कविता की भागीरथी[3] तथा "रश्मिशिखा के कमल पर तू भारती सी। पूर्व के जन जागरण की आरती सी जैसी पंक्तियाँ भी अत्यन्त भव्य बन पड़ी है[4]। इसी तरह "इंदुमती" काव्य रूपक में अज-जन्म के लिए जिन पौराणिक उपमानों का उपयोग किया गया है, वे भी इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय है -

"नादिनेय रघु से अज जन्मे
ज्यों बालेन्दु क्षीर सागर से
रविकुल की श्री अज ने पायी
कार्तिकेय ने ज्यों शंकर से[5]।"

---

1. मुझ पर दुख के यम की घिरी साँवली छाया - गिरिजाकुमार माथुर, पृ. 55
2. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ. 104
3. वही, पृ. 154
4. वही, पृ. 1
5. वही, पृ. 137

नयी कविता में प्रयुक्त अन्य मिथकीय उपमानों में यक्ष और अलकापुरी उल्लेखनीय है। भारत भूषण अग्रवाल ने शापित और पीड़ित समाज को निर्वासित यक्ष से उपमित किया है -

रो रहा है आज सारा लोक बनकर यक्ष
शापित, त्रस्त निर्वासित
कौन बनकर दूत पहुँचाये संदेश
शान्ति की अलकापुरी को।[1]"

इसी प्रकार "दो मुट्ठी चावल" शीर्षक कविता में कवि ने सुदामा और कृष्ण के मिलन-प्रसंग को उपमान रूप में प्रस्तुत किया है[2]। नयी कविता में इसी प्रकार के और भी अनेकानेक प्रतीक और उपमान ढूंढे जा सकते हैं। परंपरा से गृहीत मिथकीय प्रसंगों, पात्रों आदि से संबद्ध ये प्रतीक, उपमान आदि नये कवियों की सांस्कृतिक आस्था और परंपरा बोध के ही सूचक हैं। हमारे सामूहिक अवचेतन में चिरकाल से संचित मिथकीय कथाओं, प्रसंगों और पात्रों को नूतन अर्थवत्ता प्रदान करते हुए युगीन वास्तविकता को सार्थक वाणी देने की यह प्रवृत्ति निश्चय ही नयी कविता की महती उपलब्धि है। इसमें कोई दो मत नहीं हो सकते कि नयी कविता की यह नयी प्रवृत्ति परंपरा के सहारे ही साकार हो उठी है। अतः यह कहना उचित ही है कि नये कवि परंपरा के बड़े वाहक हैं[3]।

अज्ञेय का कथन सार्थक है। आधुनिक कविता में परंपरा के कई रूप मिथकीय प्रतीति के साथ परिलक्षित होते हैं। यह पुनर्जागरण की

---

1. ओ अप्रस्तुत मन - भारत भूषण अग्रवाल, पृ.33
2. वही, पृ.79
3. अज्ञेय - दूसरा सप्तक - भूमिका, पृ.3।

मनस्थिति की उत्प्रेरणा नहीं है । आधुनिक कविता की गहराती हुई अन्तर्वृत्तियों में यह नया विकासमान पक्ष, एक गतिशील सन्दर्भ या यों कहें काल के दो विभिन्न परिदृश्य बहुधा प्रतिक्षण व्यक्त और अव्यक्त अर्थप्रतीति का आयाम देता चलता है । कभी कोई पात्र या कोई घटना संदर्भ कभी कोई संकल्प संदर्भ मिथकीयता का वातावरण देता चलता है । ऐसा क्यों है ? आधुनिक मिथक ऐसी कुछ पात्रों या घटनाओं से संबद्ध है जैसे कि सालवदॉर-द-पडरेगा ने सूचित किया है[1]। गेथे को उद्धृत करते हुए स्टॉफर ने बताया है मिथक जो एक कथा के माध्यम से मनुष्य को अपने स्व का सही बोध कराता है[2]। आत्मबोध की यह पहचान मिथकीय संकल्पना की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि है । वस्तुत: कविता के सौंदर्य विधान को रूपायित करने में तथा उसकी अनुभूति प्रवण स्थिति को प्रसारित करने में और सृष्टि के लिए नयी स्थिति उपजाने में मिथक की भूमिका है । मिथक की अर्थ कल्पना मात्र एक समान्तर कथासंदर्भ तक सीमित नहीं आधुनिक जीवन की तमाम अंदरूनी अवस्थाओं पर मिथक आघात करता है, काल के आयाम को बढ़ाती है । आधुनिक कविता की सार्वजनीनता और सार्वकालिकता के प्रसंग को तथ्यपूर्ण और अनुभूतिप्रधान बना छोड़ता है । कविता के सौंदर्यशास्त्र का यह एक महत्वपूर्ण पक्ष है। प्रतीति और यथार्थ की टकराहट अपनी समग्रता एवं सूक्ष्मता के साथ आधुनिक कविता में मिथकों के माध्यम से प्रक्षेपित होती है ।

---

1. . . . . that modern myths are to be found in the persons and actions of such figures as Don Juan, Hamlet and Don Quixote

   Quoted from the article. The Modern myth of the modern myth by Donald A. Stauffer.

   Literary Criticism 'Idea and Act' (Ed) W.K. Wimsatt (1974) Page 66.

2. . . . . and also conceive of myth as something that gives man through a fiction a clearer knowledge of himself, or a belief that he possesses such knowledge

   Ibid Page 66

उपसंहार

उपसंहार

सृजनशील मन प्रायः सौन्दर्य का कांक्षी भी होता है। सौन्दर्य बोध सृजनशील मन की अनुभूत्यात्मक स्थिति का परिचायक है। सौन्दर्य का कोई स्थिर प्रारूप नहीं रहा है। इसलिए युगानुरूप परिवर्तन को सौन्दर्य ने वहन किया है। कभी वह सत्य से साक्षात्कृत होता रहा और कभी नैतिकता से। आस्तिकता से वह परिचालित रहा और कभी स्वच्छन्दता से। इस प्रकार हम यह देख सकते हैं कि सौन्दर्य हमारी मानसिक वृत्तियों के अनुरूप, जो कि हमारे विस्तृत अनुभव जगत से परिमार्जि रहता है, बदलनेवाली अनुभूति है। वह इसलिए जटिल है कि उसमें वैयक्तिक तथा सामूहिक उपस्थिति का हमारी नैतिक एवं सांस्कृतिक प्रतिमानों की विराट चेतना का आभास बना रहता है। कविता के आस्वादन क्रम और औचित्य क्रम के इतिहास को देखने पर सौन्दर्यशास्त्रीय अवबोध के विभिन्न क्रम पहचाने जा सकते हैं। रोमान्टिक युग तक शताब्दियों तक चली आनेवाली सौन्दर्यशास्त्रीय परंपरा की एक क्षीण रेखा जीवन्त है।

लेकिन उसके बाद की कविता विश्व कविता के इतिहास में समग्र परिवर्तन क अलग इतिहास है । आधुनिक कविता ने अपना सौन्दर्यशास्त्र बनाया है ।

नयी कविता आधुनिक युग की प्रस्तावित वास्तविकता है । आधुनिक युग ने मनुष्य की स्थिति को बदला और उसकी दृष्टि को समग्रता के साथ परिवर्तित किया । दृष्टि के इस समग्र परिवर्तन के पीछे कला सापेक्ष या साहित्य सापेक्ष दृष्टि का एकांगी परिदृश्य ही नहीं है । कला-दृष्टि के विकास को परिपोषित और परिमार्जित करने में कलेतर वास्तविकताओं और सिद्धान्तों का महत्वपूर्ण योगदान है । अतः जब हम नई कविता {वस्तुत: आधुनिक कविता} के सौन्दर्यशास्त्र पर विचार करते हैं तो वह ऐसा कोई ठोस साहित्यिक नियम का सुस्पष्ट काव्यशास्त्र नहीं है । नई कविता का सौन्दर्यशास्त्र आधुनिक युग की तमाम विसंगतिय के अनुरूप अत्यधिक जटिल है । भाषा का एक सरलतम पक्ष, जो कि नई कविता में बदला है, काव्यभाषागत सन्दर्भ ही में बदला है, काव्यभाषागत सन्दर्भ ही हमें विचारणीय लगता नहीं है । काव्य भाषा के बदले हुए सन्दर्भ पर विचार करने के साथ हम उन तमाम कवि दृष्टियों पर भी पहुँच जाना चाहते हैं जिसने यह नया सन्दर्भ गढ़ित किया है । मुक्तिबोध का एक फैंटसीनुमा प्रतीक एक सामान्य शब्द का प्रति-स्थापन कार्य ही वहन नहीं करता बल्कि मुक्तिबोध के जीवन की भीषणताओं का वहन करता है और आधुनिक युग की परिकल्पनाओं का भी । अतः नई कविता का सौन्दर्यशास्त्र एक ओर आधुनिक मानस का सौन्दर्यशास्त्र है तथा आधुनिक कला का अनिर्णीत सिद्धान्त भी ।

प्लेटो से लेकर इलियट तक की सौन्दर्यशास्त्र की पश्चिमी परंपरा और आनन्दवर्द्धन, अभिनवगुप्त से विकसित भारतीय सौन्दर्यशास्त्र ने क्लासिकी कला को ही आधार बनाया है । क्लासिक कविता मर्यादित कविता है । वह नियमों का परिचालन देती है । औचितता पर विशेष

ध्यान देती है । इसलिए निर्वैयक्तीकरण सिद्धान्त तक या साधारणीकरण के नए सिद्धान्तों तक ऐसा कोई ठोस परिवर्तन नहीं हुआ है । अर्थात् परंपरा पूर्वी हो या पश्चिमी दोनों अपनी क्लासिकी सौन्दर्यचिन्तन सुरक्षित रखने में समर्थ निकली है । लेकिन आधुनिक सौन्दर्यचिन्तन केलिए कोई अखण्ड या असीम आदर्श उपलब्ध नहीं है । सम और विषम रेखाओं के समान प्रवहित सौन्दर्य चिन्तन पद्धतियाँ हमें उपलब्ध हुई हैं । क्लासिकी चिन्तन के मूल में प्राय: कोई केन्द्रीभूत सत्ता का प्रामाणीकरण है जो आधुनिक युग में संभव नहीं है । आधुनिक युग की कविता के सौन्दर्य को रूपायित करने के पीछे न जाने कितने काव्यादर्श कार्यरत रहे हैं । इनके रूपायन में और भी कई चिन्तन और संस्थाओं की भूमिका है । इसलिए आधुनिक काल की हर कविता एक अलग रचना शिल्प है । क्योंकि रचनाशिल्पों की अनुकृति सृजनात्मक अध्यवसाय नहीं बल्कि यांत्रिक और यातना भरी निर्मिती मात्र है । टी·एस· इलियट का यही मत है । वाल्टर बेंजमिन ने भी इस पर अपने "वर्क ऑफ आर्ट इन द एज ऑफ मेकानिकल रेवलूशन" नामक निबंध में {इल्यूमिनेशनस्} प्रकाश डाला है ।

कहा जा चुका है कि आधुनिक कविता के सौन्दर्यशास्त्र को निर्णीत करने में अनेक कलेतर परिदृश्यों का योगदान है । मनुष्य की मेधा ने मानवजीवन एवं परिस्थितियों को, उसकी अस्मिता एवं उसके मूल्य को समाज एवं सामाजिक अस्मिता को नए नए कोणों से देखना शुरू किया है । मार्क्सवाद और अस्तित्ववाद ऐसे दो उदाहरण हैं जिसने मनुष्य की पुरानी स्थिति को पूरी तरह बदल दिया है । फ्रायड के सिद्धान्तों ने मानसिक जगत का एक नया नक्शा ही रूपायित किया है । मार्क्स के पहले ही हेगल के सिद्धान्तों ने और अनेक दार्शनिकों ने मानवीय स्थिति के सामने प्रश्न चिह्न लगा दिया है । विज्ञान की ओर मुड़ते समय हमारी इन पूर्वधारणाओं में आमूल-चूल परिवर्तन दिखाई पड़ता है । न्यूटन के बाद की भौतिकी विज्ञान ने आधुनिक अवधारणाओं को बहुत कुछ बदल दिया है ।

ऐनस्टैन के आपेक्षिक सिद्धान्तों ने हमारे अमूर्त चिन्तन को नए सिरे से देखने और समझने को प्रेरित किया है । कालिक और स्थानिक धारणायें ही बदल गयी हैं ।

दर्शन, इतिहास, विज्ञान, नृतत्त्वशास्त्र और समाजशास्त्र की आधुनिक परिणतियों ने हमारे संस्कार को बदला । वायवीय दृष्टि के स्थान पर हमें ठोस दृष्टि मिली । इन सारी बातों की अपनी क्षेत्रीय अस्मिता है । विज्ञान की या मनोविज्ञान की पूरी बात कला चिन्तन केलिए प्रासंगिक या उचित नहीं है । लेकिन चिन्तन प्रवाह को अवरुद्ध करके उसे नया मोड देने में और वेगवान प्रवाह बना देने में ये सब सहायक रहे हैं । कविता की सौन्दर्यशास्त्रीय चर्चा में चिन्तन के प्रवाह का यह गतिरोध और उसकी नई गति अवश्य ही विचारणीय और संगत है ।

यह विशेष द्रष्टव्य है कि नई कविता प्रकारान्तर में स्वतंत्रता की उद्घोषणा है । नई कविता के मूल में स्वतंत्रताचेता मन कार्यरत है । उद्घोषणा का संबन्ध उद्बोधन से नहीं है । नई कविता की स्वतंत्रता उसकी आत्मा की उपलब्धि है । इसलिए यह भावों की कविता नहीं है । भावों से मुक्त की कविता है । वेड्सवर्थ से टी॰एस॰ इलियट तक की दूरी को इस सन्दर्भ में देखा जाना चाहिए । प्रेम और सौन्दर्य को सर्वाधिक महत्व देनेवाली कविता के स्थान पर, आस्तिकता और आस्थाओं की कविताओं के स्थान पर टी॰एस॰ इलियट की बौद्धिक कविता मिलने लगी । इसके पीछे आधुनिक युग के मानसिक द्वंद्व का परिदृश्य है । तद्युगीन संस्कार के सामने यह समस्या थी कि बौद्धिकता की तरफ झुकें या भावुकता की तरफ । हमारे आधुनिक संस्कार ने हमें बौद्धिक बनाया है ।

आधुनिकीकृत समाज का मन बौद्धिक हुए बिना नहीं रह सकता । इसलिए आधुनिक कविता की स्वातंत्र्य उद्घोषणा बौद्धिक चेतना की सही अभिव्यक्ति भी है । बौद्धिकता हमारे इतिहासबोध की परिणति है । मनुष्य को भाववादी स्थिति से मुक्त करने का उपक्रम जब कविता में शुरू हुआ तभी बौद्धिक क्षेत्र का स्फुरण हुआ है ।

सौन्दर्य चेतना की वास्तविक चर्चा भी इसी परिप्रेक्ष्य में ही संभव है । सौन्दर्य की पुरानी मान्यताओं के स्थान पर आये नये सौन्दर्यात्मक प्रतिमान इसे यों प्राप्त नहीं हुए है । इसके बदले हुए दृष्टिकोण की विकासशील स्तरीयता या परिकल्पना के पीछे हर युग में विकसित, या रूढियों के विरूद्ध सही मानवीय अस्मिता की खोज की हुई कई अर्थसंपुष्ट दृष्टियों की सृजनात्मक भूमिका है । पर इसका मतलब यह नहीं है, आधुनिक युग का प्रारंभ शताब्दियों पहले ही हो चुका था । आधुनिकता एक गतिशील विचार दृष्टि है । इसने परंपरा को स्वीकारा भी है और तोड़ा भी है और परंपरा का सृजन भी किया । अत: नए सौन्दर्यचिन्तन का संबन्ध आधुनिकता की उस सही भूमिका से है जिसने परंपरा की रूढिग्रस्तता से अपने को पूर्णरूप से मुक्त किया परन्तु आधुनिक चिन्तन में परंपरा का एक दम अभाव नहीं है । एक जीवित परंपरा का जैविक विकास उसमें देखा जा सकता है । पर जडवत् परंपरा के पूर्ण तिरस्कार का अनुभव भी किया जा सकता है । इसलिए रूढिग्रस्त सौन्दर्यात्मक प्रतिमान नई कविता ने वर्ज्य माना है । मानवीय अस्मिता को सही दिशा देने योग्य सौन्दर्यात्मक चिन्तन ही उसमें उपलब्ध होते हैं । पुरानी मान्यताओं से मुक्त होने के कारण अपनी भीतरी ऊर्जा में आधुनिक सौन्दर्यशास्त्र ने स्वतंत्रता को आत्मसात् किया है ।

नई कविता की सौन्दर्यात्मकता पर विचार करते समय विशेष रूप से ध्यान देने योग्य बात यह है कि कविता के आस्वादन के सन्दर्भ में भाषिक परिकृति मुख्य होते हुए भी उसे सौन्दर्यात्मक बनाने में भाषिक इकाइयों एवं भाषिक विशिष्टताओं का गहरा संबंध होते हुए भी आस्वादन का असामान्य धरातल भी है । अर्थात् हिन्दी कविता का हिन्दी की सीमा तक का आस्वादन होता नहीं है.। इसलिए हिन्दी कविता का सौन्दर्य पक्ष विश्वकविता के सन्दर्भ पक्ष के निकट भी है । यह हर भाषा को अपनी सही परिवृत्ति से अलगाने का उपक्रम नहीं है । पश्चिमी कविता के समकक्ष दिखाने का झूठा प्रयास भी नहीं है । कविता अपनी कुछ परिवृत्तियों के उपरान्त विश्व मानसिकता का एक प्रबुद्ध अंग ही है । अगर हमारे चिन्तन के लिए हेगल और मार्क्स अपरिचित नहीं है, या कि किर्केगॉर और सार्त्र अपरिचित नहीं है तो उसका अर्थ है, हमारी कविता अपनी स्वत्व का बोध भी पहचानती है और वैश्विक भूमिका भी समझती है । यह बात इसलिए मुख्य है कि नई कविता के सौन्दर्यात्मक प्रतिमान कविता में स्वत्व बोध से परिचालित होने के साथ यह भी व्यक्त करती है कि वह एक व्यापक सन्दर्भ भी रखती है । पाब्लो नेरूदा और सेनगॉर की कविता उसकी पूरी सौन्दर्यानुभूति के साथ हमारे सामने ही इसलिए आती है ।

अत: हर भाषा की कविता अपनी भाषिक परिवृत्ति के बाहर नयी होकर उभरती है । साथ ही हर रचना अपने रचनात्मक स्वत्व के साथ आस्वादनीय होती है । कविता के अनेकानेक संकेतों के साथ भाषा की भिन्न राशियों का संबन्ध होते हुए भी वह संवेदित होती है ।

नई कविता के सर्वेक्षण के दौरान या कविता की अन्तवृत्तियों के अध्ययन के दौरान यह बात और अधिक स्पष्ट होती है । अंग्रेज़ी की नई

कविता के प्रारंभ में नवलेखन (न्यू सिग्नेचर्स) दल के लेखकों का महत्वपूर्ण स्थान है। उसके प्रकाशन के बाद की प्रतिक्रिया आधुनिक कविता को पहचानने की दिशा में सर्वथा सहायक रही है । यह पहली बात है । दूसरी बात नई कविता की अन्तवृत्तियों की समान्तरता में प्राप्त है । अलग अलग भौगोलिक स्थिति में अलग-अलग वैचारिक सरणियों से प्रेरित और प्रभावित कृतियों में ऐसी समानता प्राप्त होती है कि कभी कभी लगता है कि भौगोलिक भिन्नतायें उतनी प्रमुख नहीं हैं । आधुनिक युग की तमाम विभीषिकाओं को भिन्न भिन्न ढंग से कवियों ने अनुभव किया है । कभी यह अन्तर्संघर्ष के रूप में, कभी तनाव के रूप में शब्द बद्ध होती है । यह उस व्यापक सच्चाई की अभिव्यक्ति है । मानवीय मूल्यों के निरंतर विघटन के बाद जिन थोथरी स्थितियों से होकर हम गुज़र रहे हैं, नैतिक मूल्यों के जिस अभावग्रस्त मंच पर खड़े हैं, झूठी और नकली दुनिया के खोखलेपन से जिस प्रकार हम आतंकित हैं, नई कविता की भीतरी दुनिया, नई कविता की समग्र संवेदना इन झूठी स्थितियों के विरुद्ध प्रतिकृत शाब्दिक क्रान्ति है । इसमें प्रमुख रूप से दो धारायें मिलती हैं । सामाजिक विसंगतियों की विकरालता से उद्भूत अनैतिक वातावरण ने जिस प्रकार हमारे दैनिक जीवन को तहस-नहस किया है, वह नई कविता का एक प्रमुख वस्तुगत यथार्थ है । दूसरी ओर हम देखते हैकि मानवीय स्थिति में आस्था-हीनता का वातावरण इस प्रकार फैल गया है कि उसने मानवीय दृष्टि की आद्रता और उसकी व्यापकता को पहचानने में कवियों को प्रेरित किया है । ऐसी आर्द्रता नई कविता के प्रारंभिक युग में इसके एकदम सघन प्रारूप हमें मिले हैं । इसलिए एक ओर प्रकट विद्रोहात्मकता का स्वर गुंजायमान रहा तो दूसरी तरफ जीवन की असंगत अवस्थाओं का चित्रण भी हुआ है । लेकिन नई कविता के उत्कर्ष के समय में हम यह देखते हैं कि उसमें वह सरलता दर्शित होने लगी जो प्राय: प्रारंभ में अनुपलब्ध थी । कविता जीवन की

समस्याओं के निकट पहुँच गई और प्रारंभिक अमूर्तन की अवस्था से एकदम मुक्त हो गई । इस प्रकार नई कविता मानवीयता की सही स्थिति की तलाश की कविता है । अतः कविता के सौन्दर्यशास्त्र के चिन्तन के दौरान आधुनिक जीवन की विभिन्न विकृतियों का दार्शनिक परिदृश्य प्रमुख हो उठता है ।

नई कविता की सौन्दर्यचेतना कविता के विभिन्न संकेतों से होकर अधिक मुखरित होती है । क्योंकि कविता को सौन्दर्य से अभिमण्डित करने में इन संकेतों का महत्वपूर्ण स्थान है । लेकिन ये संकेत आधुनिक कविता में अलंकरण की भूमिका निभानेवाले नहीं है । अगर कविता की अन्तवृत्तियों में सौन्दर्य चेतना का स्फुरण होता है तो उसके विवृत होने के अनेक माध्यम भी होते हैं । इन माध्यमों में बिम्बों, प्रतीकों और मिथकों (आद्यबिम्बों का भी) योगदान है । इन्हें आधुनिक सन्दर्भ में कविता के अन्तर्संघटन की अनिवार्य स्थिति के रूप में ही मान सकते हैं । सौन्दर्यशास्त्रीय चिन्तन में ये काव्य संकेत रचना की वास्तविक अवस्था के कुछ अर्थवान इशारे हैं ।

यह ज़रूर है कि जब हम इन कविता-संकेतों पर अलग-अलग विचार करेंगे तो हमारे सामने अलग-अलग कला आन्दोलनों एवं साहित्यिक मत मतान्तरों का व्यापक मंच खुला प्राप्त होता है । विशेष रूप से बिम्बवाद और प्रतीकवाद के सन्दर्भ में । इनका प्रारंभिक विकास कला के क्षेत्र में हुआ । कविता के क्षेत्र में आने पर भी इन आन्दोलनों का क्रमिक विकास देखा जा सकता है । इसी प्रकार मिथक दर्शन का विकास भी द्रष्टव्य है । युगीन मनोविज्ञान ने मिथक तत्व की नींव डाली । नृतत्वशास्त्र ने उसे व्यापक बनाया । इतिहास ने उसे अधिक व्यापक और गहरा बना दिया । इस प्रकार हम यह भी देख सकते हैं कि मिथक दर्शन के विकास में भी बहुत सारे चरण हैं ।

कविता में बिम्बों, प्रतीकों और मिथकों की अवधारणा के पीछे अनेक आधुनिक वैज्ञानिक चिन्तन का प्रभाव देखा जा सकता है। लेकिन उससे बढ़कर यही मुख्य है कि बिम्बों और प्रतीकों तथा मिथकों की सहायता से कविता की भीतरी अन्विति बनती है। उस भीतरी अन्विति का सौन्दर्य कविता को समग्रता के साथ परिवर्तित कर लेता है। यहाँ विशेष दृष्टव्य बात यही है कि नई कविता ने बिम्ब के माध्यम से बिम्बात्मक कविता का सृजन नहीं किया था। बिम्बवादी होने का उपक्रम नहीं किया है। उसने कविता को गहरी दृष्टि से संपन्न किया। इसी प्रकार प्रतीकों ने नई कविता का अर्थविस्तार किया है। पर यह अर्थविस्तार शब्द प्रतिस्थापन प्रक्रिया मात्र नहीं है। नई कविता में प्रतीक भाषाई विशिष्टताओं तथा वैश्विक परिणतियों तक प्रसारित होता है। अकसर मिथकों ने आधुनिक कविता को विभिन्न ज्ञानवृत्तों से मंडित किया इसलिए मिथक कभी भाषा से कभी हमारी प्राकृत स्थितियों से, कभी हमारी सांस्कृतिक मानसिकता से जुड़ता है।

नई कविता की भाषा के संरचनात्मक पक्ष का विशेष महत्व है क्योंकि कविता के सौन्दर्य के साथ भाषा का गहरा संबन्ध हैं। बिम्बों, प्रतीकों और मिथकों के द्वारा ने आधुनिक कविता की भाषा को एक ओर गूढ भी बना दिया है। दूसरी तरफ अधिक संरचनात्मक भी। उसकी गूढ़ता जीवन की जटिलता से ही संबन्धित है। जटिल अवस्था ने सूक्ष्म भाषा को गढा तथा उसमें अनेकायामी बिम्बों, प्रतीकों को सृजित किया नई कविता के दौर में ही प्राप्त सौन्दर्यात्मक पक्ष की यही परिवर्तित ि कि उसमें बिम्बग्राही दृष्टि अधिक जटिल नहीं रह गयी। इसलिए भाषा की यह प्रवृत्ति कालान्तर में परिवर्तित होकर एक सरल सृजनात्मक भाषा मोह में परिवर्तित हुई।

उपरिवत् सूचित किया गया है कि आधुनिक कविता की हर रचना एक विशेष रचना शिल्प है । जब हम आधुनिक कविता के रूप शिल्प पर विचार करते हैं तो पता लगेगा कि कथ्य के अनुरूप रूप शिल्प का सौन्दर्य पक्ष पुनर्गठित हुआ है । उदाहरणार्थ एक विशेष मिथक इसकी संवेदना को तथा उसके बाहरी रूप को नियंत्रित करता है । ऐसे सन्दर्भों में सौन्दर्य की समग्र प्रतीति का आभास मिलता है ।

साराशतः हम अनुभव करते हैं कि नई कविता का सौन्दर्यशास्त्र नए युग और नई दृष्टि के अनुरूप व्यापक और गहरा है । सौन्दर्य को लेकर हमारी धारणायें जिस तेज़ी से बदली उसी तेज़ी से हमारी नई कविता भी बदली है । अतः स्वाभाविक है कि सौन्दर्य चेतना भी बदलती हैं । त्याज्य ग्राह्य विवेक के नये सन्दर्भ के साथ जुड़कर हम नए सौन्दर्य बोध का सन्दर्भ परिकल्पित भी करते हैं ।

अब तक सौन्दर्यशास्त्र की विभिन्न स्थितियों का अवलोकन हमने किया है । हिन्दी की नई कविता के युग में पदार्पण करते समय हमें पूरा रचनात्मक वातावरण का अनुभव होता है । प्रयोगवाद के दौर में ही हमारी चेतना में बौद्धिकता जागृत हुई थी और कविता की भीतरी अवस्था को पहचान होने लगी थी । छायावादी काव्य सौन्दर्य की एकांगिकता के विरुद्ध प्रयोगवादी नयी कविता की व्यापक चेतना का निर्धारण नई कविता की पहली उपलब्धि है ।

हिन्दी की नयी कविता ने हमारे स्वत्व बोध को जगाया है, हमारी वास्तविक स्थिति से हमें परिचित कराया है । युगों से चली आनेवाली मर्यादित काल सरणी और सौन्दर्य बोध को एकदम तिरस्कृत करके नए सौन्दर्य से हमारा साक्षात्कार करवाया है । बाह्य रूपों को

परिवर्तित करते हुए नई कविता के समय तक आते आते कविता की आन्तरिक स्थिति बदल गई है । इसे हम सौन्दर्य का बदलाव कह सकते हैं । अज्ञेय और मुक्तिबोध के सौन्दर्य बोध की यही प्रासंगिकता है । हमारी जीवन-जटिलताओं के विभिन्न आयाम, हमारे अन्तर्संघर्षों और आन्तरिक तनावों के बहुमुखी पक्षों को नयी कविता ने उठाया । इसलिए नई कविता तद्विषयक भाषा के एक युग का प्रतिनिधित्व भी करती है तथा अपनी भाषाई सीमा का उल्लंघन भी करती है । तीसरी दुनिया की तमाम जटिलताओं को हिन्दी की नयी कविता में स्वर मिला है । इस अर्थ में हिन्दी की नयी कविता विश्वकविता के विशाल परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण स्थान भी रखती है ।

नई कविता के दौर में हमें विभिन्न कवियों की विविधोन्मुखी कविताएँ मिलीं विभिन्न रूपाकार भी मिले हैं । अज्ञेय और मुक्तिबोध की कविता शमशेर बहादुर सिंह और विजयदेवनारायण साही की कविता को सामने रखकर देखते समय रचनागत वैभिन्न्य का पता चल सकता है । "असाध्यवीणा", "अँधेरे में", "एक पीलीशाम"; और "अलविदा" जैसी कविताएँ नई कविता की बहिरंग और अंतरंग विविधता के लिए उदाहरण ही हैं । आधुनिक समाज, कवि, संस्था आदि का ही नहीं बल्कि आज की मानसिकता के रोए-रेशे को अभिव्यक्त करने में ऐसी कवितायें सफल हुई भाषा और शिल्प के इतने अनुपम परिदृश्य हमें मिल गये हैं । रचनाओं की ये जो कवितात्मक स्थिति है वे सौन्दर्यशास्त्र के अंतरंग पक्ष ही है । नई कविता की स्तरीय रचनाओं को इसी दृष्टि से देखना सही और संगत प्रतीत होता है ।

नई कविता का सौन्दर्यशास्त्र कविता को उसकी संघटनात्मक अवस्था में लेकर पहचानता है । कविता के विभिन्न आयामों और उसकी विविध स्थितियों में आस्वादन के अनेक स्तर दिखाने में वह सफल रहा है ।

जीवनमूल्य, सौन्दर्यानुभूति तथा सौन्दर्यशास्त्र के बदलते प्रतिमानों की पहचान करते हुए पिछले अध्यायों में मैं ने हिन्दी की नई कविता का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया है । हिन्दी कविता के अध्येताओं को इसमें काव्यानुशीलन की एक अनूठी दिशा दृष्टिगत हुए तो मैं अपने कार्य को सार्थक समझूँगा ।

888888888888

प्रमुख सहायक ग्रन्थ एवं पत्रिकाएं

कविता संग्रह

अजित कुमार

1. अकेले कंठ की पुकार
   राजकमल प्रकाशन प्रा॰लि॰ दिल्ली-6, 1958

"अज्ञेय"

2. हरी घास पर क्षण भर
   प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, 1949

3. बावरा अहेरी
   सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1954

4. इन्द्रधनु रौंदे हुए ये
   सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1957

5. कितनी नावों में कितनी बार
   भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली-1, चतुर्थ संस्करण, 1983

6. महावृक्ष के नीचे
   राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली-6, 1977

7. आँगन के पार द्वार
   भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, षष्ठ संस्करण, 19

8. अरी ओ करुणा प्रभामय
   भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 1959

9· इत्यलम

प्रतीक प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1946

10· पूर्वा

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, 1965

11· सदानीरा - सम्पूर्ण कवितायें - भाग - 1

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 1986

12· सदानीरा - सम्पूर्ण कवितायें - भाग -2

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 1986

<u>अज्ञेय (संपादक)</u>

13· तारसप्तक

भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पंचम संस्करण, 1981

14· दूसरा सप्तक

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण, 1981

15· तीसरा सप्तक

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, पंचम संस्करण, ।

<u>कीर्ति चौधरी</u>

16· खुले हुए आसमान के नीचे

लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1968

कुंवर नारायण

17· चक्रव्यूह

राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1956

18· आत्मजयी

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 1965

केदारनाथ अग्रवाल

19· अपूर्वा

परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1984

20· फूल नहीं रंग बोलते है

परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1965

केदारनाथ सिंह

21· प्रतिनिधि कवितायें

राजकमल, पेपर बेक्स, 1985

गजानन माधव मुक्तिबोध

22· चांद का मुंह टेढा है

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, सप्तम संस्करण, 19

गिरिजाकुमार माथुर

23· धूप के धान

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, 1958

24. भीतरी नदी की यात्रा

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 1975

जगदीश गुप्त
----

25. शम्बूक

लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1976

26. [संपादक] कवितान्दर -

ग्रन्थ, कानपुर, 1973

27. युग्म

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 1973

28. शब्द दंश

भारतीय भंडार, इलाहाबाद

जगदीश चतुर्वेदी
----

29. सूर्य पुत्र

दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, 1975

30. इतिहास हन्ता

ज्ञान भारती प्रकाशन, 1970

31. [संपादक] प्रारंभ

भारत भारती प्रकाशन

दुष्यन्त कुमार

32· एक कंठ विषपायी

लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण, 1979

33· आवाज़ों के घेरे में

राजकमल द्वितीय संस्करण, 1982

देवराज

34· इतिहास पुरुष

भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1965

धर्मवीर भारती

35· अंधा युग

किताब महल, इलाहाबाद, तृ·सं· 1968

36· कनुप्रिया

भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1976

37· सातगीत वर्ष,

भारतीय ज्ञानपीठ, गिरगाँव, बंबई, 1959

नरेश मेहता

38· संशय की एक रात

लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

39. महा प्रस्थान

लोक भारती, इलाहाबाद, 1975

40. प्रवाद पर्व

लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1979

नेमीचन्द्र जैन
----

41. (संपादक) मुक्तिबोध रचनावली

राजकमल पेपर बैक्स, नयी दिल्ली, 1985

प्रभाकर माचवे
----

42. मेपल

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, 1967

43. स्वप्न भी साहित्य भी

साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1957

भवानी प्रसाद मिश्र
----

44. गीत फरोश

सरला प्रकाशन, दिल्ली, 1953

45. अंधेरी कवितायें

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 1969

46· जिन्होंने मुझे रचा

समानान्तर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1981

47· परिवर्तन जिए

सरला प्रकाशन, दिल्ली, 1976

भारत भूषण अग्रवाल

48· उतना वह सूरज है

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 1980

49· अग्निलीक

राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1976

50· एक उठा हुआ हाथ

लोकभारती प्रकाशन, 1970

51· ओ अप्रस्तुत मन

लोक भारती प्रकाशन

रघुवीर सहाय

52· आत्महत्या के विरुद्ध

राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1976

रामदरश मिश्र

53· पक गयी है धूप

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 1969

लक्ष्मीकान्त वर्मा

54· अतुकान्त

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1968

55· कांचन मृग

लोक भारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1981

विजयदेवनारायण साही

56· मछली घर

भारती भण्डार, इलाहाबाद, 1966

विपिनकुमार अग्रवाल

57· नंगे पैर

लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1970

शकुन्त माथुर

58· अभी और कुछ

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, 1968

शमशेर बहादुर सिंह

59· कुछ कवितायें व कुछ और कवितायें

राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1961

श्रीकान्त वर्मा

60· भटकता मेघ

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, 1983

61· दिनारंभ

सुषमा पुस्तकालय, दिल्ली, 1967

62· मायादर्पण

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, 1967

63· जलसाघर

राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1973

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

64· कुआनो नदी

राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1973

65· गर्म हवाएँ

राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1969

66· एक सूनी नाव

अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं· 1966

67· प्रतिनिधि कवितायें

राजकमल पेपर बेक्स, दिल्ली, दू·स·, 1986

68· क्या कहकर पुकारूँ
नेशनल पब्लिशिंग हाउस प्र·सं· 1984

69· खूँटियों पर टँगे लोग
राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1982

70· कवितायें - एक
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सं· 1978

आलोचनात्मक ग्रंथ

अजित कुमार

71· कविता का जीवित संसार
अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1972

अरविन्द

72· सप्तक काव्य
दि मेकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, प्र· सं·

अशोक वाजपेयी

73· फिलहाल
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1973

74· [संपादक] तीसरा साक्ष्य
संभावना प्रकाशन, हापुड़, 1979

अवधनारायण त्रिपाठी

75· नयी कविता में वैयक्तिक चेतना
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 1979

अशोक चक्रधर

76· मुक्तिबोध की काव्य प्रक्रिया - दि मैकमिलन
दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया, प्रथम संस्करण, 1975

अज्ञेय

76· आत्मनेपद
भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1971

77· हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य
पॅ राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1967

78· [संपादक] सर्जन और सम्प्रेषण
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्करण, 1984

79· स्रोत और सेतु
राजपाल एण्ड सन्स, 1978

80· कवि-दृष्टि
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1983

इन्द्रनाथ मदान

81· आलोचना और आलोचना
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1971

82· आधुनिकता और हिन्दी साहित्य
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1973

83· समकालीन साहित्य - एक नयी दृष्टि
लिपि प्रकाशन, 1977

84· आधुनिकता और सृजनात्मक साहित्य (कविता, कहानी) उपन्यास, नाटक
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1978

कर्णसिंह चौहान

85· आलोचना के नए मान
दि मैकमिलन, प्रथम संस्करण, 1978

काका कलेकर तथा नगेन्द्र

86· (संपादक) भारतीय काव्य सिद्धान्त
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र·सं·, 1969

कुमार विमल

87· सौन्दर्यशास्त्र के तत्व
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

88· छायावाद का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन
राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1970

कृष्णकुमारी मिश्र

89· आद्यबिम्ब और नयी कविता
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1980

केदारनाथ सिंह

90· आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान
भारतीय ज्ञानपीठ, प्रथम संस्करण, 1971

कैलाश वाजपेयी

91· आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प
आत्माराम एण्ड सन्स, प्र·सं· 1963

क्रोचे

92· सौन्दर्यशास्त्र के मूल तत्व
अनुवादक श्रीकान्त खरे, किताब महल, 1967

गंगाप्रसाद विमल

93· आधुनिकता साहित्य के संदर्भ में
मैकमिलन कंपनी, प्रथम संस्करण, 1978

94· {संपादक} मुक्तिबोध का रचना संसार
सुषमा पुस्तकालय, दिल्ली, 1969

गजानन माधव मुक्तिबोध

95· एक साहित्यिक की डायरी
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन,

96· नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध
विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर, द्वि·सं·, 1977

97. नयी साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र
राधाकृष्ण प्रकाशन, 1971

98. आखिर रचना क्यों
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1982

गिरिजाकुमार माथुर

99. नयी कविता सीमाएं और संभावनायें
नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1973

चंचल चौहान

100. मुक्तिबोध प्रतिबद्ध कला के प्रतीक
पांडुलिपि प्रकाशन, 1976

जगदीश शर्मा

101. मुक्तिबोध एक साहित्यिक इकाई
किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1972

जगदीश कुमार

102. नयी कविता की चेतना
सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, 1972

103. नयी कविता बिलायती संदर्भ
सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, 1976

जगदीश गुप्त

104· नयी कविता स्वरूप और समस्यायें
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1969

जनक शर्मा

105· गजाननमाधव मुक्तिबोध व्यक्तित्व एवं कृतित्व
पंचशील प्रकाशन, जयपुर प्र·सं· 1983

देवराज

106· प्रतिक्रियायें
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1966

देवेन्द्र इस्सर

107· साहित्य और आधुनिक युग बोध
कृष्णा ब्रदेरस, अजमेर, प्रथम संस्करण, 1973

देवीशंकर अवस्थी

108· रचना और आलोचना
दि मैकमिलन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1979

109· [संपादक] विवेक के रंग
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्रथम संस्करण, 1965

धनंजय वर्मा

110· आधुनिकता के बारे में तीन अध्याय
विद्या प्रकाश मंदिर, नई दिल्ली, 1984

नगेन्द्र

111· मिथक और साहित्य
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्करण, 1979

नगेन्द्र मोहन (सं)

112· लंबी कविताओं का रचना विधान
मैकमिलन, 1977

नरेन्द्र वसिष्ठ

113· शमशेर की कविता
वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1980

नामवर सिंह

114· कविता के नये प्रतिमान
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1974

115· आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण, 1968

निर्मला जैन

116· रससिद्धान्त और सौन्दर्यशास्त्र
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1977

नेमिचन्द्र जैन

117· बदलते परिप्रेक्ष्य
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1968

परमानन्द श्रीवास्तव

118· समकालीन कविता का व्याकरण
शुभदा प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1980

119· नयी कविता का परिप्रेक्ष्य
नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1968

120· कवि कर्म और काव्य भाषा
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 197

पुरुषपाल सिंह

121· काव्य मिथक

122· आधुनिक हिन्दी कविता में महाभारत के कुछ पात्र
अमित प्रकाशन, 1971

प्रभात

123· प्रतीक और प्रतीकवादी काव्य मूल्य
आर्य बुक डिप्पो, नई दिल्ली, प्र·सं·1984

प्रभाकर श्रोत्रिय

124· कविता की तीसरी आँख
नेशनल पब्लिशिंग, 1980

125· {संपादक} हिन्दी कविता की प्रगतिशील भूमिका
मेकमिलन, प्रथम संस्करण, 1978

126· कालयात्री है कविता
स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण प्रथम, 1983

प्रकाश दीक्षित

127· अस्तित्ववाद और नयी कविता
अनादि प्रकाशन, इलाहाबाद ।

भारत भूषण अग्रवाल

128· कवि की दृष्टि
मेकमिलन कंपनी, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1978

मलयज

129· कविता से साक्षात्कार
संभावना प्रकाशन, हापुड़, 1979

130· {संपादक} शमशेर
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली ।

मालती सिन्हा

131· आधुनिक हिन्दी काव्य और पुराण कथा
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1985

रघुवंश

132. साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, 1968

133. आधुनिकता और सर्जनशीलता
मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, प्रथम संस्करण, 1980

134. भारती का काव्य
मैकमिलन कंपनी, दिल्ली, 1980

135. समसामयिकता और आधुनिक हिन्दी कविता
केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, प्रथम 1972

रमेश कुंतल मेघ

136. अथातो सौन्दर्य जिज्ञासा
दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया, प्रथम संस्करण, 1977

137. साक्षी है सौन्दर्य प्राश्निक
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्करण, 1980

138. मध्यकालीन रसदर्शन और समकालीन सौन्दर्य बोध
राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1969

139. क्योंकि समय एक शब्द है (सर्जना, साहित्य और आलोचना के आधुनिक परिप्रेक्ष्य)
लोकभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1975

140. सौन्दर्य मूल्य और मूल्यांकन
गुरु नानाक यूनीवार्सिटी, अमृतसर, 1975

रमेशचन्द्र शाह

141· समानान्तर
सरस्वती प्रेस, नयी दिल्ली, 1977

रामचन्द्र शुक्ल

142· चिन्तामणी - दूसरा भाग
सरस्वती मंदिर, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1962

रवीन्द्र भ्रमर

143· समकालीन हिन्दी कविता
राजेश प्रकाशन, दिल्ली, 1972

रामदरश मिश्र

144· आज का हिन्दी साहित्य संवेदना और दृष्टि
अभिनव प्रकाशन, दिल्ली ।

राजेन्द्र मिश्र

145· समकालीन कविता - सार्थकता और समझ
कमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1973

रामस्वरूप चतुर्वेदी

146· नई कवितायें एक साक्ष्य
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1976

147· हिन्दी नवलेखन - भारतीय ज्ञानपीठ,
काशी, प्रथम संस्करण, 1960

148· हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास
लोकभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1986

149· अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्यायें
ज्ञानपीठ प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 1972

150· सर्जन और भाषिक संरचना
लोक भारती प्रकाशन, 1980

151· भाषा और संवेदना
लोकभारती प्रकाशन, तीसरा संस्करण, 1981

<u>ललित शुक्ल</u>

152· नया काव्य नये मूल्य
दि मैकमिलन कंपनी, नई दिल्ली, 1979

<u>लक्ष्मीकान्त वर्मा</u>

153· नयी कविता के प्रतिमान
भारतीय प्रेस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1957

154· नये प्रतिमान पुराने निकष
भारतीय ज्ञानपीठ, 1966

<u>विपिनकुमार अग्रवाल</u>

155· सृजन के परिवेश
लोकभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1985

156· आधुनिकता के पहलू
लोकभारती प्रकाशन, प्र·सं· 1972

विजय शर्मा

157· आत्मजयी - चेतना और शिल्प
मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, प्रथम संस्करण, 1979

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी

158· नये साहित्य का तर्कशास्त्र
दि मैकमिलन कंपनी, प्रथम संस्करण 1975

159· {संस्करण} अज्ञेय
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्करण, 1978

वीरेंद्र सिंह

160· मुक्तिबोध काव्य बोध का नया परिप्रेक्ष्य
पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण, 1978

161· मिथक दर्शन का विकास
स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1984

विश्वंभरनाथ उपाध्याय

161· समकालीन सिद्धांत और साहित्य
दि मैकमिलन प्रथम संस्करण, 1976

विष्णु खरे

162· आलोचना की पहली किताब
नेशनल पब्लिशिंग, 1983

शम्भुनाथ

163· (संपादक) मिथक और भाषा
कलकत्ता विश्वविद्यालय

शिवकुमार सिंह

164· आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद
नाशनल पब्लिशिंग हाउस, 1973

165· आधुनिक परिवेश और नवलेखन
लोकभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1970

सुरेन्द्र प्रताप

166· मुक्तिबोध विचारक, कवि और कथाकार
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्र·सं· 1978

संतोष कुमार तिवारी

167· नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 1980

सुरेंद्र बारलिंगे

168· सौंदर्य तत्व और काव्य सिद्धान्त - अनुवादक डॉ· मनोहर काले,
काले, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्र·सं·, 1963

सुन्दरलाल कथूरिया

169· नयी कविता और रस सिद्धान्त
विद्यार्थी प्रकाशन, दिल्ली, 1977, प्रथम संस्करण

सुखवीर सिंह

170· समीक्षा के नये प्रतिमान
तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1977

हरिचरण वर्मा

171· नयी कविता का मूल्यांकन परंपरा और प्रगति की भूमिका पर
आशा प्रकाशन, गृह दिल्ली, प्र·सं· 1972

हरदयाल

172· हिन्दी कविता का समकालीन परिदृश्य
आलेख प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं· 1978

हरिचरण शर्मा

173· सर्वेश्वर का काव्य संवेदना और संप्रेषण
पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1980

हुकुम चन्द्र राजपाल

174· आधुनिक काव्य में नवीन मूल्य
भारतीय संस्कृत भवन, जलंधर, 1970

175. हिन्दी साहित्य कोश {नामवाची शब्दावली}
ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1986

श्रीकान्त वर्मा

176. जिरह
संभावना प्रकाशन, हापुड़, 1973

पत्र - पत्रिकायें

आलोचना
कल्पना,
लहर
धर्मयुग
नया प्रतीक
नयी कविता
पूर्वाग्रह
राष्ट्रवाणी
साक्षात्कार

BIBLIOGRAPHIES - ENGLISH

Abercrombie

1. The Idea of Great Poetry, (London) 1958

Abrams M.H.

2. A Glossary of Literary Terms, Third Edition
Macmillan Company of India Ltd. 1971

(Ed) 3. Literature and Belief, (New York) 1958

Ananda Coomaraswamy

4. The Dance of Siva (Fourteen Indian essays)
Munshiram Manoharlal Publishers Pvt. Ltd.
Indian Edition 1974

5. The Transformation of Nature in Art,
Dover Publications, New York, 1934

Ashok Bhargava

6. The Poetry of W.B. Yeats, Myth as Metaphor
Arnold Heinemann 1979

Beardsley Monroc C.

7. Aesthetics Problems in the Philosophy of Criticism,
Harcourt, Brace & World Inc; New York 1958

Bosanquet, Bernard

8. A History of Aesthetic Second Edition
George Allen & Unwin, London 1914

Bodkin M

9. Archetypal Patterns in Poetry, London 1934

Bowra C.M.

10. The Heritage of Symbolism London 1943

Bounton Marjoric

11. The Anatomy of Poetry, Fifth Edition
Rontledge & Kegan Paul 1965

Bradley A.C.

12. Oxford Lectures On Poetry, Macmillian, London 1909

Brooks, Cleanth

13. Modern Poetry and Tradition, New York 1948

Bradlury, Malcolm

14. Modernism, Pelican Books 1976

Bigsby

15. Dada & Surrealism (The Critical Idiom)
Methuen & Co. Ltd. London 1972

Benjamin, Walter

16. Illuminations, Fontana/Collins
Fourth Impression 1982

Bruke Kenneth

17. The Philosophy of Literary Form Studies in
Symbolic Action, Vintage Books New York 1957

Burnshaw, Stanley (Ed)

18. The Poem Itself (150 European Poems translated and analysed) A Pelican Original, Penguin Books 1964

Blackmur R.P.

19. The Lion and the Honey Comb, Methuen, London 1956

Camus, Albert

20. The Myth of Sysiphus, Hanes & Bridom Ltd. London (Third Edition) 1961

Carritt E.F.

21. Introduction to Aesthetics Hutchinson, London 1949

22. The Philosophy of Beauty Oxford, 1952

Chadwick, Charles

23. Symbolism (The Critical Idiom) Methuen & Co. Ltd. 1971

Cirlot J.E.

24. A Dictionary of Symbols University Press 1960

Croce, Benedetto

25. Aesthetic Second Edition, Macmillan London 1922

Cohen J.M.

26. Poetry of this age 1908-58, Arrow Books 1959

Collingwood R.G.

27. The Principles of Art, Clarendon Press
Oxford 1938

Cox and A.E. Dyson

28. Modern Poetry Studies in Practical Criticism
Edward Arnold Publishers
London,, 1963

Crane, R.S. (Ed)

29. Critics and Criticism
Phoenix Books, The University of Chicago
Press 1957

Day Lewis C.

30. The Poetic Image, Jonathan Cape, London 1965

De S.K.

31. Sanskrit Poetics as a study of Aesthetics
Oxford University Press Bombay, 1963

Eliot T.S.

32. Selected Essays, Third Edition Faber & Faber, London 19

33. The Sacred Wood, Faber and Faber Second Edition 1928

34. On Poetry and Poets, Faber and Faber London 1957

Empson, Willam

35. Seven types of A~biguity. Second Revised edition, Meridian Books, New York 1947

Faulkner Peter

36. Modernism (The Critical Idiom) Methuen & Co Ltd. 1977

Findlay

37. Hegel - A re-examination, Penguin Books, 1958

Ford, Boris

38. The Modern Age; The Petican guide to English Literature, Penguin Books 1970

Fraser G.S.

39. Metre - Rhyme and Free Verse Methuen & Co Ltd. London 1977

Frazer C.S.

40. Modern Writer and his World, London 1964

41. The Golden Bough, 4th Edition, New York 1925

Fry Roger

42. Vision and Design Chatto and Windus, London 1920

Fyre, Northrop

43. Anatomy of Criticism, 1957

44. Literature and Myth, 1967

George K.M. (Editor)

45. Comparative Indian Literature (Vol 1) Published by Kerala Sahitya Akademi, Kerala 1982

Gokak V.K. (Ed) Indian Poetry - Today

46. Poetry in translation from nineteen Indian Languages, Sahitya Akademi, New Delhi

George Whelley

47. Poetic Process, The Penguine Books, 1955

Hall Donald (Ed)

48. Contemporary American Poetry Penguine Books 1964

Hamburgen, Michael

49. The Truth of Poetry Tensions in Modern Poetry from Bandelaire to 1960s, Penguin 1972

Hawkes Terence

50. Metaphor, The critical Idiom, Methuen & Co Ltd. 1972

Hegel

51. The Philosophy of Fine Art Translation by F.P.B. Osmastone Four Volumes Bell, London 1920

Howe, Irving (Ed)

52. Literary Modernism (Literature and Ideas Series) Fawatt Publication 1967

Indian Institute of Advanced Study (Ed)

53. Modernity and Contemporary Indian Literature

Indian Council for Cultural Relations (Ed)

54. Indian Poetry To-day Vol. IV New Delhi 1981

Kermode, Frank

55. Romantic Image, Collins, Fontana Books, London 1971

56. Modern Essays, Collins, Fontana Books 1971

Kant, Immanuel

57. Critique of Judgement Tr. by J.C. Meredith, Clarendon Press, 1971

Krishna Chaitanya

58. Sanskrit Poetics Asta Publishing House Bombay 1965

Ker W.P.

59. Form and Style in Poetry, Macmillian 1966

Leavis F.R.

(Ed) 60. Scrutiny - Volume I
Cambridge University Press 1968

61. New Bearings in English Poetry
Penguin Books, 1972

62. Revaluations
Penguin Books, 1972

63. The Common Pursuit
Penguin Books - 1978

Lodge David (Ed)

64. 20th Century Literary Criticism
A Reader
Longman, London and New York 1972

Langar, Susanne K.

65. Feeling and Form
Rontledge and Kegan Paul
London - 1953

Lewis C.S.

66. An Experiment in Criticism
Cambridge University Press - 1976

Lawrence L. Langer

67. The Holocaust and the Literary
Imagination
New Haven and London, Yale University Press,
Third Printing - 1977

Mac Leish, Archibald

68. Poetry and Experience

Penguin Books - 1960

Maxwell D.E.S.

69.. The Poetry of T.S.Eliot

Rontledge & Kegan Paul, London 1954

Murry, Middleton

70. The Problem of Style

Oxford University Press, London 1961

Mordell, Albert

71. The Erotic Motive in Literature

(New Revised Edition)

Collier Books, New York, 1962

Manlove C.N.

72. Modern Fantasy - Five Studies Cambridge

University Press, Cambridge - 1975

Moore, Gearld & Ullibeir

73. Modern Poetry from Africa

Penguin Books - 1963

Mohan G.B.

74. Response to Poetry

People's Publishing House, New Delhi.

Osborne, Harold (Ed)

75. Aesthetics (Oxford Reading in Philosophy)

Oxford University Press - 1972

Ogden C.K. & Richardo I.A. & Wood James

76. The foundation of Aesthetics
International Publishers
New York 1925

Ogden. C.K. & I.A. Richards

77. The Meaning of Meaning
Rontledge and Kegan Paul
Tenth Edition - 1953

Pilling, John

78. An introduction to Fifty Modern European Poets
Pan Literature Guide S. 1982

Phythian B.A.

79. Considering Poetry - An Approach to Criticism
The English University Press Limited 1975

Pandey K.C.

80. Indian Aesthetics
Second Revised Edition, Chowkhamber
Sanskrit Series Office, Varanasi 1957

81. Western Aesthetics
Choukhamba Varanasi 1953

Patnaik

82. The Aesthetics of New Criticism
Intellectual Publishing House
New Delhi - 1982

Richard Ellmann and Charles Feidelson (Ed)

83. The Modern Tradition Back Grounds of Modern Literature
Oxford, 1965

Ridman Seldom (Ed)

84. One hundred Modern Poems
A Mentor Book M.L. published by the New American Library

Rosenthal

85. Modern Poets
Oxford University Press
New York 1975

Raghavan V. & Nagendra (Ed)

86. An Introduction to Indian Poetics
Macmillan Company of India Limited - 1970

Ramachandran T.P.

87. The Indian Philosophy of Beauty Part II - Special (
University of Madras - 1980

Ransom, John Crowe

88. The New Criticism
New Directions, New York - 1941

Read, Herbert

89. The True Voice of Feeling
Faber and Faber, London - 1953

Sartre, Jean Paul

98. Bandelaire
Hamish Hamilton, London 1964

99. What is Literature
Methuen Co and Limited, London - 1950

Scott, Wilber

100. Fire Approaches to Literary Criticism
Faber London - 1962

Sparshott

101. The Structure of Aesthetics Rontledge and
Kegen Paul, London 1963

Spender, Stephen

102. The Struggle of the Modern
Oxford University Press
London 1963

Storr, Anthony

103. Jung (Fontana Modern Masters)
Editor Frank Kermode Fontana/Collins

Sreenivasa Iyengar K.R. (Ed)

104. Indian Literature Since Indian Independence
Central Sahitya Academy, New Delhi 1973

Sully James (Ed)

105. Modern Poets on Modern Poetry
Fontana,/ Collins - 1973

Tate, Allen

106. On the Limits of Poetry,

The Swallow Press, New York 1948

Thomas B. Flanagan

107. An Outline of British Literature Since 1900

Forum House

Thomson, Philip

108. The Grotesque The Critical Idiom Methuen & Co Ltd

London 1972

Unger Leonard

109. Seven Modern American Poets - An Introduction

A.H. Weeler & Co (P) Ltd. Allahabad

Second Printing 1968

Untereeker, John

110. Yeats. A collection of critical essays

Prentice Hall, Inc Englewood Cliffs 1963

Urban W.M.

111. Language and Reality, New York 1939

Valery, Paul

112. The Art of Poetry - Translated from French by

Derise Folliot, Vintage Books, 1958

Wellek, Rene

113. The Theory of Literature

Pelican - 1980

Will Durant

114. The Pleasures of Philosophy
A Survey of Human Life and Destiny
A Touchstone Book Published by Limon and
Schuster 1953

William J. Handy and Max Westbrwk

115. Twentieth Century Criticism
The Major Statements
Light and Life Publishers
New Delhi 1974

William Raymond

116. Keywords A Vocabulary of Culture and Society
Fontana/Croom Helm
Eighth Impression 1981

Wilson Edmund

117. Axel's Castle
Penguin Books

Wimsatt W.K. (Ed)

118. Literary Criticism Idea and Act
The English Institute 1939 - 72
University of California Press - 1974

119. The Verbal Icon Studies in the meaning of Poetry
Methuen and Co. Ltd. - 1970

Wimsatt and Cleanth Brooks

120. Literary Criticism - A Short History
Oxford and IBH Publishing Co
Fourth Indian Reprint 1970
New Delhi

Wittgenstein

121. Lectures and Conversations
Fontana

Yuri Barabash

122. Aesthetics and Poetics
Progress Publishers - 1977

Yevgeny Basin

123. Sematic Philosophy of Art
Progress Publishers, Moscow - 1979

-oOo-